VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 1

■ वर्ष 48 ■ अंक : 1-2 ■ जून, जुलाई 2026 ■ मूल्य : 20 रुपये

सामयिक वार्ता

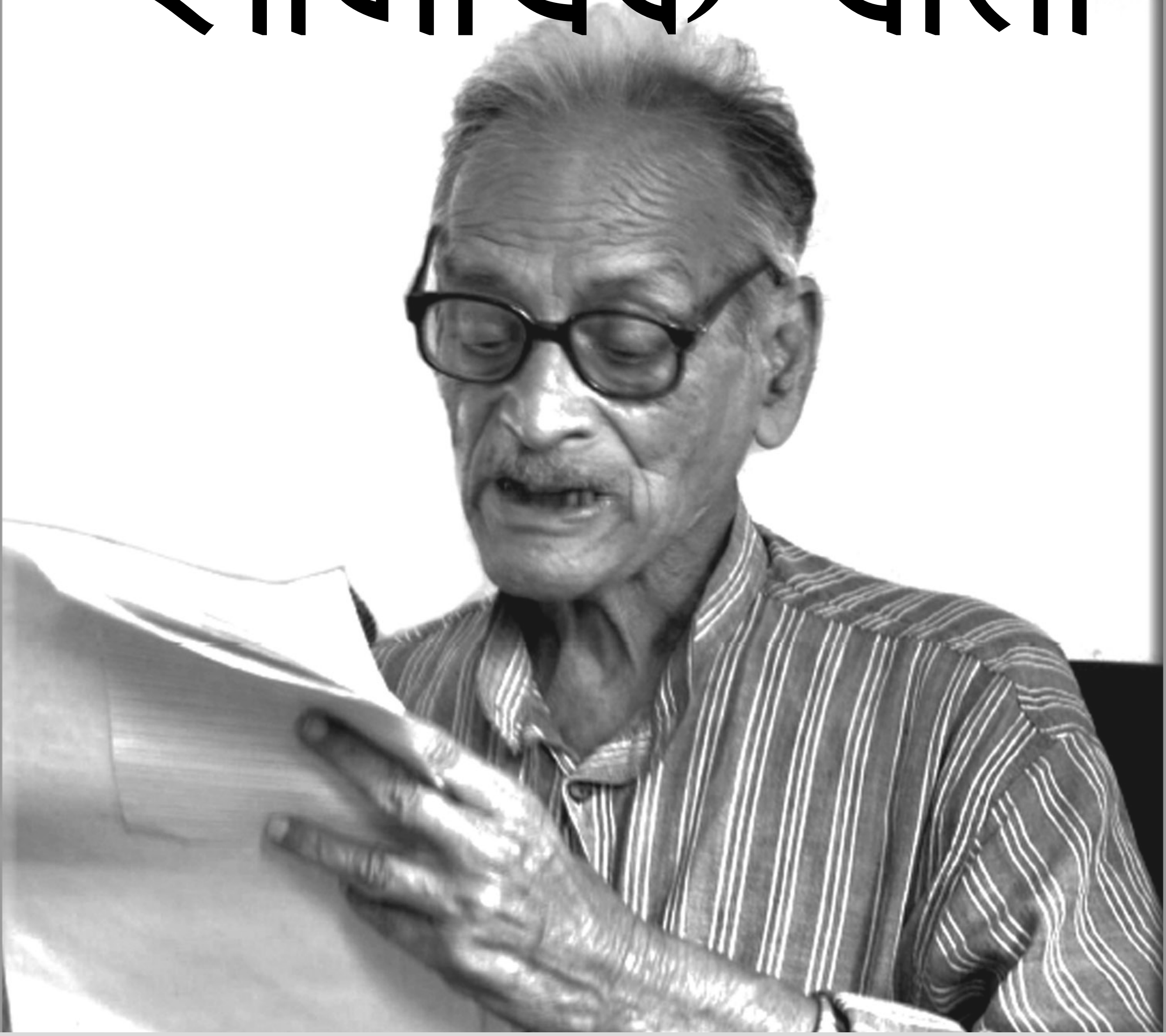

समतावादी मनीषी

सच्चिदानंद सिन्हा स्मृति अंक

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 2

पक्षियों पर बाल-कविताएं : सच्चिदानन्द सिन्हा

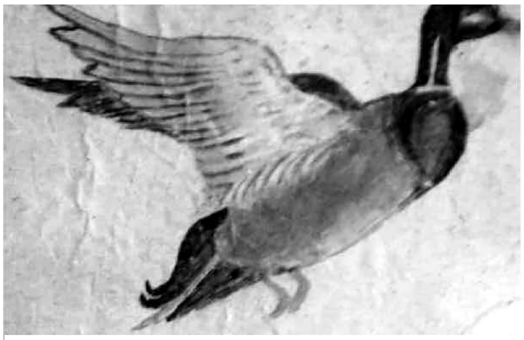

बत्तख

चौड़ी चोंच, लंबी गरदन कछुये सा पाया पैर,
भरे चलाशय में करता है दूर-दूर तक सैर,
कई जातियां हैं बतख की भिन्न-भिन्न हैं रंग,
रहने के भी इनके होते अलग-अलग ही ढंग
पांत सजा सुंदर अपनी पानी में बढ़ते जाते,
जहां जरूरत हुई शान से गोते खूब लगाते,
जल में भी रह सूखा पर ले जल से बाहर आते,
जीवन में निर्लिप्त कर्म का पाठ हमें सिखलाते।

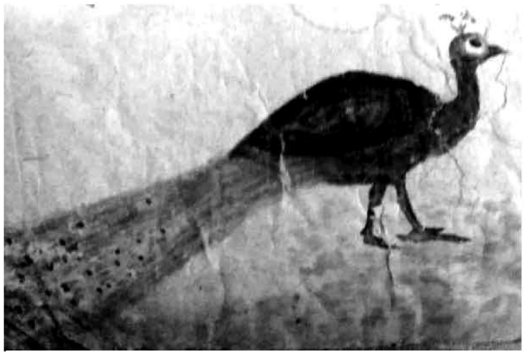

मोर

सुंदरता में मोर कहलाता चिड़ियों का सरताज,
पीले, नीले, हरे रंग में इसके साज,
होता सिर पर मुकुट रंगीला शान बढ़ाने वाला,
पंखे-सा फैला सकता है सुंदर पूंछ निराला,
पाया सुंदर रंग नहीं कर पाया गला सुरीला,
सांप बिच्छुओं तक को खाता भोजन है जहरीला,
मस्त बना देता मोरों को घोर घटा का आना,
इससे बच्चों सीखो हर आफत में मुस्काना।।

उल्लू

मटमैला है रंग और कुछ हल्का पीला,
आंखें बड़ी गोल काले हैं, पंजा बड़ा नुकीला,
दिन भर पत्तों की छाया में करता है विश्राम,
अंधियारा होने पर शिकार का काम,
अंधकार अज्ञान ज्ञान ज्योतिर्मय है बतलाता,
अंधकार में रहने से उल्लू मूरख कहलाता,
इसीलिए उल्लू कहने से होता है अपमान,
अगर प्रतिष्ठा पाना चाहो हासिल कर लो ज्ञान ।।

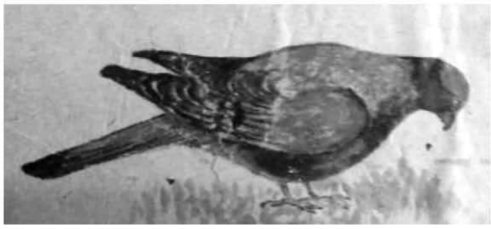

कबूतर

काला स्याह, सफेद और होते चितकबरे,
कुछ के हल्क रंग तथा औरों के गहरे,
उड़ते खूब और दूर-दूर तक चुगने को ये जाते,
कलाबाजियाँ आसमान में इनमें कुछ दिखलाते,
गुटरूँ-गुटरूँ कर सकते बस नहीं जानते गाना,
घूम-घूम खेतों-खलिहानों में चुगते हैं दाना,
जन्मजात गुण निज संख्या औरों को मिला बढ़ाना,
लेना सीख कबूतर से बच्चों तुम मित्र बनाना।।

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 16:03 Page 3

इस अंक में

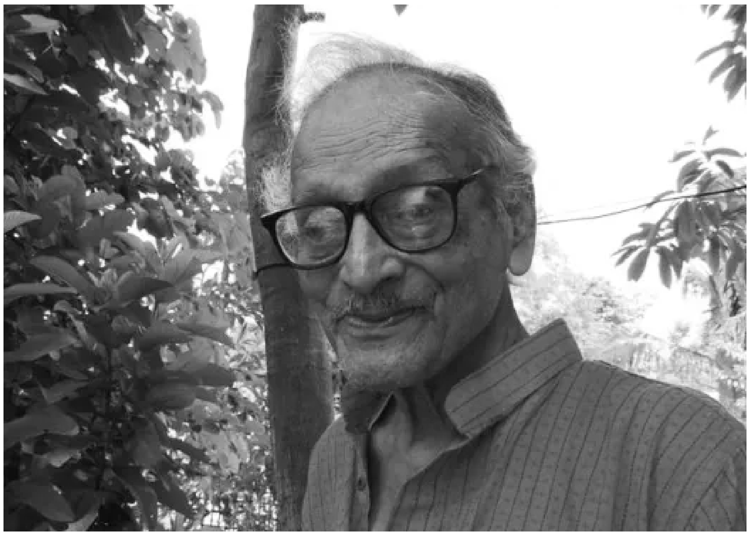

अपनी बात

सच्चिदानंद सिन्हा..............6

मनोरमा सिन्हा...............12

बातचीत

गिरधर राठी..................13

किताबनामा

नन्दकिशोर आचार्य.........16

गिरधर राठी..................19

रश्मि सहगल.................24

प्रियदर्शन......................27

अरुण कुमार त्रिपाठी........29

शर्मिला जालान...............34

सुनील..........................37

चिट्ठी-पत्री

चिट्ठी-पत्री............38

संस्मरण

अफलातून................44

नवीन......................46

अरविंद वरुण............49

स्मिता......................51

बृज खंडेलवाल..........54

विनोद पय्यादा...........56

रामेश्वर दुबे..............57

जसवीर अरोड़ा..........59

शेफाली...................59

कश्मीर उप्पल...........61

जगत नारायण............63

अतुल कुमार.............66

भवेश असगर.............71

रामजय प्रताप............72

डॉ. सुजाता मिश्र.........74

प्रो. अपर्णा सुमन.........76

गंगा प्रसाद................78

सामयिक वार्ता

जून, जुलाई 2026, वर्ष 48, अंक : 1-2

संस्थापक संपादक : किशन पटनायक

इस अंक के संपादक
अरविन्द मोहन
हरिमोहन

संपादक : **अफलातून**

संपादन सहयोग
चंचल मुखर्जी (संयोजक), लोलार्क द्विवेदी,
संजय गौतम, प्रियदर्शन,
राजेन्द्र राजन, अरुण कुमार त्रिपाठी,
महेश विक्रम सिंह, संजय भारती, गंगा प्रसाद, स्मिता

प्रबन्ध सहयोग : नीता चौबे
अक्षर संयोजन : गौरीशंकर सिंह

खाता नाम : सामयिक वार्ता
या Samayik Varta
बैंक ऑफ बड़ौदा (Bank of Baroda)
शाखा : सोनारपुरा, वाराणसी (उ.प्र.)
Sonarpura, Varanasi (U.P.)
खाता संख्या : 40170100005458
IFSC Code : BARB0SONARP
(यहां दूसरे B के बाद जीरो है, ओ नहीं,
S के बाद O (ओ) है।)
MICR CODE : 221012030
(इस खाते में पैसे जमा करने तथा ग्राहक के पते की
सूचना ई-मेल अथवा मोबाइल
09695894830/ 08004085923 पर दें।)

कार्यालय
डी. 28/160, पाण्डे हवेली, वाराणसी-221001
फोन : 08004085923 (संपादन),
09695894830 (प्रबंध)
e-mail- varta3@gmail.com

सदस्यता शुल्क

एक प्रति	:	20/-
वार्षिक शुल्क	:	150/-
संस्थागत वार्षिक शुल्क	:	200/-
पांच वर्षीय शुल्क	:	600/-
आजीवन शुल्क	:	2000/-

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 4

संपादकीय

सच्चिदा जी का न होना

सच्चिदानंद सिन्हा पर सामयिक वार्ता का संपादकीय लिखना कुछ ज्यादा मुश्किल काम है। वार्ता के नियमित प्रकाशन के क्रम में संपादकीय लिखने का काम हमें कई बार करना होता था लेकिन भरोसा रहता था कि किशन जी, सच्चिदा जी और सबसे बढ़कर अशोक सेकसरिया की निगरानी है, कोई गड़बड़ नहीं होगी। ये तीनों ही अब नहीं रहे। यह ट्रेनिंग कम नहीं चली है लेकिन भरोसा अब भी नहीं बना है। सच्चिदा जी सबसे आखिर में गए हैं और काफी बुजुर्ग होकर गए हैं। उनका लिखना-पढ़ना भी कम हो गया था लेकिन उनकी मौजूदगी ही काफी बल देती थी। एक छाया थी जो अब कभी नहीं मिलने वाली है। सिर्फ वार्ता के संपादकीय का ही नहीं, उनके और भी काम करने होंगे। अपनी अयोग्यता बार-बार स्वीकारनी होगी क्योंकि उसे ठीक करने वाले नहीं हैं।

इन तीनों महापुरुषों और साथी सुनील ने नए सामायिक वार्ता को गढ़ने-बनाने में काफी बड़ी भूमिका निभाई थी। पहल या नेतृत्व किशन जी का था और देखरेख अशोक जी की। पर सामग्री का मामला हो या विषयों की व्यापकता का तो सच्चिदा जी का हिस्सा बड़ा लगता है। शुरू के दिनों में उनकी भागीदारी अपेक्षाकृत कम थी लेकिन दिन-ब-दिन उन पर वार्ता की निर्भरता बढ़ती गई। हम कह सकते हैं कि वह वार्ता का चलना न था, वह हम सबके वैचारिक प्रशिक्षण का काम था। नई जानकारियां पाने का काम था और अपनी राजनैतिक दिशा ढूंढने का काम था। राम मंदिर के नाम पर उठी सांप्रदायिकता की लहर हो या उसकी मदद के लिए उठाया गया नकली राष्ट्रवाद का शोर या फिर उन सब पर भारी पड़ने वाले भूमंडलीकरण के विभिन्न पहलुओं की चर्चा, सबमें वार्ता ने अगुआई की और सच्चिदा जी सबसे ज्यादा अध्ययन और चिंतन से सामग्री जुटाने वाले थे। यही नहीं, सच्चिदा जी ने आरक्षण का समर्थन करते हुए मंडल आयोग की रपट की जो आलोचना की थी, उसे कई लोग तब अनुचित मानते थे, लेकिन चीजें उसी दिशा में गईं और मंडल की लहर आज सांप्रदायिकता और भूमंडलीकरण के आगे पस्त है। उनके लिखे अनेक लेख और लेख-शृंखलाएं बाद में हमने पुस्तक और पुस्तिका के रूप में छापे और बांटे थे। समाजवाद की लोहियावादी समझ हो या उपभोक्तावाद, पर्यावरण का संकट हो या नक्सलवाद का वैचारिक संकट, असम का संकट हो या पंजाब का, सब पर उनका लिखा बार-बार याद आता है, क्योंकि वही हमारी दृष्टि और सोच का आधार बना। निर्मल वर्मा जैसे घनिष्ट मित्र भी अगर भटके तो सच्चिदा जी ने उन्हें याद दिलाने में देर नहीं की कि आदमी विचारधारा में ही जीता है।

सच्चिदा जी का ज्यादातर लेखन वार्ता में ही नहीं हुआ। उन्होंने कई किताबें लिखी हैं, समाजवाद, मार्क्सवाद से लेकर गांधी और कला संस्कृति पर। यह दावा करने में हर्ज नहीं है कि पूरी समाजवादी धारा में उनसे ज्यादा विषयों पर और ज्यादा मात्रा में लेखन करने वाला कोई नहीं हुआ। वे विलक्षण विद्वान थे और समाज विज्ञान के विषयों में उनके जैसा कोई समकालीन विद्वान नजर नहीं आता। देश ही नहीं, दुनिया में वह दृष्टि कम ही दिखती है। यह सारा काम उन्होंने बिना किसी अकादमिक संस्था या सरकारी सहयोग के किया। एक दौर में उन्होंने समकालीन राजनीति पर किताबें

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 5

लिखीं लेकिन बाद में अखबारों और पत्रिकाओं में भी लिखा या स्तंभ भी लिखा। लेखन में भी पहले अंगरेजी में लिखा और बाद में हिंदी में। उन सबकी कुछ झलक हमने इस अंक के कई लेखों के माध्यम से प्रस्तुत करने की कोशिश की है। लेकिन उनके चिंतन और लेखन का दायरा इतना बड़ा है कि किसी पत्रिका के एक अंक में समाना मुश्किल है।

अलबत्ता, सच्चिदा जी न तो सामयिक वार्ता वाले संपादक/पत्रकार थे, न किताबें लिखने वाले बौद्धिक भर। वे मूलतः राजनैतिक कार्यकर्ता थे और उनका अधिकांश लेखन भी उनके राजनैतिक कर्म का विस्तार ही था। उसमें खुद की समझ को बताने से लेकर समकालीन राजनीति और विकास की दिशा-दशा समझने-समझाने का प्रयास और कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण का उद्देश्य ही प्रमुख था। कमाई के लिए लेखन उन्होंने कभी नहीं किया और अपने राजनैतिक कामों को उन्होंने सदा सर्वाधिक महत्व दिया, चाहे वह पहले समाजवादी पार्टी का काम हो, ट्रेड यूनियन का, आंबेडकर का चुनाव हो या जॉर्ज फर्नांडिस का या फिर समाजवादी जन परिषद के प्रशिक्षण शिविर। राजनैतिक कार्यकर्ता की इस भूमिका को उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि, किसी पद या उम्र के पड़ाव से नहीं समझा जा सकता। वे सदा तैयार मिलते थे। कभी आलस, थकान या निराशा नहीं दिखती थी।

किसी राजनैतिक कार्यकर्ता के जीवन में कथनी और करनी का फासला न होना या कम से कम होना, देखना हो तो वह उनमें बखूबी दिखाता था। कभी भी उन्होंने अपने लिए कुछ चाहा हो, यह याद नहीं आता। अगर आप उनकी वरिष्ठता और उम्र को देखते हुए कुछ अलग करना चाहें, जैसे विमान का टिकट या ऊंचे दर्जे का रेल टिकट, तो आपकी खैर नहीं। उन्होंने कभी कोई पुरस्कार नहीं लिया और कभी उनमें निराशा आई हो, यह भी नहीं लगा।

दरअसल सच्चिदा जी के ये सारे रूप इसलिए ज्यादा बड़े हैं क्योंकि वे इंसान बहुत प्यारे थे। उन्होंने अपनी मर्जी से शादी नहीं की लेकिन उनका परिवार बहुत बड़ा रहा। जीवन की हर अच्छी-बुरी चीज से परिचित थे, और हर रिश्ते को सम्मान देते थे। उनके संपर्क में जो कोई आया, उसे इस बात का अनुभव हुआ। इस अंक में अनेक संस्मरणों से यही स्वर प्रमुखता से उभरता है। लगभग सत्तर-पचहत्तर साल के सक्रिय जीवन में कितने लोग उनके संपर्क में आए होंगे, यह गिनती मुश्किल है। सब तक पहुंचना और लिखवा लेना संभव नहीं है।

हम दोनों के लिए यह बड़े सौभाग्य का मामला है कि हमें सच्चिदा जी के साथ रहने, उनसे सीखने, समय गुजारने और सुख-दुख में भागीदार होने का अवसर मिला। उनके साथ काम करना अपने आपमें बड़ी परीक्षा थी। अगर हम साथ रहे तो मान सकते हैं, उनकी कई परीक्षा में खरा उतरे। लेकिन उनके बगैर उनके मानकों पर खरा उतरना और उनके काम को आगे बढ़ाना इतनी बड़ी चुनौती है कि आगे के लिए कुछ भी बोलना जोखिम भरा है। फिर भी, अपनी तरफ से और वार्ता परिवार की तरफ से हम यह संकल्प तो दोहरा ही सकते हैं कि हम उनके कामों को आगे बढ़ाने का प्रयास जारी रखेंगे।

सच्चिदानंद सिन्हा जिन्दाबाद!

पुनश्चः संस्मरणों में कई असंगतियां दिख सकती हैं, खासकर वर्ष वगैरह में। कोशिशों के बावजूद कुछ हिज्जों में भी असंगतियां दिख सकती हैं। ये त्रुटियां हमारी हैं। इसके लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं।

अरविन्द मोहन
हरिमोहन

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 6

मेरी राम कहानी

सच्चिदानंद सिन्हा

अंग्रेजी दमन से प्रथम साक्षात्कार

एक घटना जिसने मेरी सोच को काफी प्रभावित किया, वह था अंग्रेजी शासन और दमन से साक्षात्कार। 1932 की बात है, तब मैं शायद चार साल के लगभग का रहा होऊंगा। मैं उन दिनों अपने ननिहाल बीहट में अपनी मां के साथ था। मेरे छोटे मामा चन्द्रप्रकाश नारायण, जो मुझसे लगभग डेढ़ महीने बड़े थे, वहीं थे और हम दोनों प्रायः साथ होते थे, उसी समय मेरे नाना श्री रामचरित्र सिंह को गिरफ्तार करने पुलिस वाले आये। मैं और मेरे मामा चन्द्रप्रकाश एक घर की दीवार की ओट से झांक रहे थे, जब पुलिस वाले एक टमटम या तांगा के साथ मेरे नाना के बंगले पर आये और उन्हें गिरफ्तार कर टमटम पर ले गये। हम लोगों को अंग्रेजी सरकार के दमन और ताकत का थोड़ा एहसास हुआ, लेकिन हम ज्यादा कुछ नहीं समझते थे। उन दिनों गांव में प्रायः लोग लाइन बना प्रभात फेरी करते थे और गाते थे। गाना की वे पंक्तियां आज भी मुझे याद हैं, 'आओ वीरो मर्द बनो अब जेल तुम्हें जाना होगा।' इसके साथ कुर्की-जब्ती गिरफ्तारी आदि का जो दौर रहा होगा, वह सब हमारी समझ में नहीं आता था। लेकिन ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ एक भावना और दमन का खौफ जरूर मालूम होता था

गांधी जी एक पारिवारिक विरासत

महात्मा गांधी मुझे पारिवारिक विरासत के रूप में मिले, वैसा ही जैसा अपने दादाजी। मेरे पिताजी गांधी जी के भक्त थे और 1920 में उनके आह्वान पर सरकारी स्कूल छोड़ सदाकत आश्रम में पढ़ाई करने चले गये थे। बाद में भी जब उन्होंने स्कूल में शिक्षक का काम शुरू किया तो गांधी के प्रति निष्ठा गई नहीं और उनके कई छात्र उनके प्रभाव से आजादी के आंदोलन में कूदे। बचपन में मैं प्रायः मुजफ्फरपुर में पिता जी के साथ रहता था, जिनसे मिलने और विचार लेने अनेक छात्र आते थे। राष्ट्रीय आंदोलन के संबंध में मेरी प्रारंभिक धारणाएं पिताजी के विचारों से प्रभावित थीं। बाद में जब उन्होंने गांव में चरखा का प्रचार शुरू किया तो एक चरखा मास्टर मेरे घर पर रहते थे और मैंने भी लगभग दस ग्यारह साल की उम्र में चरखा चलाना शुरू किया और खादी पहनना भी। मैंने अपनी काती हुई सूत की एक गड्डी महात्मा गांधी को भी भेंट की थी, जब वे रामगढ़ कांग्रेस के पहले कांग्रेस वर्किंग कमेटी की मीटिंग में भाग लेने पटना आये थे। उनसे साक्षात्कार तो नहीं हो पाया, लेकिन जब वे गाड़ी में जा रहे थे तो सूत की एक लड़ी उनके गले में लटक रही थी। मैंने अंदाज लगाया कि वह मेरा दिया हुआ सूत ही था। मेरे पिता जी नियमित रूप से 'हरिजन' मंगाते थे और उसकी प्रतियों को जिल्द बंधवा कर रखते थे। लेकिन मैं उन्हें पढ़ता नहीं था। शायद मेरी समझ में कुछ आता भी नहीं। लेकिन मुझमें एक तरह का भक्तिभाव गांधी जी के प्रति जरूर था।

बचपन की कल्पनाशीलता

जीवन के प्रारंभ की कुछ घटनाएं और उससे जुड़ी प्रतिक्रियाएं शायद आदमी की मूल प्रवृत्तियों और बाद के जीवन के रुझानों को समझने में सहायक हो सकती है, इसलिए बचपन के एक अनुभव का जिक्र करना चाहता हूं, जो आज भी मुझे साफ-साफ याद है। इतने दिनों बाद ठीक-ठीक तो नहीं कह सकता कि मैं सात या आठ वर्ष का रहा होऊंगा। हीरा, मोती और दूसरे जवाहरात का विवरण तो बातचीत और किस्से कहानियों में सुनता था, लेकिन उन्हें कभी प्रत्यक्ष चमकते हुए नहीं देखा था। सिर्फ उनके संबंध में कुछ कल्पना कर सकता था। मेरे घर से लगभग आधा से एक किलोमीटर की दूरी पर हम लोगों का एक आम का बागान हुआ करता था, जिसे हम लोग बड़का गाछी कहते थे। अंदाजा है कि कार्तिक के महीने में मैं हर रोज वहां सूर्योदय के बाद बिना किसी काम के घूमने जाया करता था। सड़क के दोनों ओर घास और जंगली फूलों और उनके पत्तों पर ओस के बूंद प्रातःकालीन सूरज की रोशनी में चमकते रहते थे और रंग-बिरंगी आभा बिखेरते रहते थे। नीले, पीले, नारंगी, लाल सभी रंग की। अपनी कल्पना में मैं उन चमकती बूंदों में विभिन्न विविध रत्नों को देखने की कल्पना किया करता था। लेकिन विशेष बात यह थी कि हर रोज मैं सोचता हूं कि किसी दिन रंगीन आभा बिखेरती ये बूंदें वास्तव में रत्न बन जाएंगी, जिनका मैं स्पर्श कर पाऊंगा और जिन्हें हाथों में उठा पाऊंगा। अब सोचता हूं कि समाजवाद या कोई काल्पनिक आदर्श समाज बन पायेगा, इसकी आश्वस्ति का मेरे भीतर का आधार कहीं न कहीं उन प्रारम्भिक अनुभवों में था। यह सब रूमानियत लगेगी। शायद है भी, लेकिन कुछ ऐसे ही प्रारंभिक अनुभव लोगों की गहरी आस्थाओं के पीछे होते हैं।

मेरे कई परिचित लोग सामने दिखने वाली हकीकत की पृष्ठभूमि में समाजवाद संबंधी मेरे विश्वास को महज रूमानियत

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 7

समझते हैं। शायद उनका सोचना सही है। लेकिन अगर ऐसी कल्पनाओं और आशाओं को मिटा दिया जाय तो क्या मानव जीवन मानवीय रह पायेगा?

पुराण, दर्शन, विज्ञान

जो भी कारण रहा हो, गांव के स्कूल में दाखिले के कुछ महीनों के बाद से ही मेरी स्कूली पढ़ाई बन्द हो गई और मैं या तो गांव में घर ही पर रहता था या पिता जी के साथ मुजफ्फरपुर, जहां वे बी. बी. कालेजियट स्कूल में शिक्षक थे। स्कूली शिक्षा की जगह मैं घर में उपलब्ध धार्मिक ग्रन्थों को पढ़ने लगा। इन ग्रन्थों में रामचरित मानस, जिसका गद्य अनुवाद ही समझ सकता था, कई जिल्दों में उपलब्ध महाभारत, सुखसागर, भागवत पुराण आदि पढ़ने में विशेष रुचि थी। ध्रुव, प्रहलाद आदि की कहानियां भी पढ़ी और उनकी बातों पर अंध आस्था थी। हमारे यहां कम पढ़े पर विद्याव्यसनी कुछ पंडित आया करते और उनमें शास्त्रार्थ होता। उन्हें सुनना अच्छा लगता और उन्हें समझने की कोशिश करता। इससे कई लोकों के अस्तित्व की बात मन में आई।

मेरे पिताजी एमएससी में गणित के छात्र रहे थे और उन्हें भारतीय ज्योतिष शास्त्र का भी कुछ ज्ञान था, जिनके बीच वे कुछ संगति बैठा सकते थे। प्रायः गर्मियों में जब हम आंगन में बैठे होते तो वे सप्तर्षि और ध्रुवतारा और उसकी ओर इशारा करने वाले दो तारों तथा मृगशिरा आदि तारा समूहों को बतलाते और फिर नक्षत्रों और आकाश गंगा आदि के संबंध में कुछ बातें बतलाते। ध्रुव और ध्रुवतारे के संबंध को मैं कभी समझ नहीं पाया, लेकिन आकाश और नक्षत्रों के संबंध में जानने की जो जिज्ञासा थी, वह बनी रही। बाद में वही जिज्ञासा न्यूटन, आइन्सटाइन आदि के विचारों की तरफ ले गई। इसी जिज्ञासा के कारण मुझे कान्ट का समग्रता का दर्शन सदा आकर्षित करता रहा, जिसमें 'द स्टैरी हेवन एबव ऐंड द मोरल सेंस-निथिन' दोनों को समझने और जोड़ने का आग्रह था। संसार की सभी वस्तुओं के बीच संबंध तलाशने का रुझान उसी समय पैदा हुआ। धार्मिक आस्थाओं को धक्का लगा मेरे नानाजी के विचारों से। उन्होंने रसायन शास्त्र से एमएससी की थी और अनीश्वरवादी थे। उन्होंने भौतिक दृष्टि से संसार के विकास पर एक पुस्तक भी लिखी थी। दस-ग्यारह साल की उम्र में उसे पढ़ने का मौका मिला और उससे पुरानी आस्थाएं अंध आस्थाएं लगने लगीं। समय के साथ इस दूसरे विचार को ही चारों तरफ से समर्थन मिलता रहा। बाद में मार्क्स के प्रति आकर्षण का यही आधार था।

अनियमित शिक्षा

मेरी नियमित रूप से पढ़ाई-लिखाई नही हुई थी। मैंने पहली परीक्षा देकर सातवें वर्ग में उसी स्कूल में दाखिला लिया, जिसमें पिताजी थे। हांलाकि उसके साल भर के भीतर ही पिता जी ने पूरा समय स्वतंत्रता आंदोलन में देने के लिए नौकरी छोड़ दी। स्कूल में जाने के बाद से मेरी दिलचस्पी भगत सिंह और दूसरे क्रान्तिकारी नेताओं में जगी और उनकी वीरता, और आत्मबलिदान से अत्यधिक प्रभावित हुआ।

इसी क्रम में मनमथनाथ गुप्त की 'भारत में सशस्त्र क्रान्ति चेष्टा का रोमांचकारी इतिहास' पढ़ा और कुछ अन्य प्रकाशनों को भी देखने का मौका मिला, जो प्रायः गुप्त रूप से छात्रों तक पहुंच जाते थे। उसके बाद हिंसक क्रान्ति के प्रति आकर्षण बढ़ा। ज्यादातर छात्रों का रुझान उसी तरफ था। मुझे गांधी जी और इन क्रान्तिकारियों के बीच कोई विरोधाभास नजर नहीं आता था। मुझे जहां तक याद है, एक पुस्तक 'दो पहल' उन्हीं स्कूली दिनों में पढ़ने का मौका मिला था, जिसमें क्रान्ति के लिए समर्पित दोनों विचारों के लोगों की जीवनगाथा थी। लेखक का नाम याद नहीं। लेकिन मेरी राजनीतिक समझदारी ऐसी नहीं थी कि मैं इन दो दृष्टियों का विश्लेषण कर पाता। गांधी जी के प्रति भक्ति और क्रान्तिकारियों के प्रति दिलचस्पी दोनों साथ-साथ थे। लेकिन उम्र और रुचि के कारण सशस्त्र क्रान्ति की तरफ रुझान ज्यादा गहरा था। उस समय हथियार पाना उतना आसान नहीं था जितना आज है, लेकिन यह इच्छा जरूर थी कि हम लोग स्वयं बम आदि बनाकर क्रान्तिकारियों की मदद करते। खादी के प्रति कट्टरता जरूर थी और एक समय जब खादी के कपड़े मिलना मुश्किल हो गया था तो एक या दो फटी धोती कमीज लगाकर रहता था पर मिल के वस्त्रों को धारण नहीं करता था। इससे सगे-संबंधियों के समारोहों में शामिल होना मुश्किल हो जाता था। इसी से समारोहों में शामिल होने में उसी समय से एक झिझक हो गई थी।

इसी काल में जेपी की जेल से भागने के बाद की चिट्ठियां पढ़ने का मौका मिला और उनके भूमिगत संगठनों के तानाबाना से जुड़ने का। हम लोगों के पास नियमित रूप से पर्चे पोस्टर आदि आते और हम लोग रात में चुपचाप उन्हें मुजफ्फरपुर शहर के विभिन्न मुहल्लों में दीवारों पर चिपका देते या घरों के दरवाजों पर डाल देते।

विश्वविद्यालय में दाखिला
शिक्षा छोड़ पूर्णकालिक कार्यकर्ता

मैट्रिक पासकर 1945 में मैं साइंस कालेज पटना में पढ़ने गया। वहां छात्र आंदोलन (एटुडेंट्स कांग्रेस) से पूरी तरह जुड़ गया। 1946 में कुछ समाजवादी कार्यकर्ता जेल से छूटने लगे और सोशलिस्ट संगठन को बढ़ाने के प्रयास में लग गए। वे उस समय सोशलिस्ट क्रांग्रेस मैन एसोसिएशन के नाम से काम करते थे। उसमें पूरी लगन से जुट गया। कुछ समय सांप्रदायिक दंगों के खिलाफ जे. पी. की अपील पर लगभग एक महीने छात्रों की टीम के साथ पटना और जहानाबाद के इलाके में काम करता रहा।

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 8

अपनी बात

पार्टी में सक्रियता से पढ़ाई-लिखाई का काम दोयम महत्व का बन गया। 1947 में आईएससी तो किसी तरह दूसरे दर्जे में पास कर गया, लेकिन बीएससी की पढ़ाई बहुत ही बाधित होने लगी। साइंस कॉलेज में पढ़ाई-लिखाई और प्रैक्टिकल के काम में काफी सख्ती बरती जाती थी। स्पष्ट हो गया था कि मैं पास नहीं कर सकता। अब मेरी पढ़ाई भी कोर्स के बाहर की पुस्तकों पर केन्द्रित होती गई। इम्तहान पास करने का इरादा भी कम होने लगा क्योंकि इरादा नौकरी से ज्यादा क्रान्ति करने का बन गया था। इस तरह मैंने तय किया कि अब पढ़ाई छोड़ पूर्णकालिक पार्टी कार्यकर्ता बन जाऊंगा। उस समय बिहार में पार्टी के लेबर सचिव बसावन बाबू थे। मैंने उनसे इस संबंध में बात की और उन्होंने गाड़ी किराया और एक पत्र के साथ अरगडा, हजारीबाग जिला भेज दिया, जहां पार्टी के अत्यंत ही सक्षम और प्रतिबद्ध नेता हरदेव जी (जिन्हें लोग गुरुजी कहते थे) संगठन चलाते थे। यूनियन के अध्यक्ष रामनन्दन मिश्र जी थे और सेक्रेटरी चुनचुन, जो मजदूरों में इतने लोकप्रिय थे कि मजदूर (अधिकांश आदिवासी) सभी यूनियन कार्यकर्ताओं को चुनचुन ही कहते थे (छोटा चुनचुन, बड़ा चुनचुन)। इस तरह मैं 1948 के प्रारंभ में लगभग नौ महीने तक वहीं साउथ कर्णपुरा कोल वर्कर्स यूनियन में काम करता रहा। इसी काल में पार्टी के आदेश पर कुछ समय के लिए गूरी में एल्यूमिनियम कारखाने के मजदूरों का संगठन करने और प्रस्तावित रेल हड़ताल को सफल बनाने के लिए (जेपी उस समय रेलवे- मेन्स यूनियन के अध्यक्ष थे) कुछ समय के लिए बरकाकाना रेलवे जंक्शन पर रेल मजदूरों को संगठित करने के लिए कहा गया। इस बीच हिन्दू मजदूर पंचायत के स्थापना सम्मेलन में कोयला मजदूरों के एक प्रतिनिधि के रूप में कलकत्ता गया था।

बाद में पार्टी ने मुझे पटना बुला लिया। लेकिन वहां कुछ काल तक रहने के बाद ही मैं बंबई चला गया। मैं वहीं था जब 1949 में पार्टी का राष्ट्रीय अधिवेशन पटना में हुआ था।

मुंबई सोशलिस्ट पार्टी से जुड़ाव

मैं 1949 के मध्य में मुंबई गया था। मुख्य आकर्षण तो वहां के मजदूर आंदोलन था और उससे जुड़ने का मन था। लेकिन यह भी वहम था कि पत्रकारिता के माध्यम से समाजवादी विचार को तेजी से फैलाया जा सकता है। उन दिनों मुंबई से निकलने वाली पत्रिका (बी4+2) में अशोक मेहता नियमित रूप से लिखते थे और हम लोग उनसे काफी प्रभावित होते। इसलिए बाजाला तो मैं पत्रकारिता सीखने गया था, जिसकी सुविधा अन्यत्र नहीं थी और मुंबई में हॉर्निमैन कॉलेज ऑफ जर्नलिज्म के नाम से एक संस्था थी, जिसके निदेशक पी.जी. राव थे। वहां साल भर पढ़ने और डिप्लोमा लेने के बाद यह भ्रम तो खत्म हो गया कि पत्रकारिता विचारों के विकास का माध्यम हो सकती है। सीधा-सीधा कुछ कहने का रुझान बढ़ा। स्वयं पी.जी. राव, जो हमसे काफी सहानुभूति रखते थे, पत्रकारिता की सीमा समझाते थे। प्रारंभ में मैं बंबई में माहिम स्टेशन के बगल में ही रहता था और पार्टी की दादर इकाई से जुड़ गया।

मुंबई की पार्टी के एक गुट ने (पूरी पार्टी आधिकारिक रूप से नहीं) यह फैसला किया कि जब नवम्बर 1949 में गोलवलकर बंबई आए तो उनके खिलाफ विरोध प्रदर्शन हो। महात्मा गांधी की हत्या के बाद जेल से छूटकर वह पहली बार बंबई आ रहे थे और आरएसएस ने शिवाजी पार्क में एक भव्य स्वागत सभा का आयोजन किया था। शिवाजी पार्क दादर इकाई के तहत ही आता था और इस इकाई ने भी विरोध-प्रदर्शन के पहल का स्वागत किया। मैंने भी उसमें हिस्सा लेने का फैसला किया। लगभग तीन सौ नए पार्टी कार्यकर्ता काला झंडा लेकर प्रदर्शन के लिए आए। उन्हें दो हिस्सों में बंट कर शिवाजी पार्क की तरफ जाने वाली दो सड़कों से वहां पहुंचना था। उधर आरएसएस के हजारों स्वयंसेवक को इसकी भनक मिल जाने के कारण चौकसी बरत रहे थे। उन्होंने एक सड़क से जाने वाले जत्थे को तो बीच में ही रोक कर उनके झंडे छीन लिए और उन्हें तितर-बितर कर दिया। एक जत्था जिसमें मैं शामिल था शिवाजी पार्क की चारदीवारी तक पहुंच गया और चारदीवारी अधिक ऊंची नहीं थी, उसके ऊपर से छलांग लगाकर मैदान में पहुंच गया, लेकिन काला झंडा दिखाते-दिखाते हम लोगों को आरएसएस के स्वयंसेवकों ने घेर लिया, जिनकी संख्या हजारों में थी। हम सब पर लात-घूसे और लाठियों से हमला शुरू हुआ। एक दो लोगों को छोड़ बाकी लोगों को हल्की ही चोट आई। पुलिसवालों ने तत्परता दिखाई और हम लोगों को घेरे में लेकर गिरफ्तार करके पुलिस चौकी ले गए। प्रदर्शन तो बड़ा नहीं था, लेकिन उसे काफी पब्लिसिटी मिली और बंबईवासियों का समर्थन भी।

लेकिन मेरे लिए यह घटना अत्यंत ही महत्वपूर्ण साबित हुई। इससे मैं तुरंत बंबई में तब उभर रहे उस कार्यकर्ता समूह से जुड़ गया, जो पार्टी को अधिक क्रान्तिकारी नीतियों की ओर ले जाना चाहता था। इसमें अन्य लोगों के अलावा बोल्शेविक लेनिनिस्ट पार्टी के भी कुछ लोग थे। इसी में प्रभाकर मोरे, लक्ष्मण जाधव, एस.आर. राव आदि थे। उन लोगों ने बाद में बंबई में मजदूर आंदोलन को संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बाद में उसी संपर्क से मैं इन्द्रसेन, तुलसी बोडा, टी.आर. राव आदि के संपर्क में आया। टी.आर. राव को नवीनतम पुस्तकों का संकलन करने का जुनून था और उनके संकलन के समाजवादी आंदोलन संबंधी साहित्य से मेरी जानकारी काफी बढ़ी। इन्द्रसेन एक अत्यंत ही गंभीर अर्थशास्त्री थे, जो 'जनता' के संपादन से जुड़े थे और जिनके लेखों के हमारे समय के समाजवादी मुरीद थे। वे भी बोल्शेविक लेनिनिस्ट पार्टी से आये थे और इतने सज्जन थे कि कभी किसी प्लेटफार्म से अपने को आगे बढ़ाने

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 9

की कोशिश नहीं करते थे। प्रभाकर मोरे और लक्ष्मण जाधव दोनों मजदूर वर्ग से आते थे, लेकिन औपचारिक शिक्षा नहीं होने के बावजूद दुनियाभर की राजनीतिक गतिविधियों की जानकारी रखते थे और कोई महत्वपूर्ण पुस्तक अंग्रेजी में छपती तो अंग्रेजी जानने वालों से घंटों बैठ उसका अनुवाद कराकर, उसकी जानकारी ग्रहण करते थे। एच.आर.एस. राव एक बहुत ही दक्ष स्टेनोग्राफर थे और अशोक मेहता के भाषणों को टाइप कर उनकी पुस्तक डेमोक्रेटिक सोशलिज्म का प्रकाशन संभव बनाया था। उनके साथ तनसुख शुक्ल भी थे, जिनमे समाजवादी निष्ठा और सरलता का अद्‌भुद मेल था। इसी संपर्क से मैं गुलाब राव गणाचार्य और बापूराव जगताप जैसे प्रभावी मजदूर नेताओं को जान पाया, जो पहले कम्युनिस्ट पार्टी में थे और 1942 में उनकी आंदोलन विरोधी नीति के कारण सोशलिस्ट पार्टी में शामिल हुए थे। बंबई पार्टी के संयुक्त मंत्री नारगोलकर, जिन्हें उस प्रदर्शन का समर्थन करने के कारण अपने पद से हटना पड़ा था, उनको भी जानने का मौका मिला। लेकिन मेरे लिए सबसे बड़ी उपलब्धि एस. वेंकटराम को जानना हुई, जिनकी बौद्धिक प्रतिभा विलक्षण थी। उनकी एक बात मुझे सदा याद रहती है। वे कहते थे कि 'किसी आदमी को अच्छा समाजवादी बनने के लिए अच्छा आदमी बनना भी जरूरी है।'

उस घटना की चर्चा करना जरूरी लगता है क्योंकि इस क्रम में जो लोग संपर्क में आए और उसके बाद पार्टी में जो वैचारिक विवाद हुए, उसने बौद्धिक रूप से मुझे जागृत करने में विशेष भूमिका निभाई। उसी संपर्क से मैं कपड़ा मजदूरों के समाजवादी नेतृत्व में चलने वाले सभी मिल मजदूर से जुड़ा और उसका पूर्णकालिक कार्यकर्ता बन गया। इसी काल में सवा दो लाख मजदूरों की 62 दिनों की हड़ताल चली। उसी क्रम में मुझे प्रीवेंटिव डायल्यूशन एक्ट में गिरफ्तार कर बायखला जेल में डाल दिया गया, जहां लगभग दो महीना रहने के बाद हड़ताल खत्म होने पर मुझे छोड़ दिया गया। मित्रों की मदद से जेल में किताबें मिलती रहीं और इसी समय मैंने मार्क्स की जीवनी पढ़ी और व्हाइटहेड की एडवेंचर्स ऑफ आइडियाज पढ़ी। इस दूसरी पुस्तक का नाम मेरे ध्यान में था, जब मैंने वर्षों बाद मानवाधिकार पर अपनी पुस्तक का नाम एडवेंचर्स ऑफ लिबर्टी रखा।

वह दौर सोशलिस्ट पार्टी में गहरे वैचारिक विवाद का था और मुझे पार्टी का पूर्णकालिक काम छोड़ना पड़ा। एस.आर. राव के प्रयास से जो सेंट्रल रेलवे में यूनियन के अधिकारी थे। मुझे खलासी का काम मिल गया और मैं वडाला वर्कशाप में काम करने लगा। वहां मैंने डेढ़ साल तक मजदूरी की। काम डब्बों की मरम्मत का था, मुख्य रूप से तेल के टैंकरों की देखभाल और मरम्मत का।

1952 के चुनाव में वर्ली-नायगांव क्षेत्र से सोशलिस्ट पार्टी और शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन की ओर से अशोक मेहता और डॉ. आंबेडकर संसद के उम्मीदवार थे। उन दिनों कुछ क्षेत्रों में आम और एक आरक्षित उम्मीदवार साथ-साथ खड़ा होते थे और मतदाताओं को दो वोट डालना होता था। उस समय सोशलिस्ट पार्टी और डॉ. आंबेडकर की पार्टी 'शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन' के बीच चुनावी समझौता हुआ था और दोनों पार्टियां सम्मिलित रूप से लड़ रही थीं। मेरा कार्य क्षेत्र वर्ली-लोअर परेल था, जो इस संसदीय क्षेत्र का हिस्सा था और वहां काफी बड़ी संख्या में महार मतदाता थे। मुझे उनके बीच काम करने का अच्छा मौका मिला और उससे उनके प्रति आदर भी बढ़ा। हमारे दोनों उम्मीदवार हार गए। बाद में किसान मजदूर प्रजा पार्टी और सोशलिस्ट पार्टी का विलय हुआ, जिसका हमने विशेष कार्य किया था। विरोध तो काफी लोगों ने किया था। एक कारण यह भी था कि यह असंवैधानिक था क्योंकि बिना सम्मेलन बुलाये जेनरल काउन्सिल के फैसले से विलय हुआ था। लेकिन विलय के बाद सभी बड़े नेता उसके पक्ष में थे, इसलिए ज्यादातर लोगों ने उसे कबूल कर लिया। लेकिन इस निर्णय में बोल्शेविक पार्टी से आये कुछ लोगों को छोड़ बहुत थोड़े से लोगों ने हम लोगों का साथ दिया। कुछ लोग आरएसपी में चले गए। कई मजदूर नेता जो कम्युनिस्ट पार्टी से आए थे फिर कम्युनिस्ट पार्टी में चले गए।

जो थोड़े से लोग बच गये थे उन लोगों ने पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा पार्टी को पुनर्गठित करने का अभियान जारी रखा। लेकिन ये मुट्ठी भर लोग थे। मद्रास से अभय वर्धन जो बोल्शेविक पार्टी से आए थे एक पाक्षिक पत्रिका 'सोशलिस्ट अपील' निकालने लगे, जिसके संपादन मंडल में मेरा भी नाम था। मुझे पटना से एक हिन्दी पत्रिका 'समतावादी' निकालने को कहा गया। इस तरह मैं रेलवे की नौकरी छोड़ पटना आ गया। वह पत्रिका कुछ महीने तक ही चल पायी और मैं फिर बंबई चला गया। वहां कुछ दिन डॉक में काम किया और बाद में बी.पी.टी. जनरल वर्कर्स यूनियन (बम्बई पोर्ट ट्रस्ट जनरल वर्कस यूनियन) में पूर्णकालिक कार्यकर्ता के रूप में काम करने लगा। उसके अध्यक्ष जी.एच. काले थे, जो कभी डांगे आदि के साथ भारत में कम्युनिस्ट आंदोलन को शुरू करने वालों में थे और बाद में एम.एन. राय से जुड़े थे। इस यूनियन में काम करते हुए वह भ्रम दूर हो गया कि ट्रेड यूनियनों को आधार बनाकर क्रान्तिकारी मजदूर आंदोलन चलाया जा सकता है, जो समाजवादी क्रान्ति का जनक होगा।

विशेषकर संग्रहित क्षेत्रों के औद्योगिक मजदूरों की स्थिति और व्यवस्था से जुड़ी सुविधाएं भी ऐसी होती हैं कि सशस्त्र व्यापक क्रान्ति में वे भागीदार नहीं हो सकते। इस तरह मजदूर क्रान्ति की कल्पना जो हम मार्क्सवादी सिद्धांतों के कारण पाले हुए थे, खत्म हो गई। उसके थोड़े ही दिनों के बाद 1955 में मैं पटना आ

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 10

अपनी बात

बंबई की पार्टी के एक गुट ने (पूरी पार्टी आधिकारिक रूप से नहीं) यह फैसला किया कि जब नवम्बर 1949 में गोलवलकर बंबई आए तो उनके खिलाफ विरोध प्रदर्शन हो। महात्मा गांधी की हत्या के बाद जेल से छूटकर वह पहली बार बंबई आ रहे थे और आरएसएस ने शिवाजी पार्क में एक भव्य स्वागत सभा का आयोजन किया था। शिवाजी पार्क दादर इकाई के तहत ही आता था और इस इकाई ने भी विरोध-प्रदर्शन के पहल का स्वागत किया, जिसमें मैं जुड़ा था

गया। हमारे बहुत से साथियों और बोल्शेविक-लेनिनिस्ट पार्टी से आए लोगों ने भी प्रजा सोशलिस्ट पार्टी को फिर कबूल कर लिया क्योंकि कोई विकल्प और नहीं है। मैंने कभी उस पार्टी को विश्वसनीय नहीं पाया। इसी बीच आपसी विरोध के कारण डॉ. लोहिया ने प्रजा सोशलिस्ट पार्टी से बाहर आकर सोशलिट पार्टी का गठन करना शुरू किया। हमारे जैसे अनेक लोग, जो अलग-थलग पड़े थे, उससे जुड़ गए। उसके बाद के घटनाक्रम में सोशलिस्ट पार्टी और प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के विलय से संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी का गठन हुआ और गैर-कांग्रेसवाद के नारे के तहत एक वैकल्पिक सरकार बनाने का सपना साकार होता दिखाई दिया, लेकिन समाजवाद का लक्ष्य अभी ओझल ही था यह एक नई तलाश की शुरुआत थी। इसके बैनर तले 1965-1967 में बड़े आंदोलन हुए और पहली दफा कुछ राज्यों में गैर-कांग्रेस और गैर-कम्युनिस्ट पार्टियां सत्ता में आईं। हालांकि अब इस गठजोड़ से कम्युनिस्ट भी वर्जित नहीं थे।

इसी प्रक्रिया में 1965 में बिहार में एक बड़ा जन आंदोलन हुआ, जिसका नेतृत्व मूलतः संसोपा के हाथ में था, पर कम्युनिस्ट पार्टियां भी शामिल थीं। मुजफ्फरपुर में नजरबंदी की स्थितियों के खिलाफ मैंने एक आवेदन दिया था, जिसमें व्यक्त विचार आज भी प्रासंगिक हैं।

समाजवादी सत्ता के समीप तो आए, लेकिन सत्ता पाने की जद्दोजहद में समाजवाद का लक्ष्य कहीं लुप्त होता गया। 1967 में ही गैर-कांग्रेसवाद को सफलता मिली और उसी साल डॉक्टर लोहिया की मृत्यु हो गई। अब सत्ता के लक्ष्य और सत्ता में रहने की कुछ शर्तें जो डॉ. लोहिया गैर-कांग्रेसवाद के साथ जोड़ते थे, किसी की चिंता के विषय नहीं रहे। पार्टी के भीतर ही राजनारायण और मधु लिमये, जो लोहिया की विरासत को लेकर चल सकते थे, आपसी द्वन्द्व में उलझ गए। ऐसा लग रहा था कि समाज की समझ धूमिल हो गई थी और यह सब व्यक्तिगत स्खलन का परिणाम था। कम से कम मुझे ऐसा ही लग रहा था। मुझे ऐसा लग रहा था कि हमें फिर अपने वैचारिक जड़ों को तलाशने की जरूरत है। 1968 से आज तक मैं मूलतः इस उद्देश्य को लेकर चलने का प्रयास करता रहा हूं। लेकिन यह तलाश बिल्कुल अकेले नहीं हो सकती और इसमें नई पीढ़ी के सहयोगियों की तलाश जरूरी है। पिछले दिनों मेरी ऐसी ही कोशिश रही है। लिखने का मुख्य उद्देश्य यही रहा है। अपने अनुभवों को उन सबों को बांटना, जो हमराही हो सकते हैं।

जेल के अधिकारियों के माध्यम से भेजे गए इस आवेदन और इसकी पृष्ठभूमि के संबंध में कुछ जानकारियां देना जरूरी लगता है। 1965 का मध्य काल बिहार में घोर उथल-पुथल का काल था। वह समय बिहार में घोर दमन और शोषण का काल था। उसी समय पाकिस्तान के साथ एक अल्पकालिक युद्ध छिड़ा था। इधर कांग्रेसी शासन के खिलाफ लोगों में गहरा रोष था

'पैडी लेवी' जैसे किसान विरोधी नीतियों के तहत किसानों पर मनमाना धान वसूली का लक्ष्य तय किया जाता और उसकी हैसियत का ख्याल किये बगैर वसूला जाता; देने से इन्कार करने पर गिरफ्तारी तथा और तरह की ज्यादतियां की जातीं। किसानों में भीषण असंतोष था। महंगाई और व्यवस्था के खिलाफ आम लोगों और विद्यार्थियों में भी घोर असंतोष था। नतीजा था कि बिहार में प्रदर्शन और बंद का सिलसिला चला। बड़े पैमाने पर गिरफ्तारियां और बीच-बीच में गोलीबारी आम बात हो गई थी। इसी पृष्ठभूमि में सरकार के खिलाफ संघर्ष चलाने के लिए, संयुक्त सोसलिस्ट पार्टी की पहल पर एक संयुक्त संघर्ष समिति बनी थी, जिसमें कम्युनिस्ट पार्टी और हाल में पार्टी से अलग होने वाले लोगों की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) भी शामिल थी। उस समय, बाद में स्वतंत्र अस्तित्व में आने वाले जिले वैशाली और सीतामढ़ी भी मुजफ्फरपुर जिला के हिस्से थे। मुझे इस संघर्ष समिति का संयोजक बनाया गया।

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन उस समय मुजफ्फरपुर के नगर क्षेत्र और सीतामढ़ी के कुछ हिस्से में काफी चुस्त था। संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी का तो 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के काल से ही जिले में विशेषकर सीतामढ़ी और वैशाली वाले इलाके में व्यापक संगठन था। वैशाली क्षेत्र से ही योगेन्द्र शुक्ल सशस्त्र क्रांति व भगत सिंह के समय के क्रान्तिकारी आंदोलन के नेता सीताराम सिंह एवं अमीर गुरु थे (दोनों ही आजाद दस्ता के नेता, जिन्होंने जे.पी. और लोहिया आदि को नेपाल के जेल से मुक्त कराया था)। प्रसिद्ध समाजवादी नेता अक्षयवट राय भी इसी जिले से थे। सीतामढ़ी नेपाल की सीमा पर होने के कारण न सिर्फ

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 11

आजाद दस्ता के कार्यकर्ताओं का क्षेत्र था बल्कि व्यापक किसान आंदोलन का क्षेत्र था और यहीं पर बाबा रामबहादुर लाल के नेतृत्व में भूमि सेना ने सड़क और बांध का निर्माण बड़े पैमाने पर किया था। इन आंदोलनों से जुड़े अनेक कार्यकर्ता जो बीच में निष्क्रिय हो गये थे, इस आंदोलन के क्रम में फिर सक्रिय हो गए। मुजफ्फरपुर का क्षेत्र भी 1942 के आंदोलन के काल से ही राष्ट्रीय आंदोलन और उसके समाजवादी धड़े के प्रभाव का क्षेत्र था। 1965 में ये सारे लोग सक्रिय हो गए और उन्हें समर्थन मिला विश्वविद्यालय और स्कूलों के छात्रों और शिक्षकों का। इससे आन्दोलन को व्यापक जन समर्थन मिला। इसी अनुपात में दमन शुरू हुआ। आंदोलन समर्थकों के लिए एक पर्चा निकालना तक कठिन हो गया। प्रेस वाले इतने आतंकित थे कि प्रेस का नाम देकर कोई पर्चा निकालने तक से इनकार करता। पर्चा बांटने वाले को गिरफ्तार कर लिया जाता। लेकिन दमन के बावजूद और शायद इस दमन के कारण ही लोगों का समर्थन बढ़ता गया। सैकड़ों वैसे सामाजिक कार्यकर्ताओं को, जो कभी भी सोशलिस्ट या कम्युनिस्ट पार्टी से संबद्ध रहे हो, उनके घरों से पकड़कर जेलों में बन्द कर दिया गया।

मुझे सक्रिय कार्यकर्ताओं से संपर्क बनाये रखना था इसलिए मैंने गिरफ्तार होने से बचने की कोशिश की। पुलिसवालों को, जो मुजफ्फरपुर जिले के आंदोलनों की पृष्ठभूमि से अनभिज्ञ थे, यह भ्रम था कि गिरफ्तारी से बचकर मैं इस आंदोलन में विशेष भूमिका निभा रहा हूं। उन्होंने मुझे गिरफ्तार करने के लिए जगह-जगह छापेमारी की और पहचान के लिए गांव के चौकीदार को जीप पर जहां-तहां घुमाया। लेकिन मैं कोई ऐसा जाना-माना नेता नहीं था, जिसे बहुत लोग जानते हो, मेरी पहचान मुश्किल थी। अंत में कपूरी ठाकुर की सलाह पर, जो पटना गांधी मैदान की पुलिस द्वारा की गई सामूहिक पिटाई के कारण पुलिस हिरासत में ही पटना अस्पताल में थे और मैं उनसे नहीं मिला था, गिरफ्तार हो गया। काफी दिनों तक गिरफ्तार नहीं कर पाने की चिढ़ और आन्दोलन में मेरी भूमिका को बढ़ा-चढ़ा कर देखने के कारण, गिरफ्तार करने के बाद पुलिस प्रशासन मुझे अधिक से अधिक यातनापूर्ण स्थिति में रखना चाहता था। उसका उपाय नजरबन्दी के साथ सिम्बल 'सी' लगाना था, ताकि नजरबन्दी में जो कुछ खाने-पीने, रहने और मुलाकात की सुविधाएं मिलती हैं, उसे खत्म किया जा सके। वैसे जेल के अधिकारियों को मैं कुछ खास खौफनाक नहीं लगता था और नियमों के बावजूद मुझे बाकी नजरबन्द कैदियों के साथ ही रखा जा रहा था और हम सब अपनी गुपचुप सम्मिलित गोष्ठियां चलाते रहते थे। लेकिन सिम्बल 'सी' लगाने के प्रावधान के खिलाफ विरोध प्रकट करना जरूरी था। इसीलिए मैंने आमरण अनशन पर जाने की नोटिस दी थी। पता नहीं अधिकारियों के बीच क्या मंत्रणा हुई, जिस दिन से मेरा अनशन शुरू होना था, उसके एक दिन पहले शाम को मुझे कैद से रिहा कर दिया गया। एक कारण तो शायद यह था कि धीरे-धीरे सैकड़ों की संख्या में बंद दूसरे नजरबंद कैदियों को छोड़ने का सिलसिला शुरू हो गया था। कुल मिलाकर उस आंदोलन का यह असर जरूर हुआ कि वहां के विधानसभा चुनावों में मुजफ्फरपुर जिले से संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के प्रत्याशी नौ स्थानों पर विजयी हुए, जितना पहले कभी नहीं हुए थे।

गांधी जी के प्रति भक्ति और क्रान्तिकारियों के प्रति दिलचस्पी दोनों साथ-साथ थे। लेकिन उम्र और रुचि के कारण सशस्त्र क्रान्ति की तरफ रुझान ज्यादा गहरा था। उस समय हथियार पाना उतना आसान नहीं था जितना आज है, लेकिन यह इच्छा जरूर थी कि हम लोग स्वयं बम आदि बनाकर क्रान्तिकारियों की मदद करते। खादी के प्रति कट्टरता जरूर थी और एक समय जब खादी के कपड़े मिलना मुश्किल हो गया था तो एक या दो फटी धोती और कमीज ही पहनता था

उसके बाद बिहार में संविद सरकार बनी। लेकिन विंदेश्वरी मंडल के दल-बदल के कारण वह सकार गिर गई और विधानसभा भंग हो गई। उसके बाद 1969 में फिर चुनाव हुए और संसोपा और उसकी सहयोगी पार्टियां फिर सत्ता में आ गईं, लेकिन धीरे-धीरे समाज परिवर्तन का लक्ष्य गौण हो गया। समाजवादी विचारों को फिर से जांचने का विचार मेरे ऊपर हावी होने लगा। उस के बाद मैं सक्रिय राजनीति से अलग होकर 1969 के अक्टूबर में दिल्ली चला गया। अठारह साल से ज्यादा समय तक मैं पढ़ने-लिखने में ही लगा रहा। जेपी आन्दोलन के दौर में और फिर आपातकाल में समय-समय पर आंदोलनकारियों का सहयोग भी करता था। लेकिन यह न्यूनतम था। 1980 में समता संगठन खड़ा करने की पहल में जरूर सक्रिय था और उसका नीति-वक्तव्य तैयार करने की जबाबदेही मुझे दी गई। उसके बाद से समाजवादी जन परिषद बनने तक और उसके बाद तक इस संगठन से जुड़ा रहा, लेकिन मेरी सक्रियता मुख्य रूप से बौद्धिक क्षेत्र में ही रही। उसके बाद की स्थिति और मेरे लेखन के संबंध में तो आप सब लोग परिचित ही हैं। ■

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 12

अपनी बात

मेरे बड़के भैया

मनोरमा सिन्हा

मेरे बड़के भैया आज के लोगों से बिल्कुल भिन्न थे। बहुत बचपन की बातें तो मुझे मालूम नहीं, क्योंकि बड़के भैया मुझसे बारह वर्ष बड़े थे। जब मेरा जन्म हुआ, तब तक भैया स्कूल में पढ़ने चले गए थे।

बड़े भैया की याद मुझे 1948 से है, जब मैं पटना आ गई। मेरे नानाजी जब मंत्री हुए और पटना रहने आ गए, तब उन्होंने कहा कि घर में कोई बच्चा नहीं है, घर सूना लगता है, इसलिए मनोरमा और छोटी बहन सरोज को यहां बुला लिया जाए। मैं और सरोज पटना आ गई।

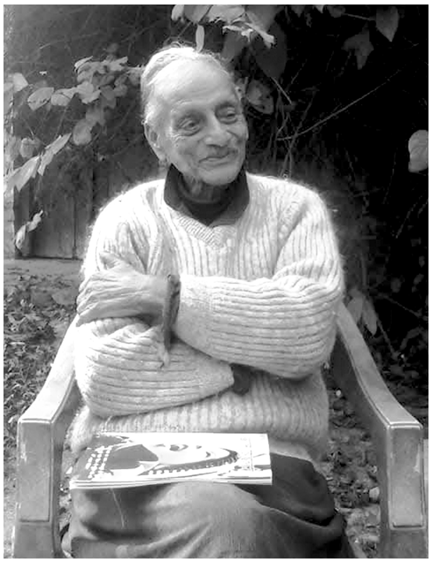

बड़के भैया से इसी समय मुलाकात हुई और साथ रहने का मौका मिला, लेकिन वह भी दूर-दूर से ही। ऐसा हुआ कि भैया का इम्तहान था और वे उसमें बैठे नहीं। उनके साथियों ने खबर की कि वे परीक्षा नहीं दिए और कहीं चले गए।

कुछ दिनों पहले भैया को चेचक हो गया था और नानाजी ने उन्हें बुला लिया था। जब अच्छे हुए तभी हॉस्टल गए। कुछ दिनों बाद परीक्षा होने वाली थी और हुई भी। लेकिन भैया बीमारी की वजह से पढ़ नहीं पाए थे, इसलिए परीक्षा नहीं दिए। उनके क्लास के लड़के ने नानाजी को खबर किया तो नानाजी चिंतित हो गए। घर में सभी लोग चिंता में पड़ गए। उन्होंने कहा कि वह कहीं चला गया है, क्योंकि कमरे में भाई का सामान नहीं था। वैसा हुआ भी। भैया सोशलिस्ट पार्टी से प्रभावित थे। बाद में (पता चला कि) वे संथाल परगना में आदिवासियों के बीच उन्हें शिक्षित करने का काम कर रहे थे।

वहां से लौटने के बाद वापस आए तो उन्होंने बाबूजी से कहा कि मैं जर्नलिज्म की पढ़ाई बंबई जाकर करना चाहता हूं। बाबूजी ने उनको अनुमति दे दी और वे बंबई चले गए।

जार्ज फर्नांडीज से उनका अच्छा सम्पर्क था। उनकी विचारधारा से प्रभावित रहे होंगे। फिर वे साथी मजदूरों के अधिकारों की लड़ाई में उनके साथ काम करने लगे। इस दरम्यान शायद जेल भी गए।

वहां से लौटने के बाद हैदराबाद से एक पत्रिका निकलती थी मैनकाइंड। जार्ज साहब ने उन्हें कहा कि मैनकाइंड का संपादन करें और इस काम को भी करने लगे।

भैया के साथ रहने का अवसर मुझे 1958 के बाद मिला और मिलता रहा। मेरी शादी 1958 में हुई और संयोग से मेरा ससुराल मुजफ्फरपुर में है और भैया मनिका में रहने लगे थे। दिल्ली छोड़कर मनिका (मुजफ्फरपुर) क्यों आए, इसका भी कोई कारण रहा होगा।

शुरू में भैया तो जर्नलिज्म की पढ़ाई करने बंबई गए थे, उसे पूरा कर तथा वहां डॉक मजदूरों पर हो रहे अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाने में सक्रिय हो गए। उसके बाद वे एक तरह से सोशलिस्ट पार्टी, जिसमें जार्ज फर्नांडीज जैसे नेता थे, उनके साथ काम करने लगे। हड़ताल कराना, जेल जाना आम बात हो गई। बाद के दौर में वे दिल्ली में रहकर किताबें लिखने में व्यस्त हो गए थे। दिल्ली से वे मनिका आकर रहने लगे तो फिर अंत तक यही रहे।

उसके पहले का एक वाक्या याद आता है। मेरे बाबूजी 1952 के विधानसभा चुनाव में एमएलए हुए। उन्होंने भैया को कहा कि तुम आकर यहां संभालो और परिवार को देखो। तब उन्होंने वह जिम्मेदारी भी उठाई थी और हम लोगों की पढ़ाई का खर्च और साथ-साथ अपने कार्य को भी पूरा किया। शायद उसी समय उन्होंने *समाजवाद के बढ़ते कदम* किताब लिखी।

परिवार की जवाबदेही से मुक्त होकर वे दिल्ली चले गए। वहीं पढ़ना और लिखना जारी रहा। कई किताबें लिखीं। एक और खासियत भैया में थी, उसे भी कहना जरूरी है। जब भैया दिल्ली में रहा करते थे, तो मैं वहां अक्सर जाया करती थी। मेरी एक बेटी, जो दो वर्ष की थी, उसे लेकर ही जाती थी। वहां दिनभर उन्हीं के साथ रहती थी। मैं और भैया मिलकर स्टोव पर खाना बनाते थे। हम लोगों को खिलाते थे और उसके बाद सब जगह घुमाना-दिखलाना करते थे।

एक पीछे की बात भी याद आ रही है। बात 1961 की है। तब मैं हाजीपुर में रहती थी। वहां सोनपुर मेला लगता है–शायद कार्तिक में। मेरी मां भी आती थीं मेला देखने। मेरी बेटी रश्मि 3-4 महीने की थी। पूरे मेले में भैया उसे गोद में लेकर घुमाते थे। हम लोगों को नहीं देते थे। अब ऐसा संयोग देखिए– भैया बीमार थे, हम लोग अक्सर मुजफ्फरपुर ही रहते थे। मेरी बेटी रश्मि संयोग से मुजफ्फरपुर आ गई, वैसे वह दिल्ली में रहती है। अंतिम दिनों में भैया के साथ रहने का अवसर मिला। ईश्वर की ही कृपा है। ■

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 13

नए सिरे से तय हो बौद्धिकों की भूमिका

गिरधर राठी

यह बातचीत उस वर्ष हुई, जब सच्चिदानन्द सिन्हा साठ के हो गए। यह बात भी एक आश्चर्य की तरह खुलती है। जन्म-तिथि सच्चिदा जी भी नहीं बताते। कहते हैं मलमास में जन्म हुआ था, जो श्रावण था। दुबारा श्रावणी मलमास कितने बरस बाद आता है? यों शायद सितंबर की 3-4 तारीख रही हो। गांव बरसौनी (मुजफ्फरपुर, बिहार) और वर्ष 1928। जन्म-तिथि के बारे में उनकी यह लापरवाही स्व-मोह से बचे रहने की, अपरिग्रही बने रहने की, सतर्क लेकिन स्वाभाविक बन चुकी वृत्ति के तहत जायज है। यह उनके सभी मित्र मानेंगे। लगभग तीन साल पहले वे दिल्ली छोड़कर मनिका (मुजफ्फरपुर), अपने गांव लौट गए। 18-20 बरसों में दिल्ली में जगह-जगह किराये के उनके कमरे को जिन्होंने देखा है, उन्हें उनका ठाठ आसानी से याद रह जाता है। चारपाई, एक कुरसी, स्टोव, एक या दो भगोने, दो या तीन कांच के गिलास, स्टोव, कुछ पुस्तकें, अखबार और पत्रिकाएं। सुबह-सुबह ठण्डे पानी से नहाने की आदत इसलिए कि पानी गरम करने में खर्चा बढ़ता है। भोजन में चाय और खिचड़ी; कभी-कभी ही रोटियां। मनिका में खिचड़ी का स्वाद बढ़ गया है, क्योंकि दो-ढाई कमरों के 'विशाल' घर के चारों तरफ फल, फूल और साग-भाजी की बहार एकाध एकड़ में है– ताजा पालक या टमाटर तोड़े और खिचड़ी को भेंट कर दिए। जल्दी सो जाते हैं क्योंकि बिजली भी नहीं लेना चाहते। रात में आसमान और तारों से खूब जान-पहचान होती है। पुस्तकालय में बैठ-बैठकर कितनी ही किताबें उन्होंने दिल्ली में लिख डालीं। वहां पुस्तकालय नहीं है तब भी दो-तीन पुस्तकें और कई लेख और स्तंभ लिख चुके हैं। *भारतीय राष्ट्रीयता और साम्प्रदायिकता* अभी ही प्रकाशित होने वाली है। *नक्सली आन्दोलन का वैचारिक संकट* भी जल्दी ही। पिछले दिनों सच्चिदाजी से बहुत सारी बातें हुईं, जिनके बिना किसी खास तरतीब के कुछ अंशः

आप बीसेक बरस दिल्ली रहे। अब गांव में रहते हुए कैसा लगता है? दिल्ली छोड़े आपको लगभग तीन बरस हो रहे हैं...

मैं ज्यादातर शहरों में ही रहा। बचपन में शिक्षा पटना में - इण्टरमीडिएट में घर छोड़कर अबरक के खदान मजदूरों की यूनियन में काम! फिर लगभग 1948 से आठ दस बरस बंबई-रेल विभाग में। (संक्षिप्त और एकमात्र) नौकरी, ट्रेड यूनियनों और समाजवादी पार्टी में काम - कुछ दिन हैदराबाद में 'मैनकाइंड' के सम्पादन में, लेकिन हैदराबाद में तबीयत खराब हो गई- सो दिल्ली आने से पहले बारह-एक वर्ष लगातार गांव में रहा था...

लेकिन शहरों में रहना मुझे कभी भी अच्छा नहीं लगा। हालांकि अब गांव भी बिल्कुल बदल चुके हैं। गांव अब पास के शहरों के अंग बन गए हैं- सारे कामकाजी मर्द सुबह घर से चल देते हैं, शहर में धंधा, नौकरी, मजदूरी के लिए। रह जाते हैं कुछेक बीमार या बूढ़े और औरतें। गांवों का सामुदायिक जीवन समाप्त हो चुका है। रोजगार नहीं हैं। छोटे-मोटे खेत बेचकर लोग शहरों में जा रहे हैं - और शहर के मध्यमवर्गीय ही इन छोटे-मोटे खेतों- दो-दो चार कट्ठों के टुकड़े खरीद रहे हैं - अपनी जीवन भर की कमाई लगा कर। (कृषि स्वामित्व का परिदृश्य बदल रहा है।)

मनिका में आपके अध्ययन और लेखन की सुविधाएं तो जुट नहीं पातीं। समय बिताना समस्या है?

नहीं। बाहरी दुनिया से संपर्क का ज्यादातर साधन रेडियो है और दोपहर बाद आने वाला अखबार-हमारे अखबारों में विदेशी घटनाक्रम पर भी इतना कम छपता है कि बीबीसी की अंगरेजी सेवा ही ज्यादा कारगर जान पड़ती है। यह कमी तब ज्यादा महसूस हुई, जब एक स्तंभ 'परिवर्तन' (कलकत्ता से निकलने वाली पाक्षिक पत्रिका) के लिए लिख रहा था। गांव में चालीसेक टेलीविजन हैं, और हां, स्कूटर तथा मोटरसाइकिलें तो बढ़ ही रही हैं। मिलजुलकर बैठना टेलीविजन के कारण भी बंद हो रहा है। कुछ दिन मैंने गांव की हालत का सर्वेक्षण-सा किया था, जो कई तरह से चौंकाने वाला था।

मेरा अपना समय घर के आसपास खाली प्लॉट में फूल, सब्जियां और तरह-तरह के पेड़-पौधे लगाने में, उनकी देखभाल में मजे से गुजरता है। संसार में आकाश और तारे हैं यह वहीं जाकर पता लगता है। पास के एक गांव में एक अनोखा बगीचा हुआ करता था। एक वकील थे, जिन्होंने दुनिया के तरह-तरह के पेड़ वहां लगाये थे- अब यह नष्टप्राय है। मैंने आम, लीची, नारियल, पपीते, अनार, नींबू इत्यादि के कुछ पौधे लगाये हैं। कुछ पौधे लगे नहीं, शायद आबोहवा के कारण, हां कुछ पौधे जरा-सी अनुपस्थिति में ही नष्ट हो गए- जानवरों के कारण या फिर लोगों द्वारा जानबूझ कर। एक बड़ा लाभ यह भी है कि ताजा सब्जियां तोड़कर खिचड़ी में डाली जा सकती हैं।

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 14

बातचीत

शहर से आपका संपर्क ?

महीने में दो-एक बार मुजफ्फरपुर जाना होता है- वहां मां हैं, भाई हैं (बिहार पीयूसीएल के अध्यक्ष प्रभाकर सिन्हा और एक सक्रिय राजनीतिक कर्मी अरविन्द), सामयिक वार्ता (मासिक) की सामग्री इत्यादि देखने। जाहिर है कि दिल्ली जैसी पुस्तकालयों की सुविधा वहां नहीं है, आम तौर पर बिहार में कहीं नहीं है। पुस्तकों की दुकानों का अजीब हाल है– एक जगह तमाम बड़े मशहूर लेखकों के नाम देखकर किताबें टटोलीं तो पाया कि वे पाठ्य पुस्तक की कुंजियां मात्र हैं। उनमें किसी में भी नाटक, उपन्यास या कविता का मूलपाठ नहीं था!

लेकिन बिहार हिन्दी के उन दो-तीन राज्यों में है, जहां हिन्दी के अखबार, पत्रिकाएं और पुस्तकें सबसे ज्यादा बिकती हैं ?

पत्रिकाएं और अखबार शायद इसीलिए बिकते हों कि जानने के सारे साधन- स्कूल-कॉलेज, पुस्तकालय, अन्य संस्थान वहां दिनोंदिन बदतर हालात में पड़ते जा रहे हैं। किताबें लोगों के घर नजर नहीं आतीं। जो बिकती हैं शायद पुस्तकालयों में जाती हों– तमाम भ्रष्टतम तरीकों से इनकी बिक्री होती है। फिर वे बंद पड़ी रहती हैं। शिक्षा की स्थिति बहुत ही खराब हो चुकी है। रोजगार नहीं। नतीजतन युवक अपराधी किस्म के कामों में फंसते जाते हैं। राजनीति में अपराधीकरण का उत्स यहीं है– इन्हीं बेकार युवकों को थोड़े दिनों के लिये कुछ पैसा देकर राजनीतिक दल अपने खूंखार समर्थक बना लेते हैं।

क्या आपको अब नहीं लगता कि आधुनिकीकरण की दौड़ से लोगों को विमुख करना असंभव हो चला है ?

निश्चय ही उपभोक्ता संस्कृति हम पर हावी होती जा रही है। लेकिन भारत की स्थिति, भारत के आंकड़े ही ऐसे हैं कि विकास के मौजूदा तरीके से कुछ भी हासिल नहीं हो सकेगा। वामपंथियों के प्रिय नारे भूमि सुधार की कोई खास उपयोगिता नहीं रही - बड़े किसान नगण्य हैं, छोटे खेत गरीब या मध्यमवर्गीय लोगों के पास हैं। यह जरूर है कि 10-15 एकड़ तक की जोतें अब भी कुछ खास जातियों के हाथों में हैं। बाकी खेत मजदूर हैं, आम तौर पर जिन्हें हरिजन कह सकते हैं। इसलिये भी 'नक्सली' आन्दोलन के संघर्ष वर्ग के संघर्ष की बजाय जाति संघर्ष का रूप ले लेते हैं। दूसरी ओर शहरों में तमाम उद्योग और रोजगार के केन्द्रीकरण से गांव हर तरह से उजड़ रहे हैं। संकेन्द्रित पूंजी, श्रम और तकनीक... इन सबमें समय, शक्ति और संसाधन की अकूत बर्बादी है। ग्रामीण उद्योगधंधों और यथासंभव आत्मनिर्भर क्षेत्रों की कल्पना के बगैर होगा यही कि अधिकाधिक लोग हाशिये पर जाते रहेंगे- बेघर, बेकार, हताश और आपराधिक वृत्तियों की ओर झुकते हुए...

शहरों में तमाम उद्योग और रोजगार के केन्द्रीकरण से गांव हर तरह से उजड़ रहे हैं। संकेन्द्रित पूंजी, श्रम और तकनीक... इन सबमें समय, शक्ति और संसाधन की अकूत बर्बादी है। ग्रामीण उद्योगधंधों और यथासंभव आत्मनिर्भर क्षेत्रों की कल्पना के बगैर होगा यही कि अधिकाधिक लोग हाशिये पर जाते रहेंगे

जब कोई हमारे प्लॉट से सूखी लकड़ी काटने के नाम पर हरी डालों पर भी कुल्हाड़ी चला जाता है, ताकि कुछ दिन बाद फिर 'सूखी लकड़ी मिल जाये... तो गुस्सा बहुत आता है। पर यह भी ख़्याल आता है कि गांवों में ईंधन है कहां ? ये लोग जाएं कहां ?

गोबर गैस, सौर ऊर्जा... ये हमारे यहां अपार ऊर्जा के स्रोत हो सकते थे। लेकिन खोज और अनुसंधान में इन पर खर्च नगण्य रहा। इसके बजाय आणविक और ताप बिजली घरों में पूंजी लगाई जाती रही। ऊर्जा और ईंधन के क्षेत्र में आज बिजली का कुल योगदान नगण्य है। लेकिन लागत भयावह। पश्चिम में भी लेविस जैसे विशेषज्ञों ने सप्रमाण बताया है कि उत्पादन और उपभोग, दोनों में बिजली कितनी अधिक बरबाद की जाती है...

आप समाजवादी चिन्तक और सक्रिय कार्यकर्ता हैं। समाजवाद तो औद्योगीकरण का ही पक्षधर रहा है।

पूंजीवाद और समाजवाद दोनों ही उद्योग प्रधान विचारधाराएं हैं, यही उनका मूल है, इसलिए उनमें यही बुनियादी साम्य भी है। लेकिन दुनियाभर के अनुभव दिखाते हैं कि दोनों ही अपने प्रकट- प्रचलित रूप में समस्याएं ही पैदा करते रहे हैं।

गरीबी और प्रदूषण व हथियारों के जरिये मानवता के विनाश तक के भय इनकी देन हैं। मार्क्सवाद से प्रभावित समाजवाद शुरू में मुझ पर भी इसका काफी प्रभाव था- पूरे पूर्वी यूरोप में विफल रहा है। उसकी मूल कल्पना ही केन्द्रीकरण तथा नौकरशाहीकरण की रही। मार्क्सवाद ने पूंजीवाद की सीमाएं दिखाने का बड़ा काम बेशक किया है, लेकिन उक्त दोनों प्रवृत्तियों ने मनुष्य को केंद्र से हटा दिया।

यह सोचना भी निरी खामख़्याली होगी कि जिस उन्मुक्त पूंजीवाद की खामियों को दूर करने के लिए समाजवाद की अवधारणा आई थी, उसी पूंजीवाद से, बाजार की खुली व्यवस्था मात्र से वे दोष खत्म हो जाएंगे। सोचने की और कर्म की दिशा वस्तुतः विकेन्द्रित और अलग ढंग के विकास में ही है। चरम किस्म की

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 15

सादगी की अपेक्षा हर आदमी से नहीं की जा सकती, यह सही है, लेकिन अंधाधुंध जरूरतें पैदा करते हुए उनका समाधान खोजने की कोशिश बेकार हो चुकी है।

पूर्वी यूरोप जहां मार्क्सवादी (बल्कि स्तालिनवादी और काफी हद तक लेनिनवादी) समाजवाद की विफलता रेखांकित करता है, वहीं यह भी नहीं भूलना चाहिए कि बुनियादी विश्व-समस्याएं अब भी मौजूद हैं। पूंजीवादी विकास के लिये प्रत्यक्ष या परोक्ष उपनिवेश आवश्यक हैं। हमारे देश के भीतर 'अंदरुनी उपनिवेश' इसीलिये बने हैं। पिछड़े क्षेत्रों के संसाधन कुछ थोड़े-से संपन्न क्षेत्रों में लाकर उन्हें संपन्नतर बनाया जाता रहा है - जैसे इंग्लैण्ड किसी समय दुनियाभर की दौलत बटोरकर संपन्न होता रहा, या अमेरिका इत्यादि देश आज अपनी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के सहारे कच्चे माल और तैयार माल, दोनों की खरीद-फरोख्त में संसार का धन बटोर रहे हैं। भारत को बाहर ऐसी कोई सुविधा नहीं, इसलिए देश के भीतर ही यह हो रहा है।

विकास का यह मार्ग ही आज तमाम राज्यों और क्षेत्रों में विक्षोभ, अशान्ति और संघर्ष का कारण है। राजनीतिक के साथ-साथ आर्थिक और सामाजिक लोकतंत्र की, आजादी की, समान अधिकारों की जरूरत को नहीं पहचानने के कारण तथाकथित राष्ट्रवादियों को लगता है कि देश टूट रहा है।

सच्चे लोकतंत्र और आजादी की बहाली तभी संभव है, जब विकास का यह केंद्रीकृत 'मॉडल' रद्द किया जाये। इसी मायने में गांधीजी या हमारे अन्य विचारक माननीय हैं। लोकतंत्र के बिना समाजवाद थोथा है। सिर्फ मताधिकार ही नहीं, संपत्ति के उत्पादन और वितरण में भी लोकतंत्र तभी संभव है, जब विकास छोटे-छोटे क्षेत्रों, समूहों, राज्यों से जुड़ा हो। स्थानीय आवश्यकता, संसाधन, ज्ञान, संस्कृतिपरक वातावरण- इन सबको प्राथमिकता मिले! और यह काम कठिन भले हो, असंभव नहीं।

बौद्धिकों का एक अच्छा खासा वर्ग इन दिनों विकल्प की तलाश में है। भारतीय बौद्धिकों की भूमिका आज आपको कैसी लगती है?

पश्चिम में बौद्धिकों का एक छोटा-सा ही सही, पर ऐसा वर्ग हमेशा रहा है, जिसने सत्ताधारी वर्ग की मानवघाती नीतियों का खुला विरोध किया है। सवाल चाहे पहले और दूसरे विश्वयुद्ध का या युद्धमात्र का हो, या आणविक हथियारों का, या प्रदूषण और अंधराष्ट्रवाद का। हमारे बौद्धिकों में ज्यादातर इस साहस का अभाव दिखाई देता है।

> **विकल्प की तलाश करने वाले बुद्धिजीवी भी अपनी सुविधाओं के जाल में फंसे हुए हैं। जब भी यह सवाल उठता है कि आखिर देश में परिवर्तन कैसे आये, उसके स्त्रोत और उपाय क्या होंगे- तब बौद्धिक वर्ग में कोई भी आगे आकर यह नहीं कहता कि देश के हालात में हमें जो सुविधाएं, साधन उपलब्ध हैं, विवेकसंगत नहीं हैं**

उदाहरण के लिए, पंजाब और कश्मीर को देखें। हर कोई इस समय या तो सांप्रदायिक दृष्टि से इस मसले को देख रहा है या फिर अंधराष्ट्रवादी दृष्टिकोण से। हमारे बौद्धिकों ने राष्ट्र और राज्य की उस पश्चिमी अवधारणा को आत्मसात कर लिया है, जिसमें नस्ल, जाति, भाषा या धर्म के लोगों ने अलग-अलग राष्ट्र राज्य क्रमशः बना लिए थे। पर भारत की स्थिति ऐतिहासिक तौर पर भी बिल्कुल अलग रही है। हमारे बौद्धिक पूर्वी यूरोप या दुनिया के अन्य देशों में तो जातीय-सांस्कृतिक स्वतंत्रता के लक्षण देखते हैं, पर खुद हमारे देश में विकृत आर्थिक-राजनीतिक नीतियों के विरोध में उत्पन्न लोकतांत्रिक आकांक्षा की अभिव्यक्ति को राष्ट्रद्रोही वगैरह करार देते हैं। हमारा समय ही हमें बता रहा है कि लोकतांत्रिक जन-उभार को किसी भी सर्वग्रासी विचारधारा से या सैनिक तरीकों से बहुत दिन दबाकर नहीं रखा जा सकता। बौद्धिकों से अपेक्षा होती है कि वे सत्ताधारी दलों और निहित स्वार्थों के सुर में सुर मिलाने की बजाय, निर्भीक और निष्पक्ष होकर अपनी राय रखें। इस दृष्टि से हमारे बौद्धिक सर्वथा विफल रहे हैं।

विकल्प की तलाश करने वाले बुद्धिजीवी भी अपनी सुविधाओं के जाल में फंसे हुए हैं। जब भी यह सवाल उठता है कि आखिर देश में परिवर्तन कैसे आये, उसके स्त्रोत और उपाय क्या होंगे- तब बौद्धिक वर्ग में कोई भी आगे आकर यह नहीं कहता कि देश के हालात में हमें जो सुविधाएं, साधन उपलब्ध हैं, विवेकसंगत नहीं हैं कि हम अपने रहन-सहन, खान-पान में उपभोक्ता संस्कृति को थोड़ी-बहुत तिलांजलि देने को भी तैयार हैं। कुछ अपवाद जरूर हैं- कुछेक अत्यंत मेधावी सफल छात्र नौकरी का लालच छोड़कर गांवों में, आदिवासियों के बीच उनकी तरह सादे ढंग से रह कर काम कर रहे हैं। आशा के केंद्र भी ये ही लोग हैं। पर बौद्धिक के नाम से परिचित प्रायः समूचा वर्ग अपने स्वार्थ से चिपटा है, जिस पूर्वी यूरोप के परिवर्तन से हम चमत्कृत हैं, वहां के बुद्धिजीवियों का अच्छा खासा हिस्सा सब कुछ दांव पर लगा कर 'सत्ता को अप्रिय' सत्य उजागर करने में लगा हुआ था। लोकशक्ति से मिलकर शायद तभी ऐसे परिवर्तन संभव होते हैं। हमारे यहां इसके बहुत आसार नहीं दिखते। ■

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 16

किताबनामा

सच्चिदा जी का संस्कृति-विमर्श

नन्दकिशोर आचार्य

संस्कृति की परिभाषा और स्वरूप के विवेचन को लेकर विभिन्न ज्ञानानुशासनों के विशेषज्ञों के बीच पर्याप्त मतवैभिन्य रहा है और इन विवेचनों का एक महत्वपूर्ण बिन्दु संस्कृति और सभ्यता के भेद और पारस्परिक संबंधों और अंतर्क्रियाओं का भी है। समाज वैज्ञानिकों, नृविज्ञानियों, इतिहासकारों और दार्शनिकों ने उन पर अपने-अपने ज्ञानानुशासन के दृष्टिकोण से विचार किया है।

एक वर्ग उन विद्वानों का है, जिनके लिए संस्कृति और सभ्यता, दरअसल, पर्यायवाची समझे जाने चाहिए। टाइलर और हर्स्थोविट्स जैसे नृविज्ञानियों का यही मत है। लेकिन नृविज्ञान की व्यावहारिक सीमा यह है कि उसका अध्ययन-क्षेत्र प्रधानतः आदिम समाज है और इस अध्ययन का कोई मूल्यांकन परिप्रेक्ष्य नहीं रहता और इसीलिए लेवी स्टास जैसे नृविज्ञानी सभी संस्कृतियों का मूल्य समान मानते हैं और रूथ बेनेडिक्ट का स्पष्ट कथन है कि नृविज्ञान का कार्य मूल आधारित मूल्यांकन करना है ही नहीं क्योंकि ऐसा करने पर वह स्वयं के विज्ञान होने का दावा नहीं कर सकता। तात्पर्य यह कि संस्कृति का आचार किसी प्रकार का मूल्यबोध नहीं हो सकता।

टायनवी जैसे इतिहासकार तो संस्कृति के बजाय सभ्यता पद का ही प्रयोग करते हैं और यह मानते हैं कि सभ्यताओं का विकास भौतिक परिवेश द्वारा प्रस्तुत चुनौतियों का प्रत्युत्तर देने के प्रयासों से होता है। यदि हम यह मान लें कि टॉयनबी का सभ्यता पद संस्कृति का ही समानार्थी है तो भी यह तो स्पष्ट ही है कि सभ्यता की उनकी धारणा में भौतिक परिवेश का कारक आधार होता है। मनुष्य के आंतरिक जीवन से उसका रिश्ता संस्कृति का मुख्य आधार नहीं रहता।

ओस्वाल्ड स्पेंगलर जैसे इतिहासकार सभ्यता को संस्कृति की कृत्रिम और बाध्य अवस्था मानते हैं, जो धीरे-धीरे कठोर हो जाती है, जिसका तात्पर्य है संस्कृति का अवसान, जिसका उदाहरण वह पूर्व और मध्यपूर्वी संस्कृतियों में देखते हैं तथा जिसकी आशंका पश्चिम के संदर्भ में उनके अध्ययन *डिक्लाइन ऑफ द वेस्ट* में भी व्यंजित होते हैं। इतिहासकारों का एक वर्ग जो संस्कृति को किसी समाज के मानसिक आध्यात्मिक जीवन और उसकी व्यावहारिक अभिव्यक्तियों-धर्म-दर्शन, कला, साहित्य आदि में मानता है तथा सभ्यता को उस समाज की उपयोगितामूलक संस्थाओं और प्रक्रियाओं से संदर्भित करता है अर्थात सभ्यता का रूप हैं। यह उल्लेखनीय है कि सामान्यतः लोकव्यवहार में भी नृत्य, संगीत, कला, साहित्य आदि को ही संस्कृति समझा जाता है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि किसी भी सामाजिक ही नहीं, बौद्धिक आयोजन में भी सांस्कृतिक संध्या के नाम पर इन्हीं कलाओं की प्रस्तुति की जाती है अर्थात संस्कृति का मूल प्रयोजन अवनत होकर मनबहलाव में रूपांतरित हो जाता है।

दार्शनिकों का एक वर्ग है, जो संस्कृति को किसी समाज के मूल्यबोध के रूप में परिभाषित व्याख्यायित करता है। टी.एस. एलियट ऐसे ही विचारकों में हैं, जो संस्कृति की मूल्यात्मक व्याख्या करते हैं, लेकिन वह उन मूल्यों का निर्माता और निर्धारक किसी समाज के एलीट या अभिजात वर्ग को मानते हैं और उस वर्ग का व्यवहार ही उनके अनुसार शिष्ट व्यवहार है, जिसका अनुकरण शेष समाज करता है। इसलिए संस्कृति की अपनी व्याख्या में जैसा डॉ. देवराज ने ध्यान दिलाया है, वह घुड़दौड़, खेल-प्रतियोगिताओं तथा कला-जगत आदि में कोई मूल्यगत भेद नहीं करते।

मार्क्सवादी व्याख्या के अनुसार तो सभी सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाएं तथा प्रक्रियाएं मूलतः अधिरचनाएं हैं, जो उत्पादन संबंधों पर आधारित होती हैं तथा वे उत्पादन संबंध, उत्पादन-शक्तियों में बदलाव के अनुसार बदलती रहती हैं। लेकिन हम देखते हैं कि द्वन्द्वात्मक विकास की प्रक्रिया में समाज के मूल्यबोध में भी परिवर्तन घटित होता रहता है। लेकिन यह भी उल्लेखनीय है कि मार्क्सवाद की आकांक्षा अंततः एक ऐसे समाज की है, जिसमें प्रत्येक मनुष्य स्वतंत्रता का अनुभव कर सके। तात्पर्य यह कि मार्क्सवाद अन्ततः एक मूल्य के रूप में स्वतंत्रता को स्वीकार करता है, चाहे उस तक पहुंचने की द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया की व्यावहारिकता उसके दमन में भी रूपायित होती रही है।

संस्कृति को मूलतः मूल्यचैतन्य मानने वाले विद्वानों के वर्ग का ध्यान-बिन्दु दर्शन, धर्म, साहित्य और कला आदि आंतरिक जीवन से जुड़े तत्त्वों पर रहते हुए भी वह तथ्यात्मक या बाह्य जगत की केवल अवहेलना नहीं करते बल्कि उसे भी अपनी मूल्यचेतना से प्रेरित और रूपायित करने पर जोर देते हैं। डॉ. देवराज जैसे विचारकों का कहना है कि 'सांस्कृतिक चेतना जितनी मूल्य चेतना है, उतनी ही तथ्य चेतना भी है। वह चेतना यथार्थ और संभाव्य को अर्थवत के रूप में ग्रहण करती है।' अपनी बात को और स्पष्ट ढंग से बताते हुए उनका कथन है कि 'संस्कृत व्यक्ति अपनी जरूरत को ऐसे ढंग

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 17

से पूर्ण करता है कि उसकी पूर्ति के साथ किसी ऊंचे मूल्य का लाभ भी हो जाए।' तात्पर्य यह कि वह संस्कृति के दो रूपों की कल्पना करते हैंः साध्य रूप तथा साधनात्मक रूप और इन दोनों पर उस प्रकार की सुसंगति और पारस्परिकता का आग्रह करते हैं, जैसा महात्मा गांधी के साध्य-साधन एकत्व के सिद्धान्त में दिखाई देता है।

संस्कृति की उपर्युक्त विभिन्न अवधारणाओं की संक्षिप्त चर्चा यहां इसलिए की गई है कि सच्चिदा जी के संस्कृति विमर्श में संस्कृति-संबंधी विभिन्न विचारों को बड़ी हद तक समाहित करते हुए एक समग्रतामूलक दृष्टिकोण विकसित करने का सराहनीय प्रयास किया गया है। यह उल्लेखनीय है कि संस्कृति की उत्पत्ति के संबंध में नृविज्ञानी विमर्श को आधार मानते हुए सच्चिदा जी उसी का उत्कर्ष मनुष्य की उस मूल्यचेतना में मानते हैं, जो उसके परिवेश सहित आंतरिक जीवन को भी अपनी परिधि में समाहित कर लेती है।

नृविज्ञानियों से सहमत होते हुए वह मानते हैं कि जीवन के विकास-क्रम में आनुवंशिकी का निर्णायक प्रभाव तो होता है और प्रत्येक जीव-समूह अपने को बनाए रखने के लिए अपने व्यवहार में एक नैरन्तर्य विकसित करता है। व्यवहार की यही निरंतरता जीवन के मनुष्य रूप में विकसित हो जाने के बाद भी बनी रहती है–फर्क सिर्फ यह होता है कि मनुष्य में रूपांतरित हो जाने का तात्पर्य जीवन का चेतन हो जाना भी है।

यह चेतना मनुष्य को एक विचारशील प्राणी बनाती है और इसलिए अपने परिवेश के साथ मनुष्य का रिश्ता केवल आनुवंशिक व्यवहार की निरंतरता से निर्धारित नहीं होता, बल्कि उसमें उसकी अवधारणा-सामर्थ्य तथा उचित-अनुचित के मूल्यबोध से भी प्रभावित होती है– बल्कि जैविक दृष्टि से सम्पूर्ण मानव-जाति में समानता होते हुए भी विभिन्न मानव-समूहों में इस मूल्यबोध में कुछ भिन्नता होना भी स्वाभाविक प्रक्रिया है क्योंकि यह भिन्नता तो एक ही मानव-समूह के विभिन्न सदस्यों तक में देखी जा सकती है। लेकिन, जब तक मानव-समूह कुछ विशिष्ट मान्यताओं और व्यवहारों को आंतरिक भिन्नता के बावजूद सामान्य रूप से स्वीकार कर लेता है, जो उनके पारस्परिक संबंधों, परिवेश के साथ संबंधों तथा आगामी विकास-प्रक्रिया का ही एक आयाम है, इसलिए प्रत्येक मानव-समूह अपनी चेतना परंपरा को भी बचाना और

सच्चिदा जी के संस्कृति विमर्श में संस्कृति-संबंधी विभिन्न विचारों को बड़ी हद तक समाहित करते हुए एक समग्रतामूलक दृष्टिकोण विकसित करने का सराहनीय प्रयास किया गया है। संस्कृति की उत्पत्ति के संबंध में नृविज्ञानी विमर्श को आधार मानते हुए सच्चिदा जी उसी का उत्कर्ष मनुष्य की उस मूल्यचेतना में मानते हैं, जो उसके परिवेश सहित आंतरिक जीवन को भी अपनी परिधि में समाहित कर लेती है

संबोधित करते रहना चाहता है, जो प्रकारांतर से चेतना की अवधारणात्मक सामर्थ्य से बाकायदा मूल्यबोध की निरंतरता और संवर्धन का रूप ले लेता है। मूल्यबोध की यह निरंतरता ही किसी मानव-समूह की संस्कृति होती है, जो उसके समग्र सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक संस्थाओं तथा आचरण को और साथ ही उसके धर्म, दर्शन, कला और साहित्य आदि की भी प्रेरक की भूमिका अदा करती है। यह जैविक आनुवंशिकता का ही चेतनागत अथवा सांस्कृतिक रूपांतरण है। सच्चिदा जी का मानना है कि– 'संस्कृति के विकास ने सामाजिक जीवन में आनुवंशिकी की भूमिका को लगभग नगण्य बना दिया है।' यदि चेतना जीवन का ही विकसित रूप है तो उसके कारण जैविक आनुवंशिकी के इस सांस्कृतिक रूपांतरण को भी समझा जा सकता है। यही कारण है कि जीवन की सहज प्रवृत्तिगत आत्मरक्षा रूपांतरित होकर देशप्रेम, सांस्कृतिक मूल्यबोध, कौटुम्बिक तथा अंतर्वैयक्तिक प्रेम आदि के लिए मनुष्य अपने निजी जीवन के बलिदान के लिए भी उत्साहपूर्वक प्रस्तुत हो जाता है।

सच्चिदा जी अपने विमर्श में इस प्रक्रिया को बेहतर तरीके से व्याख्यायित करते हुए इसे अमरत्व की तलाश कहते हैं, जो केवल स्वकेन्द्रित प्रवृत्ति नहीं, बल्कि एक मूल्य बन जाती है। वह कहते हैंः 'अपने जीवन को अमरत्व देने की अंतर्निहित अभिलाषा जीवों में परमार्थ भाव-यानी दूसरों के लिए आत्मबलिदान करने के भाव को जन्म देती है। कोई अचरज नहीं कि मानव-संस्कृति में परमार्थ भाव को सबसे उदात्त मूल्य के रूप में प्रस्थापित किया गया है।' वह इस भावना का विस्तार संपूर्ण मानव-प्रजाति तक देखते हैंः 'अपने कुटुम्ब और समुदाय से बढ़कर संपूर्ण मानव-प्रजाति के लिए आत्म बलिदान की भावना अंततोगत्वा मनुष्य के अपने अमरत्व की अभिलाषा की अभिव्यक्ति ही दिखाई देती है, जो संस्कृतिजन्य प्रतीकों और परंपराओं से लोगों की भावना का अंग बन जाती है। अपने जीवन अथवा स्थूल स्तर पर बीज या शुक्र की रक्षा के यत्न निम्न स्तर से लेकर अत्यधिक विकसित जीवों तक में अमरत्व की तलाश है। मानव-संस्कृति में इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विकसित क्रियाकलाप या तो इस उद्देश्य को गरिमामंडित करते हैं अथवा इसे इस

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 18

सीमित उद्देश्य से परे ले जाकर एक स्वप्निल संसार का निर्माण करते हैं। इसमें रूमानी प्रेम-प्रसंगों से लेकर भारतीय दर्शन विशेषकर बौद्ध दर्शन के समदर्शी भाव का उदय होता है, जिसमें कीट से लेकर मनुष्य तक सभी के प्रति समान करुणा की अभिव्यक्ति है।' जैन दर्शन की अहिंसा, ईसाइयत का प्रेम तथा इस्लाम के 'रहम' और सूफीयत के 'इस्क' में भी इसी भावना की अभिव्यक्ति है। महात्मा गांधी का सत्याग्रह-दर्शन भी इसी का एक प्रकार है, जिसमें प्रतिरोध में भी प्रेम या कहें परमार्थ भाव की केन्द्रीयता है।

इसलिए, यह स्वाभाविक ही लगता है कि सच्चिदा जी के लिए संस्कृति का आदर्श किसी एक प्रदेश, व्यक्तित्व, नस्ल, धर्म-सम्प्रदाय आदि तक सीमित नहीं है और न वह सामान्यतः सांस्कृतिक कहे जाने वाली कलाओं और साहित्य आदि तक सीमित है। वह संस्कृति को विश्व दृष्टि मानने लगते हैं। वह कहते हैं : 'मनुष्य की मनुष्यता का सबसे विशिष्ट आयाम यह है कि उसकी एक जीवन-दृष्टि होती है, वह जो भी करता है एक वैश्विक परिप्रेक्ष्य में, जिसका न केवल एक भौगोलिक बल्कि नैतिक और ललित आयाम भी होता है। आदिम कबीलों से लेकर आधुनिक औद्योगीकरण के पहले तक के सभी समाजों में आदमी की एक जीवन दृष्टि होती रही है। संसार की समग्रता के बोध से आदमी स्वयं को इस संसार के एक आवश्यक हिस्से के रूप में स्वयं को देखता रहा है।'

इस समग्रता-बोध के खंडन को, सच्चिदा जी इसीलिए संस्कृति और दूसरे शब्दों में कहें तो मानव-अस्तित्व मात्र के लिए बड़े संकट के रूप में देखते हैं। उत्तर-आधुनिकता के विचार को वह इस खंडनात्मक दृष्टि के कारण मनुष्य के लिए घातक बताते हैं। वह मानते हैं कि मनुष्यों के सारे अनुभवों को समेट कर किसी एक आख्यान के तहत लाने के प्रयासों को हास्यास्पद मानना स्वयं मानव-अस्तित्व को ही अर्थहीन मान लेना है क्योंकि 'मनुष्य की अपनी जीवन-दृष्टि ही अपनी केंद्रीयता से चाहे वह धर्म, दर्शन या किसी दूसरे आख्यान से आए, हमें जीवित रहने का हौसला देती है। पूरे जीव-जगत में एक जिजीविषा व्याप्त है, जो जीवों की आनुवंशिकी से आती है। मनुष्य में उसकी संस्कृति में उसकी उपस्थिति एक पूरक शक्ति के रूप में मिलती है। अगर संस्कृति में इस पूरक शक्ति का अभाव हो जाए तो व्यक्तिगत या सामूहिक आत्महत्या का रुझान पैदा होगा।' यहां इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का उल्लेख भी प्रासंगिक होता कि आत्महत्या और परहत्या एक मनोवैज्ञानिक ग्रंथि के ही दो रूप हैं– चाहे वह वैयक्तिक हो या सामूहिक।

सांस्कृतिक संकट का एक और रूप सच्चिदाजी की दृष्टि में विशालता का संकट है। जीवन की विकास-प्रक्रिया में भी यह देखा गया है कि आकार की विशालता अन्ततः जीवों के नाश का कारण बनती है।' उदाहरण स्वरूप डाइनासोर, मैमक एवं मैस्टोडन (विशाल आकार के हाथी), सैबरटुप्ड टाइगर (तलवार की तरह विशाल दांत वाले बाघ) और विशाल सींगों वाले हिरण खत्म हो गए, जबकि छोटे आकार के जीव अभी भी अस्तित्व में हैं। सच्चिदा जी इस जीवशास्त्रीय तथ्य को मानव संस्कृति पर भी लागू करते हैं। उनका मानना है कि 'जो संस्कृतियां अपनी आवश्यकताओं को अपने परिवेश में उपलब्ध साधनों की सीमा में रखेंगी वे चिरायु होंगी और जो मितव्ययिता के इस नियम का उल्लंघन करेंगी, नष्ट हो जाएंगी। विशाल आकार की संस्कृतियां अपने अस्तित्व के लिए इतनी जटिल व्यवस्थाओं का निर्माण कर लेती हैं कि पारिस्थितिकीय बदलाव होने से उनके अपने ढांचे को बदलने में बड़ी कठिनाई होती है।' महानगरों के लिए आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बनाया गया विशाल जटिल तंत्र इसके उदाहरण हैं।

विशाल संसाधनों के निर्माण ने भी सम्पूर्ण मानव जाति के लिए संकट उत्पन्न कर दिया है। यह संकट एक ओर, अधिकाधिक संसाधनों पर अधिकार के लिए राष्ट्रों की आपसी टकराहट और युद्धों से पैदा होता है, तो दूसरी ओर वर्तमान समाज की उच्च उपभोक्तावादी संस्कृति से भी जो संसाधनों के तेजी से क्षय तथा पारिस्थितिकीय संकट के लिए भी जिम्मेदार है।

सच्चिदा जी के अनुसार संस्कृति का उद्देश्य मानव प्रजाति की रक्षा और विकास है। इस मूल उद्देश्य में सम्पूर्ण पारिस्थितिकीय तंत्र को भी जोड़ा जाना चाहिए क्योंकि उसके साथ मनुष्य केवल उपयोगितामूलक नहीं बल्कि तात्त्विक और अस्तित्वगत होने के साथ और शायद इसी कारण भावात्मक भी हो जाते हैं। सच्चिदा जी इसीलिए वर्तमान उपभोक्तावादी संस्कृति को अप-संस्कृति कहते हैं क्योंकि वह 'जीवन में ऐसे तत्त्वों को घोलती है, जो लोगों के जीवन के लिए परिवेश के हिसाब से प्रतिकूल स्थितियां पैदा करती हैं।'

लेकिन, इस संकटपूर्ण स्थिति के बावजूद, सच्चिदा जी मनुष्य की आत्मालोचना की दृष्टि पर विश्वास करते हुए यह आशा करते हैं कि मनुष्य अब अपने इतिहास और वर्तमान स्थिति को समझते हुए 'संस्कृति का एक नया प्रतिमान तैयार कर सकता है, जो संपूर्ण मानववंश की एकता की समझ के साथ स्थानीय समुदाय और परिवेश को जीवन देने और बांधने वाले तत्वों को केन्द्र में रख उपयुक्त तकनीकी, कला, साहित्य, संगीत और स्थापत्य का विकास हो सकता है।' इसके लिए वह छोटी आर्थिक-राजनैतिक इकाइयों की स्थापना तथा उनकी स्वायत्तता को 'सांस्कृतिक पुनर्जागरण का एक आयाम बनाने का आग्रह करते हैं। यही आग्रह, कुछ छोटी-मोटी भिन्नताओं के साथ गांधी, विनोबा, लोहिया, एम.एन. राय, जेपी आदि का भी तो रहा है। सच्चिदा जी इस आग्रह को तत्वमीमांसीय आधार देते हैं। ■

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 19

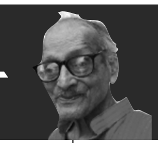

न्याय, अहिंसा, राष्ट्र, सांप्रदायिकता

सच्चिदा जी की तीन किताबों की समीक्षा पर आधारित ये लेख 1990 के दशक और उसके बाद लिख गए थे, जो *गिरधर राठी* के संकलनों से साभार लिए गए हैं

गिरधर राठी

कामू : न्यायी हत्यारे

मूल फ्रेंच से अनूदित नाटक *न्यायी हत्यारे* लगभग एक साल से मन में उथल-पुथल मचा रहा है। याद आया कि अल्बेयर कामू (और सार्त्र) को पहले-पहल 1962-63 के आसपास पढ़ना शुरू किया था। तब तक हिन्दी जगत में अस्तित्ववाद (और एब्सर्ड) की पहली लहर (अज्ञेय, रामकुमार, कुंवर नारायण, निर्मल वर्मा) के बाद दूसरा संक्षिप्त झकोरा (श्रीकान्त वर्मा, धूमिल, राजकमल चौधरी, विपिन कुमार) आने लगा था। 1967-68 के विश्वव्यापी युवा विद्रोह के समान्तर भारत में नक्सलवाद का उदय, सार्त्र का वर्चस्व और कामू का क्रमशः विस्मरण लगभग साथ-साथ चले। अस्तित्ववाद की चर्चा वाम और दक्षिण, दोनों तरह के खेमों में भर्त्सना में सीमित हो गई। यह अलग बात है कि अकेलापन, असहाय भाव, संत्रास आदि लक्षणों को केवल पश्चिम की नकल बताने वालों को 'साठोत्तरी' रचनाओं ने इन रोगों की ठेठ भारतीय छवियों से चौंकाना शुरू कर दिया था। अस्तित्ववाद और एब्सर्ड किताबी बहस से निकल कर रचना चेतना के अघोषित, लेकिन अभिन्न उपकरण बन चुके थे। कामू और सार्त्र के बौद्धिक वर्चस्व का (1945-60-70) अंदाजा आज लगाना असंभव सा है। संरचनावाद और उत्तर-आधुनिकतावाद के प्रवर्तक (समाज में प्रत्यक्ष प्रमाण देने के बावजूद) वैसी धाक नहीं जमा सके, कारण जो भी हो, दूसरे विश्वयुद्ध और शीत युद्ध की जरखेज जमीन, आधुनिकतावाद के प्रभामण्डल का दरदराता दौर, नायकों-खलनायकों की पहचान के आज से बहुत अलग मानदंड...

1960 में कामू को ज्यादा पढ़ने का अवसर मिला। उसकी तीसवीं बरसी पर दिल्ली में हुए अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में पर्चा पेश करते हुए, मेरी धारणा यह बनी कि कामू का मानवतावाद खण्डित-सा है। गोरे, यूरोपीय अहंकार से दूषित दुनिया भर के शोषित- उत्पीड़ित जनों के पैरोकार होते हुए भी, मूलतः इस मान्यता से त्रस्त कि एक दूसरे को समझना असंभव है। 'मिसअंडरस्टैंडिंग' अकाट्य, अपरिहार्य है।

हाल ही में अल्बेयर कामू के *फ्रॉम द एब्सर्ड टु रिवोल्ट* पढ़ते हुए मुझे अपने निष्कर्ष पर फिर से कुछ सोचने का मौका मिला। जॉन फोली कामू के शायद सबसे गंभीर पैरोकार हैं- सार्त्र के प्रति कुछ सख्त भी। दिलचस्प यह भी है कि जॉन फोली आयरलैण्ड के विश्वविद्यालय में प्रोफेसर रहे हैं। *न्यायी हत्यारे* या संपूर्ण कामू के विमर्श में उनकी रुचि आयरलैण्ड के खून-सने समसामयिक इतिहास के कारण भी रही होगी।

और इस नाटक का अनुवाद करने वाले सच्चिदानन्द सिन्हा का गंभीर लेखन- कला, साहित्य, राजनीति, विज्ञान-दर्शन, समाज, इतिहास आदि तमाम क्षेत्रों में आज के संदर्भ में ही रहा है। *न्यायी हत्यारे* के आरंभ में मूल लेखक, नाटक की पृष्ठभूमि और पात्रों के संक्षिप्त लेकिन सुबोध ब्यौरे-विश्लेषण में इस अनुवाद की प्रासंगिकता को रेखांकित किया गया है।

आज जो आतंकवादी हिंसा हो रही है चाहे जिहाद के लिये हो, माओवादियों द्वारा नया समाज बनाने के लिये हो या राष्ट्रीय या क्षेत्रीय स्वायत्तता के लिये संघर्ष करने वालों के द्वारा हो- सभी में बड़े पैमाने पर निर्दोष व्यक्तियों की चाहे-अनचाहे हत्याएँ हो रही हैं। इतना ही नहीं... पुलिस या फौजी कारवाइयों के दौरान अनेक ऐसे लोगों की मृत्यु होती है, जिन्हें व्यवस्था ने अपने ही कानूनों की दृष्टि से दोषी साबित नहीं किया होता है...

उधर जॉन फोली ने अल्बेयर कामू (1913-1960) के लेखन, चिंतन और सक्रिय सार्वजनिक जीवन के एक केंद्रीय सरोकार - राजनीतिक हिंसा पर विस्तार से विचार किया है। *न्यायी हत्यारे* इसी सरोकार पर भावनात्मक और दार्शनिक ऊहापोह का आईना है।

नाटक का नायक कालियायेव रूस की सोशलिस्ट रिवोल्यूशनरी पार्टी की सैन्य शाखा का ऐतिहासिक सदस्य है। इसी पार्टी में लेनिन के बड़े भाई भी थे, जिन्हें जार की हत्या के षड्यंत्र के कारण मौत की सजा हुई थी। नाटक में 1905 में **ठौंड** ड्यूक की हत्या के लिये नियुक्त कालियायेव पहली बार बम नहीं फेंकता, क्योंकि बग्घी में उसे दो बच्चे दिख जाते हैं। (साथ में ड्यूक की भतीजी भी थी, लेकिन दूसरी बार वह रूसी जार के चाचा इसी **ठौंड** ड्यूक की बग्घी के बिल्कुल पास जाकर बम फेंकता है; वहां से भागता

नहीं है, गिरफ्तार होकर जेल चला जाता है और मौत की सजा स्वीकार करता है।

1950 में छपे इस नाटक से तत्काल एक साल पहले ज्यां पॉल सार्त्र का नाटक *गंदे हाथ* छपा था। *न्यायी हत्यारे* की तरह ही उसमें दो दृष्टिकोणों वाले दो पात्र थे। कामू का कालियायेव निर्दोष व्यक्तियों की जान लेना उचित नहीं समझता। सार्त्र का नायक राजनीतिक हिंसा में ऐसी किसी मर्यादा को नहीं मानता। कामू के नाटक में जो स्तेपान है (स्तालिन की याद दिलाता हुआ) वह कालियायेव को बुजदिल और अपर्याप्त क्रान्तिकारी मानता है। सार्त्र का प्रतिनायक सत्य का पैरोकार, सीमाहीन हिंसा का विरोधी - कालियायेव की याद दिलाता है।

सार्त्र के जिक्र के बगैर कामू को समझना निश्चय ही अधूरा रहेगा। सार्त्र के *नॉशिया* (मितली) उपन्यास और कामू के *सिसीफस का मिथक* (चिंतनपरक निबंध) से लेकर, कामू की मृत्यु तक दोनों लेखकों के बीच महासंग्राम चलता रहा था। 1941-45 के बीच कुछ दोस्ती रही, लेकिन एब्सर्ड और अस्तित्ववाद, मानवतावाद और आतंक, विद्रोह और क्रान्ति, सीमित हिंसा बनाम असीमित हिंसा, अल्जीरिया के मुक्ति संग्राम में फ्रांस की सेना और अल्जीरियाई योद्धाओं की हत्यासमर्थक राजनीति, फ्रांस में नात्सियों के समर्थक रह चुके लोगों को क्षमादान या मृत्युदण्ड... इन तमाम विषयों पर दोनों लेखकों के अत्यन्त गहरे मतभेद थे।

क्रान्ति के अभियान में निर्दोष व्यक्तियों की हत्या को सार्त्र सही ठहराते थे। उन्होंने मेल-पोंती और सीमोन द बुआ आदि के साथ, रूस में स्तालिन के 'राजकीय आतंक' को जायज ठहराया था। कामू 'विद्रोह' के समर्थक थे, लेकिन 'क्रान्ति' के रूस वगैरह में क्रान्ति के बाद स्थापित नये आततायी शासनतन्त्र के विरुद्ध थे। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक *द रेबेल* (विद्रोही) उनकी अन्य कृतियों की तरह ही राजनीतिक हिंसा में निर्दोषों की हत्या का निषेध करती है। दो तरह के परम्परागत हिंसावाद से अलग, एक तीसरी हिंसा नीति कामू ने पेश की थी। (*द रेबेल* में भी कालियायेव मौजूद है)। जॉन फोली का कहना है कि 'बुर्जुआ राजनीतिक हिंसा' समाज में व्याप्त कई तरह की हिंसाओं की अनदेखी करती है, और क्रान्तिकारी हिंसा का निषेध करती है। दूसरी ओर 'क्रान्तिकारी हिंसा' किसी भी हद तक जाने को तैयार है और वह नये समाज की रक्षा के लिये आतंकवादी राज्यशासन को भी जायज मानती है।

लेकिन कामू का तीसरा (हिंसक ही) रास्ता कुछ शर्तें रखता है। बकौल जॉन फोली हत्या सिर्फ आततायी की हो; हत्या तभी हो जब अन्याय के विरोध का कोई दूसरा उपाय नहीं बचा हो; हत्यारा एक विद्रोही की तरह, अपने शिकार के नजदीक जाकर उसकी हत्या करे और इस तरह पूरी निजी जिम्मेदारी कबूल करे; और खुद अपना उत्सर्ग करने को तैयार रहे।

लेकिन जीवन की तरह ही हर दार्शनिक मतवाद भी जटिलताओं और अंतर्विरोधों में उलझा ही रहता है। सच्चिदानन्द सिन्हा ने तालस्तोय के अन्तिम दिनों के दर्शन-प्रेम से संसार के उद्धार और गांधी के अहिंसक आंदोलन की ओर इशारा किया है। कामू और सार्त्र की वैश्विक चिंताधारा में गांधी जी सिरे से गायब हैं। जॉन फोली भी अपनी उत्तेजक किताब में गांधी का कहीं भी जिक्र तक नहीं करते। अभी दो अक्तूबर को संयुक्त राष्ट्र की तरफ से अहिंसा दिवस की घोषणा, गांधी पर डाक टिकट और प्रदर्शनों-व्याख्यानों के हुजूम के बरक्स यह ध्यान देने लायक है कि पश्चिम में कुछ गिने-चुने विद्वानों-आंदोलनकारियों ने ही गांधी जी या अहिंसा पर गंभीरता से सोचा है। पश्चिम की मुख्य चिंताधारा में गांधी जी शुरू से अंत तक गायब हैं।

कामू से मान्यताप्राप्त 'राजनीतिक हत्यारे' की तुलना गांधी जी के 'सत्याग्रही' अहिंसक आंदोलनकारी से करना दिलचस्प-वस्तुतः महत्त्वपूर्ण होगा। अपनी कुर्बानी देने को दोनों तैयार हैं, लेकिन कितने भिन्न मनोभावों, संकल्पों, मर्यादाओं के साथ! यह भी दिलचस्प है कि पश्चिमी चिंतन में एक दार्शनिक धारा 'सत्य' के संधान में लगी रही है, जबकि दूसरी धारा दार्शनिक-राजनीतिक-सामाजिक धारा- 'न्याय' के संधान में। गांधी जी का आग्रह सत्य पर है- और न्याय उसी में से निकलता है। सार्त्र का न्याय सत्य की परवाह नहीं करता *गंदे हाथ* में उसके कुछ संवाद देखने लायक हैं। क्रान्ति के लिए झूठ का सहारा लेना जायज है। कामू के मन में कुछ दुविधा है।

कामू आरंभ से अंत तक पहुंचते-पहुंचते बहुत कुछ बदले थे। उनके अंतर्विरोध भी गौर करने लायक हैं। *अजनबी* (उपन्यास) और *सिसीफस* (आलेख) में एब्सर्ड, कामू के अनुसार, केवल आरम्भिक बिन्दु है। दुनिया समझ में नहीं आती, इसलिये ऊलजलूलपन या विसंगति का अहसास हमें होता है। लेकिन जीवन निरर्थक नहीं है- उसी एब्सर्ड से 'विद्रोह' का भी जन्म होता है, और जीव-जगत के छोटे-छोटे रहस्यों-चमत्कारों से मेल बिठाकर, आनन्द और सार्थकता की खोज का भी आरम्भ होता है।

कामू का एब्सर्ड 'निहिलिज़्म' (सब कुछ नकारने) का निषेध करता है। यह ध्यान देने की बात है कि कामू खुद को अस्तित्ववादी नहीं मानता था। वह सार्त्र का चेला भी नहीं था। अस्तित्ववाद की मूल स्थापना- मनुष्य सब-कुछ करने के लिये आजाद है- उसका वह प्रतिवाद करता है। सम्पूर्ण आजादी जहां होगी, वहां न्याय नहीं होगा। वहां एक या दूसरी किस्म का सर्वसत्तावाद होगा- फासीवाद, धार्मिकता का आतंक आदि। जहां केवल न्याय होगा, वहां कोई आजादी नहीं होगी, जैसे सोवियत संघ में। संपूर्ण स्वातंत्र्य और संपूर्ण न्याय का मेल नहीं बैठता।

न्यायी हत्यारे में आत्म-उत्सर्ग भी सवालों से घिरा है। विद्रोह की बुनियाद अगर 'मानवीय एकजुटता' है- जैसा कि कामू मानता है तो हत्या करके क्या वह एकजुटता खण्डित नहीं होती? और

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 21

उत्सर्ग होकर किस 'न्याय प्रणाली' को वैधता दी गई- जारशाही की नृशंस न्याय प्रणाली को? और एक हत्या के बदले एक आत्माहुति-क्या इन दोनों को बराबर वजन का करतब कहा जा सकता है? दिलचस्प है कि सार्त्र और सीमोन द बुआ आदि के विरुद्ध रुख अपनाते हुए कामू ने लेखक रोबेर्त ब्रासिलाश जैसे नात्सी-सहयोगियों के लिये क्षमादान की अपील पर दस्तखत किये थे। अल्जीरिया में उन्होंने फ्रांस द्वारा मृत्युदण्ड की भरमार का विरोध किया, खुद अल्जीरियाई मुक्तिकामियों द्वारा निदोर्षों की हत्या का विरोध किया- लेकिन डेढ़ सौ अल्जीरियाई योद्धाओं के पक्ष में व्यक्तिगत रूप से मुहिम भी चलाई। कामू मृत्युदण्ड के विरोधी थे, लेकिन सीमित राजनीतिक हिंसा के समर्थक, खुद कम्युनिस्ट पार्टी में तीन-चार साल रह चुके थे, जबकि सार्त्र कभी बाकायदा कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य नहीं रहे लेकिन नये सोवियत समाज में राजकीय आतंक के विरोधी थे। हालांकि सार्त्र पर कम्युनिस्ट हमले शुरू में भी हुए, बाद में भी (जब वह माओवादी हो गये 1968 के बाद) लेकिन सार्त्र स्तालिनवादी मार्क्सवाद के प्रबल प्रचारक भी रहे।

न्यायी हत्यारे इस तरह की बीसवीं सदी के भीषण शास्त्रार्थ की ओर ध्यान दिलाने के साथ-साथ इक्कीसवीं सदी में हिंसा के असीमित प्रसार पर भी सोचने का रास्ता खोलता है। मेरा रास्ता ही एकमात्र सही रास्ता है, ऐसा सोचने वालों के मन में गहरा नैतिक दार्शनिक संशय यह नाटक पैदा कर देता है।

जॉन फोली की किताब से न्यायी हत्यारे नाटक के भीतर प्रवेश का सुराग हाथ आता है और जैसा कि अनुवादक को आशा है, मंच पर इस नाटक की प्रस्तुति से शायद और भी कुछ आयाम खुल सकते हैं। हिंसा पर गहरी बहस भी अहिंसा को कुछ अधिक स्वीकार्य और कारगर औजार उपलब्ध करा सकती है। फिलहाल अहिंसा एक खोखला और पाखण्डभरा नारा मात्र ही तो है। यह ध्यान रखने लायक है कि पश्चिम का हिंसा-मूलक दार्शनिक चिंतन तमाम आपसी लड़ाइयों, विश्वविजय और उपनिवेशवाद-साम्राज्यवाद की स्थापना और विखण्डन, दो महायुद्धों की विभीषका और उसके हिंसक प्रतिरोध (खासकर फ्रांस में) के अनुभवों पर भी आधारित है। अहिंसा-प्रेम-न्याय का एकमात्र (शायद) सूत्र पश्चिम को ईसा मसीह की शिक्षा से मिला था (यूनानी लोकतंत्र में भी अहिंसा प्रतिपादित नहीं है), कोई और स्रोत उनके यहां नहीं था। और ईसाई धर्म एशिया की ही देन है- बौद्ध, जैन आदि धर्मों की तरह! पश्चिम ने उसे हड़प लिया और कायाकल्प कर दिया। ■

2

भारतीय राष्ट्रीयता और सांप्रदायिकता

पिछले पंद्रह-बीस बरसों में सामयिक प्रश्नों और समस्याओं पर जो किताबें छपी हैं, उन्हें मोटे तौर पर दो वर्गों में बांटा जा सकता है। एक वर्ग उनका है, जो समाज चर्चा भी अपठनीय, अस्पष्ट, अधकचरे और अधपके शब्दजाल में लपेट कर किया करती हैं। उनमें नये से नए अंगरेजी (कभी-कभी जर्मन, फ्रांसीसी भी) पारिभाषिक शब्द ठुसे रहते हैं, ऐसे शब्द जिनकी भारतीय संदर्भ प्रसंग में कोई भी वैधता कायम नहीं हुई है पर विद्वत्ता सिर पर सवार रहती है, इसलिये जबरन उन पदों को या उनके हास्यास्पद हिंदी एवं अन्य भारतीय अनुवादों को बेफिक्री से उछाला जाता रहता है। किताबों का बाजार मुख्यतः उनके लेखकों की ही तरह जमीन से कटे, दिमाग से उलझे विद्वानों का होता है। शिक्षा प्रणाली में जबरन लादे जाने पर एनसीईआरटी से लेकर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तक की ऐसी पुस्तकों के तले दबकर छात्र-छात्राएं कराहते रहते हैं, पर इस विद्वत्ता को पश्चिमी संस्थानों से भी तरह-तरह से शाबासी मिलती रहती है, इसलिए यह धंधा खूब चल रहा है। और हां, ये किताबें ज्यादातर अंगरेजी में ही छपती हैं।

दूसरा वर्ग तुरत-फुरत पैसा कमाने वालों का है। आपातकाल, इन्दिरा गांधी, आतंकवाद, सांप्रदायिकता जैसे 'गरमा-गरम' विषयों पर, अखबारी कतरनें और दिमागी कूड़े की गोंद चिपका कर लाखों की संख्या में ये किताबें छपी और बिकी हैं। सनसनी होना, चटपटापन बनाए रखना और मूल प्रश्नों की तह की ओर भूल कर भी न देखना उनके विशेष गुण हैं। पत्र-पत्रिकाओं में उनके अंशों तथा समीक्षाओं की धूम मच जाती है। दुकानों और फुटपाथों पर उनके अंबार लग जाते हैं। पुस्तकालयों में उनकी थोक खरीद हो जाती है और कुछ दिन बाद ये इतनी बासी पड़ जाती हैं कि मोटी-मोटी रकम देकर खरीदी जाने के बावजूद इन पर नजर डालने की इच्छा किसी की नहीं होती।

इन दोनों वर्गों से अलग एक तीसरे वर्ग की किताबें हैं, जो गहरे सोच-विचार, गंभीर, चुपचाप जन्म लेती हैं, लगाव और चिंतन-मनन से रची जाती हैं। ये चुपचाप जन्म लेती हैं। ये कुछेक चिंताशील पाठकों को उद्वेलित करती और नई दृष्टि देती हैं, पर प्रभावशाली बौद्धिकों, सत्ताधारी नीतिनिर्धारकों, अंगरेजी-परस्त समाचार माध्यमों और किताबी बाजार तंत्र के बीच इन्हें जगह कम ही मिलती है। दरअसल, ये किताबें ऐसी हैं, जिनकी अनदेखी करने में ही पहले और दूसरे वर्ग के किताबियों की खैर है, क्योंकि ये पुस्तकें पश्चिममुखी प्रसिद्ध विद्वानों का बौद्धिक दिवालियापन और सनसनीखेज 'बेस्ट सेलर' किताबियों का मानव द्वेषी चरित्र एक

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 22

साथ उघाड़ देती हैं। सत्ताधारी वर्ग, वाम-दक्षिण-मध्य के सभी दलों का, इस ओर नहीं ताकता क्योंकि इन किताबों पर ध्यान देने से उस मानव द्वेषी राजनीति, समाजनीति, अर्थनीति और सांस्कृतिक नीति को चलाना असंभव हो जाएगा, जिनके सहारे वे दल जीवित हैं। दुर्भाग्य से ऐसी किताबें अंगरेजी और हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं में भी कम ही छप पाती हैं। इनके न छपने और अधिक प्रचार-प्रसार न होने के कारण स्पष्ट ही हैं, पर ये किताबें निहायत जरूरी हैं। ऐसी ही एक किताब इन दिनों पढ़ने को मिली *भारतीय राष्ट्रीयता और साम्प्रदायिकता*। सहज सरल हिन्दी भाषा और सुबोध रोचक शैली में लिखी गई यह किताब आज देश के सबसे बड़े संकट से रू-ब-रू है : यह राष्ट्र बचेगा या टूटेगा?

राष्ट्र को बचाने में लगे 'नेशन-स्टेट' के प्रवक्ता राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से लेकर कांग्रेसवादी और मार्क्सवादी विचारकों तक आज न तो यह जानते हैं, न बताते हैं कि भारत राष्ट्र आखिर है क्या? क्या यह वही है, जो कि अंगरेजों ने दो सौ साल गुलामी की चक्की में यह पीस कर दो कटोरों में बांट कर हमारे हुक्मरानों को अलग-अलग सौंप दिया है? और उनका काम अब सिर्फ इतना रह गया है कि इसे बेल-बेल कर खाते रहें, दूसरे के कटोरे से यथासंभव छीना-झपटी में लगे रहें?

राष्ट्र को बचाने में लगे 'नेशन-स्टेट' के प्रवक्ता राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से लेकर कांग्रेसवादी और मार्क्सवादी विचारकों तक आज न तो यह जानते हैं, न बताते हैं कि भारत राष्ट्र आखिर है क्या?

तथाकथित राष्ट्रवादी, राष्ट्रीयतावादी और देशभक्त जमातें राष्ट्र के नाम पर जिस राजतंत्र, अर्थतंत्र और सांस्कृतिक मूल्यधारा की हिमायती हैं, उनके स्रोत, परम्पराएं और उदाहरण वे कहां खोजती हैं? क्या इसी भारत में, जिसके इतिहास में हजारों बरस की राष्ट्रधारा उदारता, सहिष्णुता और व्यापक मानवीयता का सबक सिखाती है? या कि उन राष्ट्र-राज्यों में जहां के कबायली, साम्प्रदायिक, भाषायी और अर्थतांत्रिक एकरूपता सिर्फ कट्टरता को और नतीजतन सिर्फ टूट को जन्म दे सकती है?

निहायत कठोर भाषा में ये सवाल इस तरह भी रखे जा सकते हैंः हमारी राष्ट्रीय चेतना का उत्स बहुजनीय स्वतंत्रता है, या कि एकमत से एकरूप संकीर्णता? यह राष्ट्र अपने समस्त क्षेत्रों की स्वाभाविक प्रतिभा के विकास के बल पर एकजुट रहेगा, या कि थोड़े से धर्मांध, मतांध, धनांध सत्ताधारियों के बल प्रयोग पर? हमारे राष्ट्रीय आदर्श पुरुष रवीन्द्रनाथ ठाकुर, वासुदेवशरण अग्रवाल, महात्मा गांधी जैसे संस्कृतिनिष्ठ राज चिंतक होंगे या कि बिस्मार्क, हिटलर, स्तालिन? नेहरू की कल्पना भी अन्ततः एक ऐसे केन्द्रीकृत, सैन्यीकृत, 'आधुनिक' विकासवादी राष्ट्र की ही थी, जिसमें विविधता को अंततः एकरूपता में, स्वायत्तता को अंततः केंद्र समर्पण में, स्वदेशीपन एवं स्वत्व को अंततः अंधानुकरण में समाप्त होना है। समसामयिक पत्रकार अपने मुहावरों और रूपकों के घटाटोप में इस तथ्य को छिपाते रहते हैं; और उत्तर पूर्वी राज्यों (नगालैण्ड, असम, मिजोरम वगैरह) की और कश्मीर की समस्याएं मूलतः नेहरू की अदूरदर्शिता की देन है, उसी तरह जैसे इंदिरा, राजीव, अरुण नेहरू, जैलसिंह की देन है पंजाब की समस्या। लेकिन साथ ही यह भी ध्यान रहे कि दोषी अकेले ये व्यक्ति ही नहीं हैं। दोष उस विकृत मानसिकता का है, जिसे बनाने में अधिकांश बौद्धिकों, राजनीतिक सिद्धांतकारों और राजकर्मियों ने अहम भूमिका निभायी है।

भारतीय राष्ट्रीयता और साम्प्रदायिकता के लेखक सच्चिदानन्द सिन्हा ऐसी उग्र शब्दावली का प्रयोग कहीं नहीं करते, जैसी कि ऊपर के कुछ वाक्यों में है। इसकी उन्हें जरूरत भी नहीं है। उनकी तर्कनिष्ठ और तथ्यों से पुष्ट किताब, तार-दर-तार गुत्थियों को सुलझाती चलती है, जो हमारे प्रकाण्ड सिद्धांतकारों ने बुन रखी है। सच्चिदानन्द सिन्हा इस किताब के लेखों में हमारे राष्ट्रीय जीवन के तानेबाने को एक-एक कर स्पष्ट करते जाते हैं। वे जहां 'नेशन' की जन्मकथा बताते हैं, वहीं यह भी स्पष्ट करते हैं कि किस तरह 'हम नेशन नहीं राष्ट्र हैं'। भारतीय एकता की प्रेरक शक्तियां कौन सी हैं, आर्थिक एवं राजनैतिक केन्द्रीयकरण के दुष्परिणाम क्या हुए हैं और होंगे, धर्म और साम्प्रदायिकता में क्या भेद हैं, देश के विघटन का खतरा किन दुराग्रहों, राजकीय नीतियों और ताकतों से है। वे यह भी बताते हैं कि भारतीयता का भविष्य सच्ची भारतीयता को पहचानने में है, न कि उस दौड़ में पड़ने में, जो हमें पशुता की ओर ही ले जाती है, और जिसके परिणाम बेकारी, गरीबी, झुग्गी-झोपड़ी, हरियाली-विनाश और अंततः हथियारबंद सर्वनाश है।

जिन पाठकों ने सच्चिदानन्द सिन्हा की दूसरी किताबें पढ़ी होंगी- द *इंटरनल कॉलोनी* (भारत में क्षेत्रीय विषमताओं के स्रोत), *भारत में तानाशाही* (आपातकाल का शायद एकमात्र सुसंगत विश्लेषण), *एडवेंचर्स ऑफ लिबर्टी* (मनुष्य के मूल स्वभाव में, आजादी की इच्छा की पहचान), या *कोअलिएशन इन पालिटिक्स* (कांग्रेसवादी एकदलीय या, द्विदलीय राजनीतिक संस्कृति के बरक्स समकालीन स्थितियों के विश्लेषण पर राजनीतिक सिद्धान्त-रचना) या उनकी अन्य कई किताबें - उन्हें पुनः यह आश्वासन मिलेगा कि शब्दजाल, नकुल और घातक पत्रकारिता से अलग एक स्वस्थ चिंतन परम्परा आज भी कायम है। प्रस्तुत पुस्तक एक मानक वैचारिक ग्रन्थ है, इसमें कोई संदेह नहीं। ■

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 23

3

मानव सभ्यता और राष्ट्र-राज्य

एक बार फिर सच्चिदानन्द सिन्हा हमारे समय के सबसे ज्वलंत प्रश्न की गहरी मीमांसा के साथ हमारे सामने हैं। मानव सभ्यता और राष्ट्र-राज्य के आपसी संबंध आज शब्दशः ज्वलंत अवस्था में हैं। इससे पहले, पिछले 25-30 वर्षों में उन्होंने अनेक ऐसे ही प्रश्नों का गहरा विवेचन अंगरेजी और हिंदी दोनों भाषाओं में किया है। समाजवाद और राजसत्ता, जातिप्रथा, आपातकाल के असली कारक, आजादी की रोमांचक परिकल्पना और प्रासंगिकता, देश के भीतर उपनिवेश, विभिन्न दलों के सहयोग की राजनीति, शहरीकरण से विनाश, सांप्रदायिकता बनाम राष्ट्रीयता, और उपभोक्तावाद का व्यामोह आदि ऐसे विषय हैं, जिन्हें गिनाने मात्र से हमें अपने देश और दुनिया के समकालीन ऐतिहासिक मोड़ सहसा याद आ जाते हैं।

विकट उलझे प्रश्नों की गहरी छानबीन अपनी सहज-सरल शैली में करते हुए वे हमें समस्या के उत्स, समाधान तक ले जाते हैं। यदि पाठक सर्वथा पूर्वग्रहग्रस्त न हो, वह पायेगा कि सिन्हा की दृष्टि बुनियादी तौर पर एक उदार मानववादी दृष्टि है। स्वतंत्रता, समता, बंधुत्व, सादगी, पारस्परिक सहयोग जैसे उदात्त मूल्य उनकी संवेदना में अभिन्न हैं। आधुनिकता और परम्परा के श्रेष्ठ तत्वों को चुनते हुए वे राजनीति, समाज और संस्कृति की ऐसी परिकल्पना प्रस्तुत करते हैं, जो वस्तुतः व्यावहारिक है। उनके तर्कनिष्ठ विश्लेषण में चालाक और चतुर युक्ति अथवा भावाकुलता का प्रवेश वर्जित है।

मानव सभ्यता के उत्थान-पतन में राष्ट्र, राष्ट्र-राज्य, राष्ट्रीयता, राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रवाद की भूमिकाएं निहायत पेचीदा रही हैं। अस्मिता और स्वतंत्रता-स्वाधीनता की प्रेरणाओं ने जहां भाषा, धर्म, जाति या समुदाय के स्वत्व (और राष्ट्रत्व) को आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित किया है, वहीं संसार में सबसे अधिक खूनखराबा भी राष्ट्र या इससे जुड़े अन्य शब्दों ने ही कराया है। आज सब जानते हैं कि पर्यावरण-संहार और शस्त्रास्त्र की होड़ का मूल कारण विज्ञानवादी विकासवाद है। उसी तरह विकृत रूप में राष्ट्रवाद भी समूची सभ्यता के विनाश का कारण हो जा सकता है।

लेकिन क्या वजह है कि राष्ट्रीयता और उपराष्ट्रीयता जैसी अवधारणाएं दुनियाभर में इतना प्रचंड रूप धारण कर रही हैं? क्या राजनैतिक और आर्थिक क्षुद्र स्वार्थों के कारण ही इन धारणाओं को हथियारी पैनापन मिल गया है? या इससे आगे, स्वयं मनुष्य के स्वभाव में ऐसे तत्व हैं, जो उसे अवसर मिलते ही एक संकीर्ण तथा आत्मघाती दायरे में धकेल देते हैं? सच्चिदानन्द सिन्हा ने राष्ट्र-राज्य इत्यादि के उग्र प्रभाव का विश्लेषण कोरे उद्धरणों या आप्त वाक्यों से नहीं किया है। इसकी जगह उन्होंने नृतत्व, भाषाविज्ञान, मनोविज्ञान और समाजशास्त्र की नई खोजों का हवाला दिया है। बेहद व्यापक अध्ययन-क्षेत्र से चुने तथ्यों और तर्कों को उन्होंने हमारे अपने जीवन, समाज, संस्कृति और पुरातन इतिहास की समझ की आंच में परखा है। इस तरह उन्होंने एक ऐसा परिदृश्य उभारा है, जिसमें मनुष्य अपनी संकुचित, पाशविक और आत्मघाती वृत्तियों को सभ्यता के विशाल फलक पर पहचान सकता है और उनसे उबरकर बेहतर अर्थ में मानवीय, सहनीय और संभव देश-समाज की कल्पना कर सकता है। इस पूरे प्रसंग में हम यह नहीं भूल पाते कि विश्व इतिहास में परस्पर विरोधी अंतर्धाराएं एक साथ चल रही हैं। स्वदेशी, अस्मिता, भाषा, धर्म इत्यादि के नाम पर पूर्वी यूरोप, अफ्रीका, एशिया और लातीनी अमेरिका में लाखों मनुष्य मारे जा रहे हैं। दूसरी ओर भूमंडल या विश्व के एक होने, सूचनातंत्र-अर्थतंत्र-पर्यावरण के सहारे 'एक' संसार रचने, पश्चिमी यूरोप में राष्ट्रवाद को तिलांजलि देकर यूरोपीय संघ बनाने आदि की मुहिम भी कम असरदार नहीं है।

मानव सभ्यता और राष्ट्र-राज्य पुस्तक की खूबी यही है कि चेतना को विस्तार और लोक मुहैया कराने के साथ-साथ यह हमें विकल्पों में चुनकर संकल्प की ओर ले जाने में भी सक्षम है

आधुनिक और उत्तर-आधुनिक कहलाने वाली चिंतन सारणियों ने तमाम स्थापित मानव मूल्यों और सत्यों को चुनौती दे रखी है। लेकिन दूसरी ओर उसी तीव्रता से यह भी अनुभव किया जा रहा है कि सौहार्द, सहयोग, परिवार, व्यक्तिमत्ता, उपभोक्तावाद से परहेज, मनुष्य और प्रकृति का सामंजस्यपरक संबंध निहायत जरूरी विचार और जरूरी चीजें हैं। इन दोनों छोरों के बीच अनेक पड़ाव हैं।

मानव सभ्यता और राष्ट्र- राज्य पुस्तक की खूबी यही है कि चेतना को विस्तार और लोक मुहैया कराने के साथ-साथ यह हमें विकल्पों में चुनकर संकल्प की ओर ले जाने में भी सक्षम है। जिन पाठकों ने सिन्हा की पिछली पुस्तक *भारतीय राष्ट्रीयता और सांप्रदायिकता* पढ़ी है, उन्हें यह पुस्तक उसकी अगली कड़ी जान पड़ेगी। रामेश्वर मिश्र 'पंकज' ने लेखक के लेखन और विचार-संसार का सार-संक्षेप भी इसमें दिया है। किंचित मतभेदों के साथ उसे भी अत्यन्त उपयोगी कहा जा सकता है। ■

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 24

अराजकता और सृजन

रश्मि सहगल

चौदहवीं शताब्दी के अंत में सैंड्रो बोत्तीचेली द्वारा चित्रित 'द बर्थ ऑफ वीनस' कला के सबसे अप्रतिम और सर्वप्रिय नमूनों में एक है। उसमें नग्न वीनस को एक समुद्री सीप पर आते हुए दिखाया गया है, जहां वायु देवता और एक अप्सरा उसे वस्त्र पहनाने के लिए आतुर दिखाये गए हैं।

प्रसिद्ध समाजवादी विचारक और लेखक सच्चिदानंद सिन्हा ने बोत्तीचेली की वीनस और फ्रांसीसी चित्रकार यूजीन डेलाक्रोआ की उस पेंटिंग के बीच एक परोक्ष तुलना की थी, जिसमें एक नग्न वक्ष वाली महिला को फिगियन टोपी पहने दिखाया गया है, जिसके साथ एक युवा लड़का दोनों हाथों में पिस्तौल लिए हुए है। इस पेंटिंग का शीर्षक था 'लिबर्टी लीडिंग द पीपल' (जनता का नेतृत्व करती स्वतंत्रता)।

बोत्तीचेली की शालीन और संकोची वीनस ने एक ऐसी ज्वलंत स्त्री के लिए जगह छोड़ दी, जिसने एक हाथ में फ्रांसीसी क्रांति का झंडा और दूसरे में मस्कट (बंदूक) थाम रखी थी।

कला के सिद्धांतों पर सिन्हा की उल्लेखनीय पुस्तक *केऑस ऐंड क्रिएशन* (अराजकता और सृजन) में उल्लेख है कि सदियों में कलाकार क्रमशः कितने लचीले और अभिनव होते गए हैं। वे डेलाक्रोआ को उद्धृत करते हुए समझाते हैं कि कैसे कलाकार सबसे बुनियादी सामग्री से भी सुंदरता पैदा कर सकते हैं। डेलाक्रोआ ने कहा था, 'अगर मेरी मर्जी से सब हो, तो मैं कीचड़ से भी वीनस बना सकता हूं।' सिन्हा ने अपनी पुस्तक में उन्हें फिर से उद्धृत किया: 'मुझे थोड़ा कीचड़ दो और मैं तुम्हें उससे स्त्री का मांस (काया) चित्रित करके दिखा दूंगा।'

मानव को कला की ओर ले जाने वाले विभिन्न आवेगों का अध्ययन करने वाली इतनी विस्तृत पुस्तक लिखने के लिए लेखक एक अनूठे प्रत्यक्षी थे। वे एक राजनीतिक विचारक थे जिन्होंने राजनीति, अर्थशास्त्र, इतिहास और दर्शन पर विस्तार से लिखा और जिनकी समाजवादी विचारधारा ने उन्हें एक सादगीपूर्ण जीवन जीने के लिए प्रेरित किया, जो उन आदर्शों के प्रति समर्पित था जिनमें वे अटूट विश्वास रखते थे।

लेकिन उनकी कई रुचियां थीं और कला उनमें एक थी। यह पुस्तक प्रागैतिहासिक गुफा चित्रों से लेकर आधुनिक कला के युग तक के इतिहास पर चर्चा करते हुए एक विस्तृत कैनवस को कवर करती है। उन्होंने ऐसा बड़े आत्मविश्वास और संवेदनशीलता के साथ किया है। इस प्रक्रिया में उन्होंने फ्रांसीसी और जर्मन भाषाएं भी सीखीं ताकि वे फ्रांसीसी और जर्मन कला समीक्षकों और दार्शनिकों द्वारा कला, सौंदर्यशास्त्र और दर्शन पर लिखे गए शोध ग्रंथों को उनके मूल रूप में पढ़ सकें।

मानव को कला की ओर ले जाने वाले आवेगों का अध्ययन करने वाली विस्तृत पुस्तक लिखने के लिए लेखक एक अनूठे प्रत्यक्षी थे। वे एक राजनीतिक विचारक थे जिन्होंने राजनीति, अर्थशास्त्र, इतिहास और दर्शन पर विस्तार से लिखा और जिनकी समाजवादी विचारधारा ने उन्हें एक सादगीपूर्ण जीवन जीने के लिए प्रेरित किया, जो उन आदर्शों के प्रति समर्पित था जिनमें वे अटूट विश्वास रखते थे

यह एक अनूठी यात्रा है, और जैसे-जैसे वे इस लंबी यात्रा पर आगे बढ़ते हैं, वे धर्म और विज्ञान की नींव का भी अध्ययन करते हैं–ये दो ऐसे स्तंभ हैं, जिन्होंने युगों-युगों से कलाकारों को प्रभावित किया है।

जैसा कि सिन्हा ने बहुत ही प्रभावशाली ढंग से कहा है, 'दुनिया एक निरंतर प्रवाह में है जिसमें जीवन और सामग्री एक त्वरित और समवर्ती गति में ओवरलैप होते हैं, आगे बढ़ते और पीछे हटते हैं, ठहरते या गुजर जाते हैं... इस क्षणभंगुरता और भ्रमित करने वाले संशय से मनुष्य व्यवस्था का आह्वान करता है। व्यवस्था की खोज उसकी चेतना में वैसे ही उपजती है जैसे मानो उसके अस्तित्व मात्र के तंतुओं के लिए आवश्यक हो।'

अनिवार्य रूप से, कला एक गहरा मानवीय प्रयास है, रचनात्मक कौशल के माध्यम से अर्थ गढ़ने और अनुभवों को जोड़ने का एक तरीका है, जो अक्सर संवाद और मीमांसा को जन्म देता है। ऐसा करते हुए, यह अवधारणात्मक और वैचारिक तत्वों के उच्च संगठन के माध्यम से दुनिया के प्रति हमारी जागरूकता को बढ़ाता है। एकता, लय, समरूपता और सद्भाव जैसे इसके औपचारिक तत्वों का अध्ययन करके चेतना प्राप्त करने का यह और भी गहन रूप है।

मनुष्य व्यवस्था की तलाश करता है लेकिन उसे स्थापित करना हमेशा आसान नहीं होता। पंद्रहवीं शताब्दी में विज्ञान मुख्य रूप से खगोलीय पिंडों के बारे में ब्रह्मांडीय अटकलों से विकसित हुआ। कला, जैसा

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 25

कि शुरुआती गुफा चित्रों से संकेत मिलता है, शिकार के जादुई अनुष्ठानों से विकसित हुई जिसने कई मिथकों को जन्म दिया। सिन्हा का निष्कर्ष था कि कला और विज्ञान दोनों तब 'रूपकों की एक प्रणाली' पर आधारित थे, जहां अधिक परिचित दुनिया की अवधारणाओं का उपयोग कम परिचित दुनिया के कामकाज को स्पष्ट करने के लिए किया जाता था।'

लेकिन उन्होंने आगे यह भी बताया कि क्वांटम भौतिकी की खोज ने भौतिकविदों को यह स्पष्ट करने के लिए प्रेरित किया कि 'कोई कण नहीं हैं, केवल क्षेत्र हैं' या ऊर्जा के 'पुंज' हैं जो पूरे अंतरिक्ष को भरते हैं। इसने उस पुराने दृष्टिकोण को ध्वस्त कर दिया कि दुनिया निश्चित गुणों वाली अलग-अलग वस्तुओं से बनी है।

इस दूरगामी वैज्ञानिक खोज के परिणामस्वरूप आधुनिक कलाकार वस्तुओं के चित्रण से हटकर शुद्ध अमूर्तता के चित्रण की ओर बढ़ गया। कला में रोमांटिकवाद से लेकर प्रभाववाद, प्रतिनिधित्ववाद, घनवाद और फिर शुद्ध अमूर्तता तक कई वाद हुए हैं। ये सारे वाद अपने काल के प्रमुख वैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय प्रभावों से प्रभावित रहे हैं और उन्होंने कला के विकास में बड़ी भूमिका निभाई है।

शुद्ध अमूर्तता के दो महत्वपूर्ण प्रतिनिधि कासिमिर मालेविच और पीट मोंड्रियन थे, जिन्होंने अपनी कला में वस्तुनिष्ठ दुनिया के हर निशान को मिटा दिया। जैसा कि मालेविच ने कहा, 'वर्ष 1913 में, कला को वस्तु के बोझ से मुक्त करने के मेरे बेचैन प्रयास में, मैंने चौकोर रूप की शरण ली और एक चित्र प्रदर्शित किया जिसमें एक सफेद मैदान पर एक काले वर्ग के अलावा कुछ नहीं था।'

कैंडिंस्की ने इसे और भी प्रभावी ढंग से लिखाः 'एक वैज्ञानिक घटना ने मेरे रास्ते की एक सबसे बड़ी बाधा को साफ कर दिया। यह परमाणु का क्रमशः और आगे का विभाजन था। परमाणु का बिखरना मेरी आत्मा के लिए पूरी दुनिया के ढहने जैसा था... सब कुछ अनिश्चित, डगमगाता हुआ और कमजोर हो गया। विज्ञान मुझे नष्ट हुआ प्रतीत हुआ। उसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण आधार मात्र एक भ्रम था, प्रबुद्धों की एक गलती भर, जिन्होंने अपने दैवीय संरचनाओं को किसी बदलती हुई रौशनी में अपने सधे हाथों से एक-एक पत्थर रख कर नहीं, बल्कि सत्य के अंधकार में इधर-उधर टटोलते और एक वस्तु को दूसरी समझने की बेतरह गलती करते हुए गढ़ा।'

अपनी वैज्ञानिक नींव खोने के बाद, मोंड्रियन और कैंडिंस्की दोनों ने अपनी कला को किसी आध्यात्मिक मूल्य से जोड़ने की कोशिश की। इसलिए, वस्तुनिष्ठ दुनिया के बजाय, उनकी कला ने एक आध्यात्मिक दुनिया का प्रतिनिधित्व करने की कोशिश की। आश्चर्य की बात नहीं है कि मोंड्रियन और कैंडिंस्की दोनों थियोसोफी (ब्रह्मविद्या) के प्रभाव में थे और मालेविच एक ईसाई रहस्यवादी थे।

इसका मतलब यह नहीं है कि सिन्हा की किताब पुनर्जागरण और उसके बाद की कला पर विस्तार से ध्यान केंद्रित नहीं करती है। संपूर्ण कला ब्रह्मांडीय शक्तियों के साथ मनुष्य के संबंधों को परिभाषित करने का एक प्रयास रही है, भले ही कला का कला के रूप में अनुसरण एक हालिया घटना है, क्योंकि मानव इतिहास के अधिकांश समय में कला गैर-कलात्मक उद्देश्यों से प्रेरित अन्य गतिविधियों का उत्पाद रही है।

उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि पुनर्जागरण और उत्तर-पुनर्जागरण काल के यूरोपीय कलाकार रैखिक, शेड्स और रंगीन कोड के संयोजन द्वारा समतल सतहों पर गहराई और दूरी का भ्रम पैदा करने में

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 26

सफल रहे थे। इन शैलियों के दो उस्ताद रूबेन और रेम्ब्रांट थे।

पश्चिमी कला के विकास के बारे में लिखते समय, वे रेखांकित करते हैं कि सदियों से इसमें चित्रित मनुष्य की छवि कैसे लगातार बदलती गई, जहां मानवीयकरण की विकसित होती प्रक्रिया उनके काम में शामिल होती गई। गोया और डौमियर ने महान हस्तियों पर व्यंग्य किया, वहीं डौमियर, कौरबेट और मिलेट जैसे कलाकारों ने जीवन की कठिनाइयों और कष्टों को चित्रित किया। उन्नीसवीं शताब्दी में, मनुष्य की छवि तीव्रता से भीतर की ओर मुड़ती गई और वॉन गॉग तथा मंच जैसे कलाकारों ने अपने समय की सामाजिक वास्तविकता पर ध्यान केंद्रित करना शुरू कर दिया।

लेकिन उन्होंने भारतीय कला और इसके प्रतीक चित्रण की परंपरा पर भी विस्तार से लिखा जो धार्मिक कला की एक अनिवार्य विशेषता है। लेखक बताते हैं कि कैसे 'धार्मिक कला ने अपने विकास के अनुरूप, दृश्य दुनिया के औपचारिक तत्वों या विशेषताओं के अतिरंजना, शमन, स्थानांतरण या रूपांतरण के माध्यम से ऐसी छवियां बनाई हैं जो अमूर्त और अलौकिक की उनकी अवधारणा से मेल खाती हैं।'

अजंता की कला में गहरे धार्मिक भाव को अद्भुत ऐंद्रिय सुंदरता के साथ जोड़ने का दुर्लभ गुण है। अजंता की गुफा की दीवारों को भरने वाले सभी मानव और पशु रूप प्राकृतिक रूप से परे किसी आदर्श की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति प्रदर्शित करते हैं।

लेखक बौद्ध कला के प्रिय देवताओं में से एक, 'त्रिभंग' मुद्रा (तीन घुमावों वाली वक्रता) में चित्रित अवलोकितेश्वर के सृजन का अत्यंत स्पष्टता से वर्णन करते हैं। वे रेखांकित करते हैं कि यह वक्रता पारंपरिक भारतीय नृत्य में शरीर की कोमल गतिविधियों से मेल खाती है। यह न केवल सांची के द्वार पर बनी यक्षी की मूर्ति की विशिष्ट मुद्रा है (जो इस आकृति से कई शताब्दियों पुरानी है), बल्कि बाद की शिव, नटराज और अन्य देवताओं की मूर्तियों में भी दिखाई देती है। इन सभी में कमल की पंखुड़ियों जैसी प्रतिष्ठित आंखें, धनुषाकार भौहें और हाथी के मस्तक के समान कंधे हैं, जिन्हें कलाकार ने सौंदर्य की एक अद्भुत अभिव्यक्ति में संजोया है।

भारतीय कला ने युगों-युगों से अपनी अभिव्यक्ति में अनंतता, शांति, संतुलन और निश्चित रूप से सौंदर्य को व्यक्त करने का प्रयास किया है।

सिन्हा इस बात पर जोर देते हैं कि चित्रकला और मूर्तिकला में यह उभार बौद्ध धर्म के आगमन के बाद हुआ। वे बताते हैं कि इन चित्रों में हमारे नायक उन रूपों से बिल्कुल अलग दिखते हैं जैसा उन्हें महाकाव्यों में दर्शाया गया है। उदाहरण के लिए, महाभारत के कृष्ण एक महान राजनीतिज्ञ और ऋषि के रूप में दिखाए गए हैं, लेकिन लघु चित्रों (मिनिएचर पेंटिंग्स) में वे राधा के प्रति अपना प्रेम व्यक्त करते हुए या गोपियों को सताते दिखाई देते हैं।

इन चित्रों में कामुक प्रेम के तत्व नहीं उभरे, संभवतः इसलिए क्योंकि कोणार्क, खजुराहो और भुवनेश्वर की पुरानी मूर्तियां कामुकता से भरी थीं। उस काल के शासकों का मानना था कि जीवन के ऐसे विलासी दृष्टिकोण ने पुरुषों की सामाजिक जिम्मेदारी की भावना कमजोर कर दी थी।

यह पुस्तक एक तार्किक और संक्षिप्त शैली में लिखी गई है, जो सिन्हा के लेखन की विशेषता है। सिन्हा स्वयं भी एक कुशल कलाकार थे; उन्होंने मेरे तीनों बच्चों को भारतीय पक्षियों की एक उत्कृष्ट हस्तनिर्मित पेंटिंग वाली पुस्तक भेंट की थी। प्रत्येक पेंटिंग के नीचे उस पक्षी की विशेषताओं को दशार्ती एक कविता भी लिखी थी।

मैं इस लेख का अंत यह बताते हुए करना चाहूंगी कि सिन्हा ने जर्मन-स्विश कलाकार पॉल क्ली का विस्तार से संदर्भ दिया है। क्ली ने अभिव्यक्तिवाद, घनवाद, अतियथार्थवाद और अमूर्तता के मिश्रण से एक अनूठी शैली विकसित की थी। उनका कार्य सनकी, बाल-सुलभ आकृतियों, समृद्ध रंग सिद्धांत, ज्यामितीय आकार और संगीत के तत्वों से पहचाना जाता था। फलस्वरूप एक अनूठे निजी, प्रतिनिधात्मक कला का जन्म हुआ जो अर्थ की गहरी परतों वाला था। उन्होंने आकृति और डिजाइन पर कई सिद्धांतों का विकास और उन पर लिखा जिसने उनके लेखन को उनकी कलाकृतियों की भाँति ही प्रभावशाली बना दिया।

सिन्हा पॉल क्ली को उद्धृत करते हुए कलाकार और दुनिया के संबंध का वर्णन करते हैं। क्ली ने लिखा थाः 'क्या मैं एक उपमा, एक पेड़ की उपमा का प्रयोग कर सकता हूं? कलाकार ने इस विविध दुनिया का अध्ययन किया है और हम ऐसा मान सकते हैं कि इसमें अपना निशंक पथ ढूंढ निकाला है।' उसकी दिशा की समझ ने छवियों और अनुभवों की बहती धारा में एक व्यवस्था स्थापित की है। प्रकृति और जीवन में इस दिशा बोध की तुलना मैं पेड़ की जड़ से करूंगा।

जड़ से रस कलाकार तक बहता है, उससे होकर गुजरता है और उसकी आंखों तक पहुंचता है। इस प्रकार वह पेड़ के तने के समान खड़ा है।

उस प्रवाह की शक्ति से टूटकर और मथकर, वह अपनी दृष्टि को अपनी कलाकृति में ढालता है।

कोई भी यह नहीं कह सकता कि पेड़ का ऊपरी हिस्सा (क्राउन) अपनी जड़ की हूबहू छवि होता है। ऊपर और नीचे के बीच कोई प्रतिबिंबित प्रतिछवि नहीं हो सकती। यह स्पष्ट है कि अलग-अलग तत्वों में विस्तार पाने वाले अलग-अलग कार्य 'महत्वपूर्ण विचलन' पैदा करते हैं। इन्हीं 'महत्वपूर्ण विचलनों' का मेल और सृजन ही उस कला को जन्म देता है जो व्यक्तिगत, प्रतीकात्मक, प्रतिनिधात्मक, ज्यामितीय या बाल-सुलभ हो सकती है। ये सभी एक अनूठी दृष्टि में संश्लेषित होते हैं, जो महान कला की पहचान है। ■

अनुवादः अपर्णा अनेकवर्णा

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 27

'जीवन बोध कमजोर होगा तो सौंदर्य-बोध भी नीचे जाएगा'

प्रियदर्शन

जिसे हम समाजवादी विचार-परंपरा कह सकते हैं, उसमें कुछ स्थूल रूप से देखें तो संस्कृति विषयक चिंतन की बहुत महत्वपूर्ण जगह है। आचार्य नरेंद्रदेव, डॉ. राम मनोहर लोहिया या किशन पटनायक के विपुल लेखन में हमें अपनी संस्कृति और अपने सांस्कृतिक इतिहास के इतने सारे सूत्र मिलते हैं कि उनसे एक सहज दृष्टि विकसित होती दिखाई पड़ती है। महत्वपूर्ण बात यह है कि लगभग इन सभी लोगों का सांस्कृतिक चिंतन मूलतः देशज ज्ञान और परंपरा के अध्ययन से निकला है, वह उनके एशियाई अनुभव की देन है, यूरोपीय अध्ययन का प्रभाव नहीं। बेशक, यूरोपीय या पश्चिमी कहलाने वाले चिंतन से इन सबका परिचय रहा और उनके प्रति कोई वैसी वितृष्णामूलक दृष्टि भी नहीं रही जो खुद को भारतीय समझने और बताने वाली कई शुद्धतावादी कूपमंडूक दर्शन प्रणालियों में मिलती है। बल्कि कई बार यह प्रतीत होता है कि वे यूरोप या पश्चिम से मिले सूत्रों को भारतीय अनुभव के आईने में परखते हैं और नए सूत्र भी विकसित करते हैं। आचार्य नरेंद्र देव रोजा लक्जमबर्ग को उद्धृत करते मिलते हैं और बताते हैं कि समाजवाद बस रोटी का नहीं, संस्कृति का भी मामला है। वे संस्कृति को चित्त की खेती कहते हैं। वे बौद्ध दर्शन के विशेषज्ञ हैं और धर्म और संस्कृति के अंतर को बहुत करीने से समझते हैं। डॉ. लोहिया को पढ़ते हुए हमें अपनी मिथक कथाओं के नए भाष्य मिलते हैं और राम, कृष्ण, शिव, सीता, सावित्री, द्रौपदी जैसे चरित्रों को नई रोशनी में समझने का अवसर मिलता है। किशन पटनायक के यहां भी बहुत गहनता से संस्कृति संबंधी प्रश्न आते हैं और वे कहते मिलते हैं कि भारत एक दिन शूद्रों का होगा।

इस चिंतन परंपरा में जो सबसे अनूठा और मौलिक नाम दिखाई पड़ता है, वह सच्चिदानंद सिन्हा का है। ऐसा नहीं कि वे समाजवाद की मूल विचारधारा से कुछ दूर जाकर चीजों को देखते हैं। लेकिन वे संस्कृति और कलाओं की बिल्कुल बुनियाद तक जाकर उनकी निर्मिति, उनके संप्रेषण और उनके प्रभाव पर बात करते हैं। इस क्रम में वे किसी भी तरह के सरलीकरण या सामान्यीकरण का सहारा नहीं लेते, बल्कि अलग-अलग कला-रूपों पर इतने विस्तार में विचार करते नज़र आते हैं कि लगता है जैसे हम किसी राजनीतिक-सामाजिक आलोचक को नहीं, किसी संस्कृति-आलोचक को पढ़ रहे हैं।

सच्चिदानंद सिन्हा ने कला की अवधारणा पर बहुत व्यापकता से विचार किया है। वे रेखाओं, बिंदुओं या आकृतियों के मन पर पड़ने वाले प्रभाव से शुरू करते हैं- यानी बिल्कुल वहां से जहां से किसी कलात्मक उपक्रम की शुरूआत होती है। वे प्रकृति के रहस्यों को समझने में एक तरफ विज्ञान की भूमिका की चर्चा करते हैं तो दूसरी तरफ कला के अवदान को भी पहचानते हैं। रंग, छाया, प्रकाश, माप-तौल, ध्वनियां, शब्द- कला के जो बिल्कुल प्राथमिक उपकरण होते हैं- वे उन सबके प्रभाव पर विस्तार में चर्चा करते हैं। कला, विज्ञान, प्रकृति, धर्म, इतिहास, तरह-तरह के द्वंद्व- यह सब उनके चिंतन में आते-जाते हैं। चित्रकला की पूरी परंपरा का अध्ययन उनके यहां मिलता है। लियोनार्दो द विंची, माइकल ऐंजिलो, पिकासो और उसके अलग-अलग दौर, सेजां, गोया- सबकी इतनी विशद चर्चा है कि सोचकर हैरत होती है कि आखिर देश-दुनिया को समाजवादी कसौटियों के आईने में देखने में लगे सच्चिदानंद सिन्हा को इतनी फुरसत कब और कैसे मिली कि वे चित्रकला का ऐसा विशद अध्ययन कर सकें। वे गोया के युद्ध संबंधी चित्रों की चर्चा करते हैं, पिकासो के गुएर्निका को याद करते हैं, डाली के प्रिमॉनिशन ऑफ सिविल वार के प्रतीकवाद को पहचानते हैं और इन सबके बीच अंततः कहते हैं कि ह्यकला दुनिया के अनुभवों से ही पैदा होती है और जिस प्रतिरूप को गढ़ती है, वह किसी तरह दुनिया से ही संबंधित होता है, किंतु कला के माध्यम से समय की भौतिक या आध्यात्मिक स्थिति का अस्पष्ट ज्ञान अपने औपचारिक संगठन में मूर्त होकर संप्रेषणीय बन जाता है और संप्रेषण के माध्यम से प्रतिरूप शाश्वत हो जाते हैं।ह्य(यह उद्धरण सच्चिदानंद सिन्हा रचनावली के पहले खंड से लिया गया है और संभवतः अनूदित है, इसलिए कुछ कंकड़नुमा है।)

लेकिन कला और संस्कृति के प्रश्नों पर इतनी गहनता और समग्रता से सच्चिदानंद सिन्हा को विचार करते देख यह निष्कर्ष निकालने की भूल नहीं करनी चाहिए कि उनके लिए कला या साहित्य या संस्कृति का सवाल राजनीतिक, आर्थिक या सामाजिक सवालों से भिन्न

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 28

है- दरअसल उनके लिए ये सारे सवाल आपस में मिले हुए हैं, वे एक-दूसरे से उत्पन्न होते, एक-दूसरे को प्रभावित करते प्रश्न हैं। इसलिए वे एक तरफ मानव मन पर बिंदुओं, रेखाओं, आकृतियों और रंगों के प्रभाव पर विचार करते हैं तो दूसरी तरफ पूरी सभ्यता के अलग-अलग चरणों में कला के उद्देश्यों और उसके लक्ष्यों पर बात करते हुए उसकी सीमाएं भी बताते चलते हैं। वे बिल्कुल प्रारंभिक और कबीलाई समाजों में कला के विकास पर विचार करते हैं। यह कलात्मकता का ही विकास था। इसी तरह गुफाओं में प्रस्तर-चित्रों ने आखेट संबंधी कल्पनाओं को विस्तार दिया। फिर इनकी प्रतीकात्मकता के साथ धार्मिक विश्वास भी जुड़ते गए। तरह-तरह के मुखौटों के साथ इन कलात्मक संभावनाओं का विकास होता गया। जीवन में जैसे-जैसे संघर्ष कम हुए, वैसे-वैसे सृजन और सौंदर्य की ओर भी लोगों का ध्यान गया। चित्रकला के अलावा संगीत और नृत्य के विकास को भी वे इसी तरह पहचानते हैं। चिड़ियों की आवाजों, नदियों की कलकल के बीच विकसित संगीत और उससे जुड़े नृत्य की कल्पना, इनके बीच बन सकने वाली नाटकीय स्थितियों से रंगकर्म के विकास उनके ध्यान में आती है।

लेकिन आधुनिक युग आते-आते क्या होता है? यहां आकर वे लिखते हैं- आधुनिक औद्योगिक सभ्यता ने अवकाश और कला के लिए उपलब्ध वस्तुओं दोनों में इजाफा किया है, लेकिन इसने उस समुदाय को नष्ट कर दिया है जिससे कला की संप्रेषणीयता का आधार बनता था। इसके अलावा शहरीकरण ने आदमी को उस परिवेश से काट दिया है, जिससे हजारों वर्षों से मनुष्य रचनात्मक ऊर्जा ग्रहण करता था।

संस्कृति के केंद्र अब नगर बन रहे हैं। इससे कलाकृति के चरित्र में एक मौलिक बदलाव आया है। अब कला समुदाय से संवाद के माध्यम के बजाय या तो शुद्ध रूप से आत्मचेत्ता बन गई है या व्यापार के लिए तैयार माल।

दरअसल यह कला और उसके सरोकार के सिकुड़ते जाने या उसके व्यावसायिकीकरण की ओर इशारा नहीं है, यह उस बदलाव का संकेत है, जिसमें समुदाय पीछे छूट रहे हैं, व्यापार आगे बढ़ रहा है। इस प्रक्रिया ने भाषा के इस्तेमाल में भी एक तरह के द्वैत को जन्म दिया है।

सच्चिदानंद सिन्हा लिखते हैं- 'हाल के दिनों में उत्तर आधुनिकतावादी विमर्श ने भाषा में ऐसे वैचारिक घालमेल को प्रोत्साहित किया है जिससे काल्पनिक और वास्तविक का विवेक नष्ट हो जाए और आदमी में अपनी समस्याओं से जूझने का संकल्प हताशा और यथास्थितिवाद में बदल जाए। हमारे अपने समय में राजनीति और व्यावसायिक विज्ञापन, दोनों ही भाषा के प्रदूषण से त्रासद ढंग से प्रभावित हुए हैं। इसलिए संस्कृति के सामने भाषा की संप्रेषणशीलता को विश्वसनीय बनाए रखने की बड़ी चुनौती उपस्थित हो गई है। भाषा को संयत बनाने की बजाय मनमाने प्रयोग का लाइसेंस सांस्कृतिक बिखराव का भी नुस्खा हो सकता है।'

संस्कृति और कला के विभिन्न रूपों पर इस विशद विचार के क्रम में सच्चिदानंद सिन्हा भारत में कला के विकास को भी देखते हैं। विशाल मूर्तिशिल्पों मंदिरों के स्थापत्य से लेकर वे विभिन्न कला शैलियों का उल्लेख करते हुए बिल्कुल बीसवीं सदी तक चले आते हैं। यहां भी उनकी नजर उस द्वैत पर है, जो हमारी कलागत या सांस्कृतिक दृष्टि में दिखाई पड़ता है। वे कहते हैं- आजादी के आंदोलन और महात्मा गांधी के प्रभाव में एक बार फिर भारतीय कलाकार आम लोगों के जीवन की ओर मुड़ता है और नंदलाल बोस, यामिनी राय जैसे कलाकर भारतीय जीवन को नई भारतीय पद्धति से जोड़ने की कोशिश करते हैं, लेकिन चालीस का दशक आते-आते एक नया कला-प्रभाव, जो पश्चिम में मॉडर्निज्म के नाम से जाना जाता है कलाकारों पर छाने लगता है। और इस प्रभाव में कलाकारों की एक पूरी पीढ़ी इस धारा को अलग-अलग रूपों में अपनाने लगी है, लेकिन अभी तक यह जनजीवन से जुड़ नहीं पाया है, और इसके संरक्षक वही संपन्न मध्यम वर्ग हैं, जो पश्चिम के कला-बाजार से भी संबद्ध हैं। आम लोगों के जीवन से जुड़ी कला मूलतः पूजा के अवसरों पर पांडालों को सजाने वाला मूर्तिशिल्प है। इनमें गणपति, दुर्गा, सरस्वती आदि की मूर्तियों की प्रधानता है। फिलहाल लोगों में इन्हीं का आकर्षण है और इनसे बड़ी संख्या में लोक कलाकारों को आजीविका प्राप्त होती है, लेकिन इस कला में कोई नया जीवन-बोध नहीं है। ऐसा नहीं कहा जा सकता कि फिलहाल हमारे यहां किसी नए जीवन बोध और उससे जुड़े सौंदर्यबोध का उत्कर्ष हो रहा है। अगर जीवन-बोध नीचे की तरफ हों तो सौंदर्यबोध के विकाक की संभावना भी कमजोर ही होगी, ऐसा प्रायः देखा जाता है। इसके कुछ अपवाद जरूर हो सकते हैं।

इस लंबे अंश को उद्धृत करने का एक मकसद यह बताना है कि सच्चिदानंद सिन्हा कितनी सूक्ष्मता से कलाओं की सीमा को परख सकते हैं और कितनी सख्ती से उनका उल्लेख कर सकते हैं। जीवन बोध ऊंचा होगा तभी संस्कृति बोध या सौंदर्य बोध भी बेहतर होगा- यह खरी समझ संभवतः सच्चिदानंद सिन्हा के संस्कृति संबंधी चिंतन के मूल में है। आज के दौर में सत्ता और बाजार मिलकर जिस तरह संस्कृति उपयोग और उपभोग कर रहे हैं, उसे जनविमुख कर एक सजावटी तमाशे में बदल रहे हैं, इस प्रक्रिया की ओर सच्चिदानंद सिन्हा अपनी शैली में कई बार इशारा करते हैं। उनके सांस्कृतिक चिंतन में हमें कला, भाषा, संस्कृति और साहित्य को व्यापक स्तरों पर समझने के कई महत्वपूर्ण सूत्र मिलते हैं। ■

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 29

निहत्थे पैगंबर की नैतिक जामा तलाशी लेती एक किताब

अरुण कुमार त्रिपाठी

बीसवीं सदी के महान चिंतक सच्चिदानंद सिन्हा ने अपनी पुस्तक 'द अनआर्मड प्रोफेट' में बीसवीं सदी के सबसे महान व्यक्ति के नैतिक व्यक्तित्व की जामा तलाशी ली है। अगर मेडिकल भाषा में कहा जाए कि एमआरआई की है तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। महात्मा गांधी अपने पास आने वाले किसी व्यक्ति विशेषकर प्रार्थना सभा में आने वालों की जामातलाशी लेने से मना करते थे। उनकी हत्या के कारणों में एक यह भी है। लेकिन महात्मा गांधी के व्यक्तित्व की जामा तलाशी तभी से शुरू हो गई थी जब वे दक्षिण अफ्रीका में थे और महात्मा नहीं हुए थे। यह काम उनके पहले जीवनी लेखक और बैपटिस्ट मिशनरी जोसेफ जे. डोक ने किया था। उनकी किताब का नाम था...एम.के गांधीः एन इंडियन पैट्रियाट इन साउथ अफ्रीका। किताब 1909 में आई थी। किताब में गांधी के लंदन के छात्र जीवन और दक्षिण अफ्रीका में वकालत के साथ राजनीतिक संघर्षों का इतिहास है। ध्यान देने लायक बात है कि उसमें गांधी को राष्ट्रवादी नहीं कहा गया है। बल्कि देशभक्त कहा गया है। शायद गांधी के लिए यह शब्द अंत तक उपयुक्त रहेगा जब वे भारत में अपने संघर्ष को एक अंजाम दे चुके थे।

सच्चिदानंद सिन्हा की यह किताब 1988 में आई थी। यह किताब नैतिकता के सौर मंडल में गांधी के व्यक्तित्व को तलाशने की एक गंभीर कोशिश है। सच्चिदानंद सिन्हा ने गांधी को पैगंबर कहा है और जाहिर सी बात है कि वे इस विमर्श को यूरोप के अकादमिक और शास्त्रीय विमर्श के मंच पर करना चाहते हैं। वरना भारत में विनोबा भावे से लेकर डॉ राममनोहर लोहिया तक उनके कई प्रमुख साथियों ने उन्हें कृष्ण के चमत्कारी व्यक्तित्व के समकक्ष रखा है। वे लोग कहते हैं कि यह अद्भुत संयोग है कि पौराणिक पात्र कृष्ण का जन्म यमुना के किनारे और मृत्यु अरब सागर के किनारे हुई जबकि गांधी का जन्म अरब सागर के किनारे हुआ और उनकी मृत्यु यमुना के किनारे हुई। दोनों ने अपने धर्म के मार्ग पर चल कर बड़ा संघर्ष किया अपने साथियों और अनुयायियों को उससे जोड़ा। अन्याय का सामना किया और एक हद तक उसे समाप्त किया। लेकिन एक अंतर है। दोनों के पास चमत्कारी शक्तियां थीं और उन्होंने अपने राजनीतिक कार्यों में उसका प्रयोग किया। लेकिन कृष्ण ने अपने जीवन के अंतिम समय में उन शक्तियों का प्रयोग बंद कर दिया था जबकि गांधी अपने अंतिम क्षण तक उनका प्रयोग करते रहे और उनकी मृत्यु के बाद तो उसका और गहरा असर दिखा।

सच्चिदानंद सिन्हा ने अपनी पुस्तक के माध्यम से पंद्रहवीं सदी के इटली के राजनयिक और दार्शनिक निकोलो मैकेवेली के राजनीतिक ग्रंथ 'द प्रिंस' के ग्रंथ का जवाब दिया है। मैकेवेली कहते हैं कि नई व्यवस्था को लागू करने के लिए बल प्रयोग आवश्यक है। उनका कहना है कि अगर हजरत मूसा, साइरस, थीसस और रोमुलुस ने अपने नियमों को बल प्रयोग के साथ लागू न किया होता तो उनके नियमों और संस्थाओं का पालन न होता। हालांकि इनमें सिर्फ हजरत मूसा को पैगंबर की श्रेणी में रखा जा सकता है जिन्होंने सांसारिक शक्तियों से अधिक दैवी शक्तियों पर अपनी निर्भरता दशार्यी थी। आजकल भले लोग मैकेवेली के विचारों को कंठस्थ करके और उसे जीवन में उतार कर राजनीति कर रहे हों लेकिन गांधी की राजनीति पूरी तरह से उसके समक्ष चुनौती प्रस्तुत करती है। भारत में तो हर पार्टी में दांव पेंच और पैंतरा चलने वाले राजनेता को चाणक्य की संज्ञा दी जाती है जो कि आधुनिक युग के मैकेवेली से काफी समतुल्य चरित्र लगता है। मैकेवेली ने कहा है कि राजा को अपने राज को चलाने और उसके विस्तार के लिए हर तरह के तरीकों का सहारा लेना चाहिए जिसमें पुचकारने, पटाने से लेकर दमन करने तक की गतिविधियां शामिल हैं। उसी तरह से चाणक्य ने शाम, दाम, दंड, भेद जैसे उपायों को राजनीति का अस्त्र बताया है। कृष्ण ने भी महाभारत विजय के लिए हर तरह के पैंतरों का प्रयोग किया और उसे धर्म के आधार पर सही बताया। मैकेवेली कहते हैं कि जितने पैगंबर हाथ में हथियार लेकर आए वे सब सफल थे। जो शस्त्रविहीन थे वे विफल रहे। क्योंकि लोगों को तत्क्षण किसी बात से राजी करना आसान हो सकता है लेकिन लंबे समय तक उस पर चलाना कठिन होता है। इसलिए मसीहा को ताकत के प्रयोग के लिए तैयार रहना चाहिए।

यानी क्रांतियों को लोगों की इच्छाओं के विरुद्ध जाकर करना होता है। लोग क्रांति के लिए होने वाले तमाम प्रयासों से

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 30

किताबनामा

थक जाते हैं इसलिए नेताओं को बल प्रयोग करना पड़ता है। मैकेवेली का यही विचार स्तालिन के रूसी अधिनायकवाद और माओत्से तुंग की हिंसक क्रांति का आधार बना। माओ तो कहते भी थे कि क्रांति बंदूक की नली से निकलती है।

गांधी का व्यक्तित्व इन मान्यताओं के ठीक विपरीत था और उनकी राजनीति भी। संबंधित पुस्तक उनके इसी व्यक्तित्व को तलाशती है। किताब का शीर्षक लियो

सच्चिदानंद सिन्हा की यह किताब 1988 में आई थी। यह किताब नैतिकता के सौर मंडल में गांधी के व्यक्तित्व को तलाशने की एक गंभीर कोशिश है। जाहिर सी बात है कि वे इस विमर्श को यूरोप के अकादमिक और शास्त्रीय विमर्श के मंच पर करना चाहते हैं

टालस्टाय की जीवनी के 'प्रोफेट आर्म्ड, प्रोफेट डिस्आर्म्ड एंड प्रोफेट आउटकास्ट' उस शीर्षक से लिया गया है, जिसे आइजवष्ठ डियूशर ने लिखी है। सात अध्यायों में विभक्त यह पुस्तक 128 पृष्ठों में समाई हुई है। लेकिन हर अध्याय अपने तरीके से मानव के नैतिक विकास की कहानी कहता है और आखिरी अध्याय गांधी के बहाने मानव सभ्यता के समक्ष उस जरूरी सवाल को रखता है जिसे देश दुनिया में गांधी पर सोचने और लिखने वाले पूछ रहे हैं। वह सवाल है कि क्या गांधी बचेंगे (विल गांधी सरवाइव)? इसके पहले के अध्यायों के शीर्षक इस प्रकार हैः–इन द एज आफ निहलिज्म, बायोलाजिकल रूट्स आफ मैनह्लस स्प्रीचुएलिटी, द सेटिंग फार न्यू मेसेज, द वन डायमेंशनल मैन, टूआर्ड्स यूनिवर्सल मारेलिटी और हैजार्डस आफ राइट्सनेस।

गांधी में पैगंबरी के अक्स देखते हुए लेखक ने प्रोफेसर निर्मल कुमार बोस की पुस्तक 'माइ डेज विथ गांधी' का उल्लेख किया है। गांधी अपने आखिरी दिनों में उसी तरह चीख रहे हैं जिस तरह ईसा मसीह चीख रहे थे। नोआखाली में गांधी के साथ चल रहे निर्मल कुमार बोस लिखते हैं कि गांधी बुदबुदाते रहते थेः...क्या करूं? क्या करूं? एन.के. बोस लिखते हैं कि गांधी का सामना जब इस्माइल खोडकर नाम के एक किसान से हुआ तो किसान ने कहा कि हमारे देश पर यह आफत खुदा की मर्जी से आई है। गांधी कहते हैं कि उसका कहना सही है कि हालात तो अल्लाह की मर्जी से सुधरेंगे लेकिन हर किसी को अपने कर्तव्य का पालन करना होगा। अल्लाह इंसानों के माध्यम से काम करता है। वे इस गांव में अपने दायित्व का निर्वहन करने निजी तौर पर आए हैं।

सच्चिदा जी लिखते हैं कि आज की सभ्यता के समक्ष समस्याएं बहुत हैं और वह उनके हल के लिए नैतिक समाधान का प्रयोग करेगा यह आसान नहीं लगता क्योंकि उसे भीतर जाति, घर्म, राष्ट्र और नस्ल के आधार पर गहरा विभाजन है। लेकिन अगर मानव सभ्यता को बचना है तो उसे गांधी के रास्ते को अपनाना होगा। हो सकता है कि उस निहत्थे पैगंबर के उपदेश को पूरा न अपनाया जा सके लेकिन सभ्यता के गंभीर संकट के हल के लिए किसी न किसी हद तक फौरी रूप से अपनाना ही होगा। उसके बाद लोग अपने रास्ते पर चलने लगेंगे। शायद पैगंबरों की इतनी ही बात मानी जाती है। वे लिखते हैं कि गांधी का आत्मनिर्भरता का दर्शन विश्व समाज को सबसे लघु स्तर सक्षम बनाता है इसका विस्तार करते जाने से श्रेष्ठता और अहंकार से होने वाले विनाश को कम किया जा सकता है। यानी गांधी का ग्राम स्वराज का सिद्धांत।

पुस्तक का पहला अध्याय कहता है कि हम नकारवाद के युग में हैं। ऐसे में किसी नैतिक मूल्य व्यवस्था या किसी ईश्वर या पैगंबर पर यकीन करने वाले लोगों की संख्या लगातार कम होती जा रही है। दुनिया के विकसित औद्योगिक देशों में नास्तिकों की संख्या बढ़ रही है। हर व्यक्ति अपने ढंग से नैतिकता को परिभाषित करता है। अगर राज्य व्यवस्थाओं के कानून न रोकें तो शक्तिशाली से लेकर कमजोर व्यक्ति तक कोई भी नैतिकता को मानने के लिए तैयार नहीं होता। गांधी ऐसे चुनौती भरे समय में आए जब दुनिया में आधुनिकता के माध्यम से नैतिकता बिखर रही थी। गांधी का तरीका पैगंबरों की तरह से धर्म के तात्विक मूल्यों और प्राचीन समाज की सरलता का बखान करने का था। जो आधुनिकता को चुनौती देने वाला था।

जिस तरह से पैगंबर चमत्कार करते हैं। बीमार को चंगा करते हैं, मुर्दे में जान डालते हैं, शक्तिशाली दुश्मन को मारते हैं और पापियों के पाप दूर करते हैं वैसे ही कुछ चमत्कार गांधी ने भी किए। उन्होंने शांति के औजारों से आजादी की लड़ाई जीती, दुश्मनों को दोस्त बनाया, हिंदू मुस्लिम एकता कायम की और दंगों का शांत कराया। हालांकि लेखक यह मानता है कि बीसवीं सदी के अन्य सफल राजनीतिज्ञों की तुलना में गांधी एक विफल राजनीतिज्ञ हैं। उनके सामने भारत का विभाजन हुआ और लाखों लोग मारे गए। इसके बावजूद वे पैगंबरी के पथ से हटे नहीं और न ही उन्होंने संन्यास ग्रहण कर-के हिमालय की शरण ली। इसलिए गांधी अपने समकालीन नेताओं की तुलना में बहुत ऊपर उठ जाते हैं।

वास्तव में गांधी के जीवन की त्रासदी वैसी ही है जैसे पैगंबर के जीवन की त्रासदी थी। जीवन के आखिरी क्षणों में जिस तरह से पैगंबर के साथियों ने उनका

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 31

साथ छोड़ दिया था वैसे ही गांधी के करीबी मित्रों ने उनका साथ छोड़ दिया था। गांधी देख रहे थे कि यूरोप में उन्नीसवीं सदी के अंत के साथ ही धर्म और ईश्वर का नकार शुरू हो गया था। लेकिन नैतिकता किसी न किसी रूप में जीवित थी। दरअसल समाजवाद और अराजकतावाद के मूल्य ईसाइत से आए थे। हालांकि इन आंदोलनों के नेता नास्तिक थे। नीत्से ने लिखा है कि समता, भाईचारा और बुरी शक्तियों की अवधारणा ईसाइयत से आई है। शोषण की अवधारणा भी तभी चरितार्थ हुई जब ईसाइयत की बराबरी की धारणा पर विचार किया गया और उसे मान्यता दी गई।

दास्तोवस्की कहते हैं कि अगर ईश्वर नहीं होगा तो कोई कुछ भी करेगा। नीत्से कहते हैं ईश्वर की मृत्यु से पूरा ब्रह्मांड असंतुलित हो गया है। जब तक मनुष्य ईश्वर की कुर्सी पर नहीं बैठता तब तक यह ब्रह्मांड अपना संतुलन कायम नहीं कर पाएगा। शायद यही बात युआल नोआ हरारी अपनी पुस्तक होमो डियस में प्रतिपादित करते हैं। आधुनिक यूरोप में मूल्यों का गहरा संकट है और नैतिक मुद्दों पर व्यक्ति स्वयं फैसला करता है।

सच्चिदानंद जी नोबेल पुरस्कार विजेता व प्रष्ठांसीसी लेखक आंद्रे जिदे के हवाले से कहते हैं कि ईश्वर अगर कहीं है तो वह नैतिकता में है। इसी बात को गांधी अपने ढंग से कहते हैं। जो गांधी पहले कहते थे कि ईश्वर सत्य है वे दूसरे गोलमेज के समय यूरोप का दौरा करते हुए कहते हैं कि सत्य ही ईश्वर है। जिस प्रकार गांधी अच्छाई और बुराई के बीच सतत संघर्ष को देखते हैं और रामायण, महाभारत और गीता में सत्य और अहिंसा का द्वंद्व पाते हैं न कि किसी प्रकार का बाह्य युद्ध। उनका मानना था कि वह युद्ध मनुष्य बाहर नहीं अपने भीतर लड़ रहा होता है। आंद्रे जिदे कहते हैं कि भौतिक संसार और नैतिक संसार सदैव संघर्षरत हैं। वे प्रोमेथियस नाम के उस मिथकीय पात्र का हवाला देते हैं जिसने जियस यानी देवताओं से आग चुराई थी और मानवों को दी थी। जिसके बाद उसे चट्टान से बांध दिया गया था और चील उसके जिगर को नोच नोच कर खा गई थी।

जिदे लिखते हैं कि मानव सभ्यता के बीच प्रोमेथियस और जियस, आत्मा और पदार्थ, प्रेम और क्रूर सत्ता, ईसा मसीह और प्रकृति की उदासीनता के बीच सतत संघर्ष का नाटक चलता रहता है।

सच्चिदानंद सिन्हा की विशेषता यह है कि वे ईश्वर, धर्म, आध्यात्मिकता, पैगंबर और नैतिकता की दैवीय तलाश करने के बजाय उसकी जैव वैज्ञानिक तलाश करते हैं। उसकी लौकिक तलाश करते हैं। अनआर्म्ड प्रोफेट का दूसरा अध्याय इसी पर है। बायोलाजिकल रूट्स आफ मैन्स स्प्रिचुएलिटी। इसके लिए वे ब्रिटिश जैवविज्ञानी और मानव विज्ञानी डेस्मांड मारिस की पुस्तक 'द ह्यूमन जू' के माध्यम से कहते हैं कि मनुष्य ने अपनी प्रवृत्तियों का विकास छोटे आदिम समूहों में रह कर किया। वह दायरा व्यापक था। जिसमें प्रकृति, नदी, पहाड़ सभी शामिल थे। आज मनुष्य और प्रकृति के बीच में उसी तरह से द्वंद्व चल रहा है जैसे मनोविज्ञान की भाषा में ईद और सुपर इगो के बीच है। वास्तव में धर्म की उत्पत्ति आरंभिक मानव समाज की आवश्यकता थी। धर्म सामाजिक एकता का एक उपादान है।

आस्ट्रिया के जैव विज्ञानी और एथनोलॉजिस्ट कोनार्ड लोरेंज कहते हैं कि संस्कृति वह प्रणाली है, जिसे मानव ने ऐतिहासिक रूप से सामाजिक मान्यता और रिवाज के तौर पर विकसित किया है। इसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित किया जाता है। उन्हें ही भावुक तौर पर मूल्य कहा जाता है। कोनार्ड एक 'उग्र उत्साह' का वर्णन करते हैं और उसी से नैतिक मूल्यों का विकास होता है। वही मूल्य दूसरों का दमन करने के लिए भी प्रेरित करते हैं। जीवविज्ञानी इस बात पर बहस करते हैं कि मनुष्य में परोपकारिता कहां से आई? वास्तव में यह प्राग ऐतिहासिक जिजीविषा है। यही प्राकृतिक चयन(नेचुरल सेलेक्सन) में मदद करती है। इसकी झलक मनुष्य ने प्रकृति के तमाम जीवों में देखी थी। पक्षियों में यह प्रवृत्ति होती है कि जो जोड़े संतानोत्पत्ति में लगे होते हैं उनको दूसरे पक्षी मदद करते हैं। उनकी सुरक्षा करते हैं। उनके भोजन लाने का इंतजाम करते हैं। बत्तखों में जो प्राणी अंडों को सेने का काम करता है उसकी रक्षा में दूसरे बत्तख तैनात रहते हैं।

लेखक यह मानता है कि बीसवीं सदी के अन्य सफल राजनीतिज्ञों की तुलना में गांधी एक विफल राजनीतिज्ञ हैं। उनके सामने भारत का विभाजन हुआ और लाखों लोग मारे गए। इसके बावजूद वे पैगंबरी के पथ से हटे नहीं और न ही उन्होंने संन्यास ग्रहण करके हिमालय की शरण ली।

जब पक्षी पैदा हो जाते हैं तो उनके चूजों की हिफाजत करने के लिए भी कम से कम दो या तीन बत्तखें तैयार रहती हैं। यही वह सुरक्षा की भावना है जो आगे चल कर परोपकारिता में विकसित होती है।

पुस्तक का एक अध्याय है नेक होने के खतरे(हैजार्ड आफ राइट्सनेस)। इस अध्याय में गांधी की अहिंसा और नैतिकता के विकास की तलाश की गई है और दशार्या गया है कि गांधी सदैव सही नहीं है। गांधी जब अपने नैतिक संसार का निर्माण करते हैं तो व्यावहारिक राजनीतिक जगत उनके आड़े आता है। अहिंसा की राह तलाश रहे गांधी अपने दक्षिण अप्रष्ठीका के दिनों में उस मार्ग पर

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 32

किताबनामा

दृढ़ नहीं हो पाए थे। इसलिए वे अंग्रेजों की ओर बेचारे जुलुओं पर थोपे गए युद्ध में अंग्रेजों की तरफ से मेडिकल सेवा करते हैं। फिर वे बोअर युद्ध में भी यही काम करते हैं और प्रथम विश्व युद्ध में भी लंदन में ब्रिटेन की तरफ से एक मेडिकल कोर बनाते हैं। लेकिन द्वितीय विश्व युद्ध तक आते आते गांधी कांग्रेस को पूरी तरह अहिंसक होने की सलाह देते हैं और युद्ध से अपने कदम पीछे खींच लेने के लिए कहते हैं।

सच्चिदा जी गांधी की पैगंबरी के भवन की एक एक ईंट को रखे जाते हुए देखने का प्रयास करते हैं। इसी के साथ वे निहत्थी पैगंबरी की चुनौतियों को भी पेश करते हैं। इसी बात को *राइज ऐंड फाल आफ थर्ड रीख* के लेखक और गांधी के जीवनीकार विलियम शीरर कुछ इस तरह से कहते हैः—गांधी, बुद्ध, ईसा मसीह और सुकरात की खूबी यह थी कि वे बड़ा से बड़ा काम सहज ढंग से कर लेते थे और अपने को सामान्य व्यक्ति ही मानते थे। लेकिन उनकी दिक्कत यहीं थी कि वे सामान्य आदमी से भी अपने स्तर पर उठने की अपेक्षा करते थे। वे समझते थे कि सामान्य व्यक्ति भी वही कर सकता है जो वे करते हैं। जो कि संभव नहीं है। क्योंकि सामान्य व्यक्ति अपने धर्म, नैतिकता के लिए मसीहा के बिना रह नहीं सकता लेकिन मसीहा के कठिन जीवन की तरह वह अपने जीवन को ढाल नहीं सकता।

यही कारण है कि मसीहा को कई बार अपने नियमों को लागू करने के लिए किसी दंड की व्यवस्था करनी होती है। गांधी वह दंड कई बार अपने आश्रमवासियों को भोजन न देकर और कई बार लड़कियों का सिर मुंडवा कर देते थे। लेकिन सबसे कठोर दंड वे स्वयं को देकर अपनी बात मनवाते थे। इसके लिए वे त्याग करने के साथ असाधारण कष्ट सहते थे। लंगोटी पहनना इसी उद्यम का एक हिस्सा था। स्वाद नियंत्रण भी वही था। गांधी धर्म, अध्यात्म, राजनीति, नैतिकता, सत्य, अहिंसा और आर्थिक स्थितियां सभी के द्वंद्व में बुरी तरह से उलझ कर मानव की समस्याओं का समाधान ढूंढते थे। लेकिन उनकी दिक्कत यही थी कि वे हर चीज का समाधान नैतिकता में ढूंढने की कोशिश करते थे। कई बार वे अपने आदर्शों को लेकर क्रूरता के हद तक प्रयोग करने लगते थे। इसी क्रम में उन्होंने अपने साबरमती के आश्रम में दर्द से कराहते एक बछड़े को जहर का इंजेक्शन देकर मरवा दिया था और कस्तूरबा को पेंसलीन का इंजेक्शन न दिलाकर मर जाने दिया था या फिर बड़े बेटे हरिलाल को पढ़ाई के लिए विदेश न भेज कर अपने से दूर कर दिया था। उनके ब्रह्मचर्य के प्रयोग ने भी स्त्री सहयोगियों के मनोविज्ञान पर तनावपूर्ण प्रभाव डाला था। उन्होंने जेपी और प्रभावती को बहन और भाई की तरह रहने पर मजबूर कर दिया था। पर निहत्थे पैगंबर की मुश्किल यही है कि वह अपने नियमों को इसी प्रकार से लागू कर सकता है।

आज मनुष्य और प्रकृति के बीच में उसी तरह से द्वंद्व चल रहा है जैसे मनोविज्ञान की भाषा में ईव और सुपर इगो के बीच है। वास्तव में धर्म की उत्पत्ति आरंभिक मानव समाज की आवश्यकता थी। धर्म सामाजिक एकता का एक उपादान है।

गांधी के लिए अहिंसा का अर्थ था सार्वभौमिक प्रेम। लेकिन यहां सवाल यह उठता है कि जो व्यक्ति शादी विवाह करके व्यक्तिगत प्रेम की गहराई में उतरता है वह क्या सार्वभौमिक प्रेम के कर्तव्य का निर्वाह कर सकता है? यहीं पर उनका सुझाव है कि वह क्या दंपत्ति शादी के बाद भाई बहन की तरह नहीं रह सकता है? अगर वह ऐसा करता है तो सार्वजनिक सेवा के लिए अपनी मानसिक बाधाओं को लांघ सकता है। क्योंकि अहिंसा का सिद्धांत यह कहता है कि इस विचार के मानने वाले को निजता की आशक्ति से मुक्त होना चाहिए। लेकिन सच्चिदा जी इस धारणा पर सवाल करते हुए कहते हैं कि निजी आशक्ति से दूर रहने वाला ही संपूर्ण मानवता से प्रेम करेगा, यह विचार दोषपूर्ण है। वास्तव में निजी आशक्ति अहंकार को समाप्त कर देती है और वह व्यक्ति संपर्ण मानवता के लिए अधिक सरोकार के साथ काम कर सकता है।

सच्चिदानंद सिन्हा गांधी के ब्रह्मचर्य की धारणा और उसके साथ जुड़े उनके प्रयोगों पर सवाल उठाते हैं और कहते हैं कि गांधी ऐसा करते हुए भारत के पौराणिक ग्रंथों को भूल जाते हैं जिनमें यह दशार्या गया है कि काम इच्छा को नियंत्रित करने में बड़े से बड़े ऋषि मुनि डगमगा गए हैं।

द *अनआर्म्ड प्रोफेट* कला और नैतिकता के द्वंद्व के प्रश्न को भी बहुत गंभीरता से उठाती है। वे लिखते हैं कि नैतिकता यह बताती है कि मनुष्य को कैसा होना चाहिए। जबकि कला यह बताती है कि मनुष्य कैसा है? इस बहस में एक ओर वे गांधी और टैगोर के बीच स्वदेशी पर चले संवाद को लाते हैं तो दूसरी ओर टीएस ईलियट और आईए रिचर्ड के बीच द *वेस्टलैंड* कविता पर चली बहस को लाते हैं। यहीं पर ईलियट कहते भी हैं कि ईसा मसीह ने जीवन की आवश्यकताओं को पवित्र निदेर्शों के ऊपर रखा था। तभी तो भूखा व्यक्ति अगर किसी के खेत की फसल की बालियां अनुमति के बिना ग्रहण करता है तो वे उसे अपराध नहीं मानते।

यहां पर उन्होंने गांधी और टैगोर के

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 33

बीच, चरखा, स्वदेशी और विदेशी कपड़ों की होली जलाए जाने वाली बहस को बहुत विस्तार से दिया है। टैगोर सवाल करते हैं कि क्या गांधी धार्मिक अभियान छोड़कर राजनीति में हिस्सा ले रहे हैं, क्योंकि गांधी कहा करते थे उनके जीवन का उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना है। इसका उत्तर गांधी कुछ इस प्रकार देते हैं कि जब राजनीति के सांप ने कुंडली की तरह से हमें घेर रखा है तो हमें उससे निपटना तो पड़ेगा ही। उन्होंने कहा कि मैं वास्तव में धर्म को राजनीति में प्रवेश दिलवा रहा हूं। टैगोर कहते हैं कि गांधी नैतिक बल को भौतिक बल में परिवर्तित कर रहे हैं जो ठीक नहीं है। इससे तो भीड़तंत्र को बढ़ावा मिलेगा। टैगोर यह भी कहते हैं कि गांधी पश्चिमी सभ्यता का विरोध करके ठीक नहीं कर रहे हैं। वे कठघरे बना रहे हैं, क्योंकि सुबह जब पक्षी उठता हैतो खुले आसमान में महज भोजन के लिए नहीं बल्कि मुक्ति के लिए भी उड़ता है। टैगोर उसकी उड़ान में एक सौंदर्य देखते हैं। यहां पर गांधी भूख और गरीबी का तर्क देते हैं। वे कहते हैं कि लोगों को काम चाहिए। वे कहते हैं मैं भविष्य से अधिक आज की बात करता हूं। यहां पर गांधी दूसरे पैगंबरों से भिन्न हैं। उनके लिए मानव सेवा ही मुक्ति का मार्ग है। ईश्वर इन्हीं कामों में प्रकट होता है।

सच्चिदाजी लिखते हैं कि दार्शनिक लोग पैगंबरों को तब अपनाते हैं जब जनता उन्हें बड़े पैमाने पर अपना लेती है। जनता पैगंबरों के बिना नहीं रह सकती और वह पैगंबरों के साथ भी नहीं रह पाती। क्योंकि उनका जीवन मानव क्षमता के बाहर है। इसका परिणाम यह होता है कि पैगंबरों को या तो पूजा जाता है या फिर उन्हें मार दिया जाता है। इसलिए उपभोक्तावाद से ग्रसित संसार पैगंबरों को तभी मानेगा जब वह गंभीर संकट में आ जाएगा।

पुस्तक कहती है कि गांधी एक आयामी व्यक्तित्व थे और उनके व्यक्तित्व का सारा आयाम नैतिकता पर केंद्रित था। वह युरोप के उपयोगितावाद के दर्शन से भिन्न था।

वे लिखते हैं कि गांधी और ईसा मसीह में अद्भुत समानताएं हैं। वे समानताएं नैतिकता के कारण हैं। हालांकि उनके बीच में दो हजार साल का अंतर है और कोई कह सकता है कि इन दो हजार सालों में स्थितियां बहुत कुछ बदल गई हैं। इस बहाने लेखक ने ग्रीक-रोमन सभ्यता के भीतर चलने वाली बहसों और गांधी के समक्ष दक्षिण अफ्रीका में दरपेश नैतिक और दार्शनिक चुनौतियों का जिक्र किया है।

अहिंसा का सिद्धांत यह कहता है कि इस विचार के मानने वाले को निजता की आशक्ति से मुक्त होना चाहिए। लेकिन सच्चिदा जी इस धारणा पर सवाल करते हुए कहते हैं कि निजी आशक्ति से दूर रहने वाला ही संपूर्ण मानवता से प्रेम करेगा, यह विचार दोषपूर्ण है।

सार्वभौमिक नैतिकता की तलाश वाला अध्याय भी हिंद स्वराज, तालस्ताय, रस्किन, अरनाल्ड के बहाने गांधी के विचार जगत में उठने वाली लहरों के प्रवाह को बांधने की कोशिश करता है।एक रोचक प्रसंग है गांधी और जी रामचंद्र राव यानी गोरा के बीच की बहस का। गोरा नास्तिक है और गांधी ऐसे आस्तिक हैं, जो हर बात में ईश्वर का नाम लेते हैं। गांधी कहते हैं कि वह सहमनापन जो अपने भाई के दुःख से आप को दुखी करता है वह अपने में ईश्वरत्व है। गांधी गोरा से कहते हैं कि मैं नहीं कह सकता कि मेरी आस्तिकता सही है न ही आप की नास्तिकता गलत है। मैं जीवन में कई बार बदला हूं। मैं सही हूं या आप सही हैं यह तो परिणाम ही बताएगा। इसलिए आप अपने मार्ग पर चलें और मैं अपने मार्ग पर। मैं आप की मदद करूंगा हालांकि मेरा और आप का तरीका अलग अलग है।

गांधी की खूबी है कि वे पैगंबरी नैतिकता रखते हुए भी तर्कवादी हैं। क्योंकि उनका समय वही है। इसीलिए उनके करीब एक ओर मार्क्सवादी जेपी आए तो दूसरी ओर नास्तिक गोरा आए। लेकिन आधुनिक समय की त्रासदी यह है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने मानव की विनाशकारी क्षमता को बहुत बढ़ा दिया है। अगर उसके भीतर की कुछ पाशविक प्रवृत्तियों पर अंकुश नहीं लगाया गया तो इस सभ्यता का अंत भयावह विनाश में होगा। इसलिए मानव के दृष्टिकोण और व्यवहार में संपूर्ण बदलाव की आवश्यकता है। गांधी इसी काम के लिए समर्पित थे। कोनार्ड लोरेंज कहते हैं कि मनुष्य को जैसा हम जानते हैं कि कपि और मानव के बीच की अवस्था में है। गांधी नामक विचार उसे मनुष्य बनाने में लगा है। इस तरह पैगंबर आदर्श मनुष्य पैदा करते हैं। पैगंबर अपने जीवन और शिक्षाओं से मानव और मानवता को परिभाषित करते हैं। गांधी जैसे पैगंबर बढ़ई की तरह अपने बंसुला और रुखान से छीलकर मानव की उस पशुता वाली प्रवृत्तियों को अलग करने और सभ्यता को मानवीय बनाने में लगे हैं।

सच्चिदानंद सिन्हा अपने लेखन और दार्शनिक चिंतन के माध्यम से वही प्रयास कर गए हैं जो गांधी अपने जीवन और राजनीतिक कर्म के माध्यम से कर गए हैं। सच्चिदा जी का सादगी पूर्ण जीवन इन्हीं विचारों की तलाश को समर्पित रहा है। इसलिए यह पुस्तक और भी गहरा प्रभाव पैदा करती है। ■

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 34

विचार और विरासत

शर्मिला जालान

अपने जीवन के 19 नवंबर 2025 को 94वें वर्ष में प्रवेश कर चुके प्रखर समाजवादी विचारक सच्चिदानन्द सिन्हा का देहावसान हो गया। एक दीर्घ, साधनापूर्ण और अर्थवान जीवन-यात्रा का विराम हुआ।

सच्चिदानन्द सिन्हा की रचनावली, जिसे अरविन्द मोहन जी ने तैयार की है, उसमें संग्रहित समग्र लेखन पठनीय और संग्रहणीय है। सच्चिदानन्द सिन्हा हिंदी के उन विरल विचारकों में थे, जिनका जीवन राजनीतिक सक्रियता, श्रमिक संघर्ष और गहन बौद्धिक अन्वेषण से निर्मित हुआ। समाजवादी आंदोलन तथा गांधी-लोहिया- जयप्रकाश की वैचारिक परंपरा और जमीनी अनुभवों से उपजा उनका लेखन राजनीति, समाज, संस्कृति और विचार के अनेक आयामों को समेटे हुए है।

मैं आगे उनकी रचनावली के पहले खंड के दो अंशों– 'एक लेखक की ओर' से और दूसरा 'संपादक की ओर से' का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत कर रही हूँ, ताकि पाठकों की रुचि इस महत्त्वपूर्ण रचनाकार को पढ़ने में जागे। मेरा उद्देश्य कोई आलोचनात्मक या अकादमिक विवेचन करना नहीं है। मैं एक कथाकार हूँ और राजनीति या समाजवादी विचारधारा का मेरा कोई विधिवत अध्ययन भी नहीं है; न ही मैं स्वयं को इतना सक्षम मानती हूँ कि ऐसे बड़े लेखक को पूरी तरह समझ सकूँ। फिर भी, एक पाठक की हैसियत से यह छोटा-सा प्रयास कर रही हूँ कि अन्य पाठकों की जिज्ञासा इस रचनावली की ओर मुड़े और वे स्वयं इस विचार-संपदा से संवाद कर सकें।

'लेखक की ओर' से सच्चिदानन्द सिन्हा अपने राजनीतिक और बौद्धिक जीवन की शुरुआत को आत्मकथात्मक रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनकी राजनीतिक चेतना बहुत आरम्भ से ही आकार लेने लगी थी। 1932 में नाना रामचरित्तर सिंह की गिरफ्तारी और

रचनावली का वैचारिक ढांचा इसके आठ प्रमुख खंडों में विकसित होता है। उनका यह विश्वास रहा है कि विज्ञान और कला– दोनों ही विखंडित संसार को अर्थपूर्ण संरचना देने के प्रयास हैं; विज्ञान वस्तुपरक विश्लेषण के माध्यम से और कला भावनात्मक सृजन के द्वारा

1942 के राष्ट्रीय आन्दोलन ने उन्हें गहराई से प्रभावित किया। आगे चलकर भूमिगत आन्दोलन के दौरान जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया और अरुणा आसफ अली जैसे नेताओं से उन्हें प्रेरणा मिली। छात्र जीवन में समाजवादी आन्दोलन से जुड़ते हुए उन्होंने सक्रिय राजनीति को अपना जीवन-पथ बनाया, भले ही इसकी कीमत औपचारिक शिक्षा की उपेक्षा के रूप में चुकानी पड़ी।

यह अंश उनके राजनीतिक संघर्ष, श्रमिक जीवन और बौद्धिक विकास की निरन्तर यात्रा को सामने लाता है। यरगडा, सिरका, भुलकुंडा और रेलीगढ़ा जैसे खदान क्षेत्रों में मजदूर संगठनों के साथ काम करते हुए उन्होंने जमीनी अनुभव अर्जित किए। पत्रकारिता को उन्होंने आन्दोलन का एक माध्यम माना और इसी उद्देश्य से बम्बई जाकर अध्ययन किया। वहाँ मिल मजदूर सभा में पूर्णकालिक कार्यकर्ता के रूप में कार्य किया। समाजवादी पार्टी के भीतर चले वैचारिक संघर्षों, डॉ. अम्बेडकर के चुनाव में सहयोग, तथा रेलवे और डॉक मजदूर के रूप में श्रम करने के अनुभवों के बाद वे मणिका (मुजफ्फरपुर) आए, जो आगे चलकर उनका स्थायी निवास बना। दिल्ली में लंबे अध्ययन और लेखन काल के दौरान उन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखीं। 1975 के बाद मणिका लौटने पर भी उनका लेखन निर्बाध रूप से जारी रहा, और वही लेखन इस रचनावली का आधार बना।

रचनावली का वैचारिक ढाँचा इसके आठ प्रमुख खंडों में विकसित होता है। उनका यह विश्वास रहा है कि विज्ञान और कला–दोनों ही विखंडित संसार को अर्थपूर्ण संरचना देने के प्रयास हैं; विज्ञान वस्तुपरक विश्लेषण के माध्यम से और कला भावनात्मक सृजन के द्वारा। इसी प्रकार समाजवाद औद्योगिक क्रान्ति से उपजे सामाजिक विघटन के बीच मनुष्य को बौद्धिक और नैतिक संतुलन देने का प्रयास है। पश्चिम में समाजवाद के फेबियन, मार्क्सवादी और अराजकवादी रूप विकसित हुए, जबकि भारत में महात्मा गांधी के अहिंसक प्रयोगों ने समाजवाद को एक नई दिशा दी।

रचनावली के दूसरे खंड में स्वतंत्रता, राष्ट्रीयता, किसान और शहरी गरीबी जैसे प्रश्नों पर विचार किया गया है, जिन्हें राममनोहर लोहिया की लघु तकनीक और स्वायत्तता की अवधारणा

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 35

से जोड़ा गया है। तीसरे खंड में गांधी, लोहिया, जयप्रकाश नारायण और नक्सलवाद पर आलोचनात्मक विचार प्रस्तुत हैं, जहाँ गांधीवादी विकल्प को स्पष्ट रूप से रेखांकित किया गया है। चौथा खंड आपातकाल, पंजाब संकट और राजनीतिक गठबन्धनों का विश्लेषण करता है। पाँचवें खंड में जाति, साम्प्रदायिकता और सामाजिक संरचना की वैज्ञानिक समीक्षा प्रस्तुत की गई है। यह पुस्तक समाज, इतिहास और अर्थव्यवस्था के जटिल प्रश्नों को विभिन्न खंडों में समझाती है। प्रारंभिक खंड जाति व्यवस्था को मानव समाज का कृत्रिम विभाजन बताते हैं और यह स्थापित करते हैं कि सभी मनुष्यों की उत्पत्ति मूलतः एक ही है। जाति शुद्धता और मूल आधारित सिद्धान्त को मिथक कहा गया है तथा साम्प्रदायिकता को भावनात्मक उभार मानकर उसके तार्किक आधार को नकारा गया है।

छठा खंड पुराने और नये समाजवाद की विशेषताओं का विश्लेषण करता है। इसमें बताया गया है कि केवल सत्ता प्राप्त करना समाजवाद नहीं ला सकता, क्योंकि सत्ता में हिंसा, केन्द्रीकरण और असमानता के तत्व मौजूद रहते हैं। समतामूलक समाज के लिए विकेन्द्रीकृत और छोटी इकाइयों पर आधारित व्यवस्था आवश्यक मानी गई है।

सातवाँ खंड उदारीकरण और वैश्वीकरण की आलोचना करता है। इसमें पूँजीवादी व्यवस्था को संसाधनों के दोहन, उपभोक्तावाद और आर्थिक केन्द्रीकरण से जोड़ा गया है। साथ ही पर्यावरण संकट से बचने के लिए जरूरतों को सीमित करने पर जोर दिया गया है।

अन्तिम खंड आन्तरिक उपनिवेशीकरण, क्षेत्रीय शोषण और मानवीय संवेदना—तीनों को साथ लेकर चलता है। इसमें बताया गया है कि वैश्विक स्तर पर जिस तरह विकसित देशों ने तीसरी दुनिया के संसाधनों का उपयोग करके प्रगति की, उसी तरह स्वतंत्रता के बाद देशों के भीतर भी कुछ क्षेत्रों को विकास के नाम पर शोषण का केन्द्र बनाया गया। भारत में बिहार और झारखंड जैसे प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध क्षेत्रों से खनिज, वन और श्रम का व्यापक उपयोग हुआ, लेकिन स्थानीय समाज अपेक्षित विकास से वंचित रहा। इसके कारण क्षेत्रीय असमानता और सामाजिक अन्याय बढ़ा।

सच्चिदानन्द सिन्हा की रचनावली, जिसे अरविन्द मोहन जी ने तैयार की है, उसमें संग्रहित समग्र लेखन पठनीय और संग्रहणीय है। सच्चिदानन्द सिन्हा हिंदी के उन विरल विचारकों में थे, जिनका जीवन राजनीतिक सक्रियता, श्रमिक संघर्ष और गहन बौद्धिक अन्वेषण से निर्मित हुआ

इसी खंड में बच्चों के लिए लिखी गई कविताओं की पुस्तक 'बच्चों इनसे सीखो हरदम' का उल्लेख है, जिसमें लगभग 30 पक्षियों के माध्यम से बच्चों को नैतिक शिक्षा, प्रकृति प्रेम, अनुशासन और सह-अस्तित्व का संदेश दिया गया है। यह भविष्य की पीढ़ी में मानवीय मूल्यों को स्थापित करने का प्रयास है।

अंत में सचिदा जी स्पष्ट करते हैं कि इन सभी पुस्तकों की रचना समाजवादी आंदोलन के दौरान उभरी समस्याओं और उनके समाधान खोजने के प्रयासों से प्रेरित है। उनका उद्देश्य केवल समाज को सही दिशा में सोचने का आधार देना रहा। वे अपनी रचनाओं को एक साथ देखकर संतोष व्यक्त करते हैं और इसे प्रकाशक व संपादक के सामूहिक प्रयास का परिणाम मानते हैं।

अरविंद मोहन अपने संपादकीय में 'सच्चिदानन्द सिन्हा रचनावली' के प्रकाशन को हिन्दी बौद्धिक जगत के लिए एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि बताते हैं और इसके संपादन को एक गंभीर बौद्धिक दायित्व के रूप में रेखांकित करते हैं। उनके अनुसार, सच्चिदा जी समाज विज्ञान के लगभग सभी क्षेत्रों राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास, समाजशास्त्र और नृविज्ञान के साथ-साथ दर्शन, संस्कृति, मनोविज्ञान, सौन्दर्यशास्त्र और धर्म में भी गहरी पकड़ रखने वाले असाधारण विद्वान थे। वे केवल अध्ययनशील लेखक नहीं, बल्कि सिद्धांत और सामाजिक-राजनीतिक अनुभव के द्वन्द्व से जूझने वाले सक्रिय विचारक थे।

जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, मार्क्सवाद और रोजा लक्जमबर्ग से वैचारिक प्रेरणा लेते हुए उन्होंने मजदूरी, संगठन, भूमिगत संघर्ष और आपातकाल जैसे दौरों में सक्रिय भूमिका निभाई। शहरी समझौतों से दूरी बनाकर उन्होंने गाँव में सादा, गांधीवादी जीवन चुना और अपने विचारों को व्यवहार में उतारा जिसमें पर्यावरण-चेतना भी स्वाभाविक रूप से शामिल थी। रचनावली में संकलित उनका लेखन अकादमिक, राजनीतिक, प्रशिक्षणात्मक, व्याख्यानात्मक और पत्रकारितात्मक रूपों के मेल से बनी एक सुसंगत, गंभीर और स्वतंत्र बौद्धिक परंपरा को सामने लाता है।

भूमंडलीकरण पर उन्होंने कोई एक बड़ी पुस्तक भले न लिखी हो, लेकिन उनके निरंतर लेखन में इसकी तीखी आलोचना के साथ-साथ ठोस वैकल्पिक दृष्टियाँ मौजूद हैं, जिन्हें रचनावली के एक स्वतंत्र खंड में संकलित किया गया

किताबनामा

है। उनके लिए विविधता का सम्मान, केन्द्रीकरण का विरोध और टिकाऊ विकास मूल मूल्य रहे, जो गांधी-लोहिया-जेपी परंपरा से आगे बढ़ते हुए स्पष्ट विकल्प प्रस्तुत करते हैं। समता, स्वतंत्रता, लोकतंत्र, मानवाधिकार, अहिंसा और पर्यावरण-चिंता उनके समूचे लेखन की वैचारिक धुरी हैं। यह लेखन श्रमसाध्य, गैर-व्यावसायिक और वैचारिक स्पष्टता की बेचैनी से प्रेरित दिखाई देता है।

यह रचनावली उस बौद्धिक व्यक्तित्व को सामने लाती है, जो शास्त्रीय ज्ञान और लोक-अनुभव के गहरे मेल से निर्मित हुआ है। यात्राओं, संवादों और प्रत्यक्ष अनुभवों से उपजा उनका लेखन–विशेषकर जाति-व्यवस्था पर अकादमिक समाजशास्त्र से अलग, मौलिक और साहसिक दृष्टि प्रदान करता है। बिना किसी डिग्री, अनुदान या संस्थागत समर्थन के उन्होंने अपार अध्ययन किया और बहुभाषी बौद्धिक संवाद स्थापित किया। राजनीति, समाज, कला और संस्कृति पर उनका चिंतन गांधी-लोहिया की वैचारिक धारा को आगे बढ़ाता है। पद, पुरस्कार और प्रचार से उनकी दूरी उनकी वैचारिक स्वतंत्रता और नैतिक दृढ़ता को और स्पष्ट करती है।

समकालीन साहित्य, पत्रकारिता और कला-जगत से भी उनका रिश्ता गहरा रहा। रघुवीर सहाय द्वारा पुस्तक समर्पण, निर्मल वर्मा से वैचारिक असहमति के बावजूद खुला संवाद, तथा प्रयाग शुक्ल, गिरिधर राठी, अशोक सेकसरिया, महेन्द्र भल्ला, अनिल साहरी, राजकिशोर, बनवारी, सुरेन्द्र प्रताप सिंह और ओम थानवी जैसे लेखकों-पत्रकारों से निरंतर संपर्क उनके बौद्धिक संसार की व्यापकता को रेखांकित करता है। कला के क्षेत्र में रामकुमार, जगदीश स्वामीनाथन और हिम्मत शाह के साथ संवाद विशेष

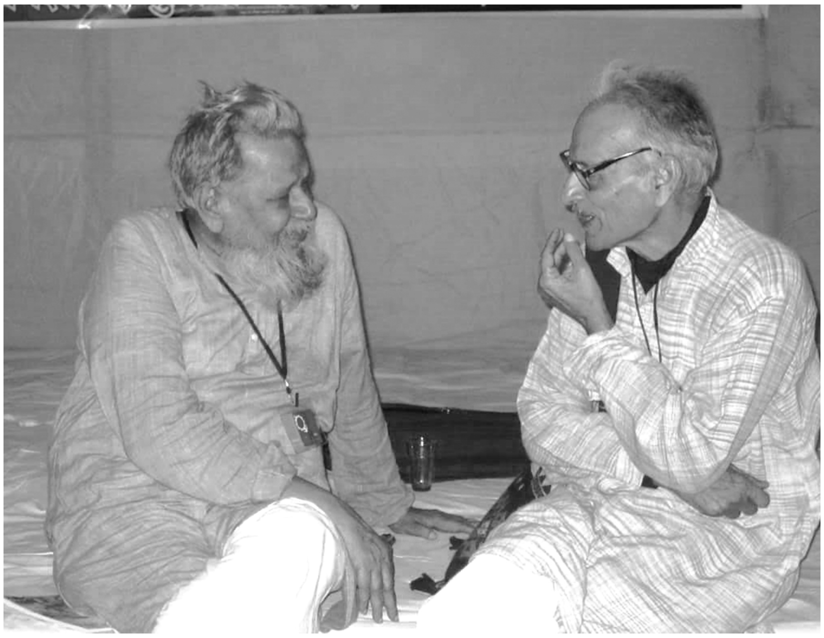

अशोक सेकसरिया जी के साथ सच्चिदा जी

महत्त्व रखता है। विशेष रूप से कृष्ण खन्ना के आग्रह पर ललित कला अकादमी के लिए लिखी गई पुस्तक 'अरूप और आकार' इस बात का प्रमाण है कि कला और संस्कृति को उन्होंने उतनी ही गंभीरता से लिया, जितनी राजनीति और समाज को।

इस खंड में कला, संस्कृति और जीवन-बोध से संबंधित उनका महत्त्वपूर्ण लेखन संकलित है। इसमें तीन प्रमुख पुस्तकें, अनेक लेख और महत्त्वपूर्ण भाषण शामिल हैं, जो कला और संस्कृति को जीवन के केन्द्र में स्थापित करते हैं।

ललित कला अकादमी द्वारा प्रकाशित 'केऑस एंड क्रिएशन' जिसका हिन्दी अनुवाद 'अरूप और आकार' है उनकी सबसे महत्त्वपूर्ण कृतियों में मानी जाती है। इसमें वे यह प्रतिपादित करते हैं कि जैसे विज्ञान और तकनीक मनुष्य के जीवन के लिए आवश्यक हैं, वैसे ही कला भी अनिवार्य है। कला के बिना न तो जीवन आगे बढ़ सकता है और न ही उसका संतुलन बना रह सकता है। आदिम मानव की भित्ति-चित्रकारी से लेकर आधुनिक चित्रकला तक की यात्रा प्रस्तुत करते हुए वे भारतीय कला की उस परंपरा को रेखांकित करते हैं जिसमें दास-श्रम के बजाय आनंद और समर्पण से सृजन किया गया।

उनकी दूसरी चर्चित पुस्तक 'संस्कृति विमर्श' संस्कृति को केवल जीवन-शैली या बाहरी पहचान न मानकर मनुष्य की हिंसक प्रवृत्तियों पर नियंत्रण रखने वाला एक जैविक-व्यावहारिक उपाय बताती है। वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक अध्ययनों के आधार पर यह दिखाया गया है कि संस्कृति ही मनुष्य को आत्म-संयम सिखाती है। 'संस्कृति और समाजवाद' कला, संस्कृति और समाज के बीच द्विपक्षीय संबंधों की पड़ताल करते हुए राजनीति और सांस्कृतिक मूल्यों के संतुलन पर जोर देती है। इन रचनाओं में भारतीयता, व्यक्ति-स्वातंत्र्य और विकेन्द्रीकरण उनकी केन्द्रीय वैचारिक धुरी के रूप में उभरते हैं। ■

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 37

भूमण्डलीकरण की चुनौतियां

सुनील

एक तरह से हम बदलते हुए लेकिन परम्पराबद्ध समाज और आधुनिकतावादी विवेक-चेतना के दौर से निकल कर इक्कीसवीं सदी के उत्तर-आधुनिक दौर में इस पुस्तक के साथ प्रवेश कर रहे हैं। यह कम दिलचस्प नहीं है कि *भूमण्डलीकरण की चुनौतियां* के लेखक ऐसे लेखक हैं जो अकादमिक शिक्षा-दीक्षा, अकादमिक या साहित्यिक-सांस्कृतिक अलंकरणों और पुरस्कारों से कोसों दूर रहने वाले मौलिक चिन्तक हैं। मजदूर आन्दोलनों, समाजवादी आन्दोलनों और जनतान्त्रिक मूल्यों के आन्दोलनों से जुड़े, लगभग 75 वर्ष आयु के सच्चिदानन्द सिन्हा खुद दुनियावी सफलताओं, प्रलोभनों, जीवनशैली और ऐशो-आराम से विरक्त हैं। वह केवल उन ज्वलन्त प्रश्नों और समस्याओं पर केन्द्रित है, जो पिछले पचासेक बरसों में भारत के और दुनिया के सामने उठती रही हैं ।

एक तरह से भूमण्डलीकरण का प्रश्न उन सभी प्रश्नों को भी समेटे हुए है, जो हमारे निजी जीवन, सामाजिक-राजनीतिक आचरण और नैतिक-सांस्कृतिक मूल्यों की दुनिया में उठ रहे हैं। हाल ही में कानकून सम्मेलन में भारत और चीन सहित दुनिया के अधिकांश विकासशील या अर्धविकसित देशों ने भूमण्डलीकरण की कुछ बुनियादी नीतियों पर गहरा प्रश्नचिह्न लगाया है। टीवी-मोबाइल फोन - केबल टीवी आदि संचार साधनों, नीम और हल्दी के पेटेन्टों, बी.टी. कॉटन आदि नये संशोधित बीजों, दुनियाभर से आयातित उपभोक्ता सामग्री आदि के प्रत्यक्ष प्रतीकों के माध्यम से आज हर आम-व-खास आदमी भूमण्डलीकरण नाम की एक नयी वस्तु से परिचित हो चुका है। उद्योग-व्यापार, शिक्षा-संचार, प्रशासन और अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों की दुनिया के साथ जिन समर्थ नागरिकों का सीधा सम्पर्क है, वे लोग भूमण्डलीकरण के दाँवपेंच कुछ ज्यादा नजदीक से जानते हैं।

लेकिन यह कहना गलत नहीं होगा कि हमारा मध्य वर्ग, उच्च मध्यवर्ग और सम्पन्न-समर्थ राजनीतिक समुदाय भूमण्डलीकरण की चकाचौंध पर मुग्ध और मोहित है। अमेरिका, यूरोप और जापान जैसे मुट्ठीभर विकसित और धनी देशों की सरकारें और जनता दोनों ही भूमण्डलीकरण की आँधी से मालामाल हो रही हैं तथा आगे भी होंगी, इसमें सन्देह नहीं है। उन की आपसी प्रतिस्पर्धा से भले ही कुछ रुकावटें आयें, पर यह नया नीति विधान मूलतः उन्हीं देशों की पूँजी, टेक्नोलॉजी और व्यापारी - औद्योगिक वर्ग के विस्तार-प्रसार के लिये है।

दूसरी ओर, भारत जैसे गरीब देश, जो काफी कुछ आधुनिक उद्योग-धन्धों के बावजूद अविकसित ही हैं, घाटे और निरन्तर घाटे की स्थिति में हैं। भारत में पिछले 13-14 बरसों से इन नयी नीतियों के तहत बड़े-बड़े परिवर्तन हुए हैं- जिनसे देश की शायद 10-15 प्रतिशत, अपेक्षाकृत सम्पन्न आबादी अवश्य लाभान्वित हुई है- लेकिन बहुसंख्यक जनता के सामने नयी-नयी कठिनाइयाँ दरपेश हैं।

सच्चिदानन्द सिन्हा ने इस पुस्तक में भूमण्डलीकरण के मूल्यबोध और तकनीक, बाजारवाद और सांस्कृतिक संकट, आर्थिक मन्दी और स्वावलम्बन, भूमण्डलीकरण से पैदा विकृतियाँ और अलगाव, आतंक, बर्बरता, हिंसा जैसे शीर्षकों के तहत, नयी नीतियों के कई रेशे तार-तार किये हैं। आधुनिक होते जाते इस पूरे भूमण्डल का यह दौर तरह-तरह के विरोध, प्रतिरोध और प्रतिसंघर्ष को भी जन्म दे रहा है। हमारे ही देश में, 'स्वदेशी' का नारा फिर से उठ खड़ा हुआ है।

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि इतिहास और विकास के जिस दौर में हम आज हैं, उसमें कोई भी देश या भूभाग दूसरे तमाम देशों के साथ सम्बन्ध रखे बगैर जी नहीं सकता। फिर भी यह सवाल बराबर बना रहेगा कि भूमण्डलीकरण में सारे देश एक-दूसरे के साथ बराबरी का रिश्ता रखेंगे, या कि मालिक और गुलाम का। हर देश की अपनी पहचान उसकी अपनी भाषा, संस्कृति, धर्म, सामाजिक पारिवारिक सम्बन्ध - जाल, आचार-विचार आदि से होती है। इसमें शक नहीं कि ये सभी तत्व बनते बिगड़ते-सुधरते, बदलते रहते हैं। लेकिन बदलाव कैसा, कब, कितना हो? देशों की अपनी सम्प्रभुता कितनी बचे और कितनी छोड़ दी जाये ये तथा ऐसे अनेक प्रश्न हैं, जिनसे आज सारा संसार दो-दो हाथ कर रहा है।

सच्चिदानन्द सिन्हा केवल आलोचना और तर्क-वितर्क नहीं करते- अन्ततः वे एक अत्यन्त साहसिक विकल्प भी सुझाते हैं। यह विकल्प टेकनॉलॉजी के समुचित सद्‌पयोग और स्थानीय आवश्यकताओं, क्षमताओं और आकांक्षाओं को ध्यान में रखकर सुलझाया गया विकल्प है। मनुष्य अपनी उद्दाम इच्छाओं, लोभ और स्वार्थपरता पर लगाम लगाकर, उपभोक्तावाद के परम आर्कषक लेकिन बहुजनों को अप्राप्य आर्कषण पर काबू रखते हुए, एक नया यूटोपिया क्यों न गढ़े? सच्चिदानन्द सिन्हा बताते हैं कि ऐसा यूटोपिया यानी आदर्शलोक अप्राप्य हो तब भी उस दिशा में बढ़ना होगा। ■

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 38

कुछेक पत्र

सच्चिदा जी हजारों लोगों से संवाद चिट्ठियों के जरिये भी बनाते थे। उनकी चिट्ठियां भी एक बड़े संकलन का रूप ले सकती हैं, लेकिन उपलब्ध नहीं हो सकीं। यहां जो कुछेक चिट्ठियां मिलीं, उन्हें ही दिया गया है

सच्चिदा जी के पत्र सुनील को

प्रिय सुनील जी,

आपके दोनों पत्र मुझे मिले, लेकिन तब मैं ऐसी स्थिति में नहीं था कि आज के पत्र का जबाब दे पाता। मैं एक कार्यक्रम के सिलसिले में बक्सर और रोहतास गया था। पर वहीं मुझे टाइफायड हो गया। चार रोज तक तो यह समझकर कि धूप, थकान वगैरह से बुखार हो गया होगा। कार्यक्रम किसी तरह चलता रहा, लेकिन 12.8.2004 को मेरी कमजोरी इतनी बढ़ गयी कि मैंने शिवपूजन जी से आग्रह किया कि वे मुझे वापस जाने दें। संयोगवश उसी दिन कार्यक्रम का आखिरी दिन भी था, जिसमें मैं शामिल नहीं हो सका। शिवपूजन जी के भानजे ने मुझे पटना तक लाकर मुजफ्फरपुर के बस में बैठा दिया। यहां आने पर टाइफायड का इलाज शुरू हुआ, लेकिन सप्ताह-सप्ताह करके दो कोर्स के पूरा होने पर दवा बंद करने पर फिर बुखार शुरू हो जाता था। 31 अगस्त से बुखार तो खत्म हुआ, लेकिन डाक्टर की राय थी कि दवा जारी रखा जाय। इस तरह पहले क्लोरोमाइसिटिन के तीन कैप्सूल, फिर दो कैप्सूल और फिर अब एक कैप्सूल प्रतिदिन के हिसाब से दवा खा रहा हूं और उसके साथ दवा के दुष्प्रभाव को कम करने की कुछ और दवाएं भी खा रहा हूं। खाने-पीने पर काफी प्रतिबंध है। इससे कमजोरी बहुत ज्यादा हो गयी है। सप्ताह भर में दवा का अन्तिम कोर्स खत्म हो जायेगा। कमजोरी कब तक बनी रहेगी, कहना मुश्किल है। लेकिन अब घर के भीतर चलता-फिरता हूं, हालांकि चलने में पैरों में थरथराहट बनी रहती है।

इधर अफलातून का *कोक पेप्सी की लूट और पानी की जंग* पुस्तक देखने को मिली। पुस्तक समस्या के सभी पहलू पर समग्रता से इतनी रोशनी डालती है कि इसे वर्ष का एक महत्वपूर्ण प्रकाशन माना जाना चाहिए। संयुक्त संसदीय समिति की रपट का सार संक्षेप ने इसे एक तरह से पूरी तरह तटस्थ वैज्ञानिक विश्लेषण का दर्जा दे दिया है। लेखों का अनुवाद भी बहुत अच्छा है। अगर इसका प्रचार-प्रसार हो सके तो लोगों को प्रशिक्षित करने में इसका बहुत बड़ा योगदान होगा।

रोजा लक्जमबर्ग की पुस्तक के अंश के अनुवाद के छापने की बजाय अब मैं दूसरा लिखने की सोच रहा हूं। मैंने अनुभव किया है कि कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो में पूंजीवाद का जो रूप प्रस्तुत किया गया है, वह बहुत ही आशावादी है और विकास की एक सुनहरी तस्वीर प्रस्तुत की गई है, जहां से क्रांति के लिए संक्रमण आसान होगा।

दरअसल उस समय तक मार्क्स ने तो पूंजीवाद का अध्ययन किया ही नहीं था। सिर्फ जर्मन आइडियोलाजी आदि में कुछ रूमानी विचारों के आधार पर द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया से पूंजीवाद से समाजवाद में संक्रमण की कल्पना की थी। जब पूंजीवाद का वास्तविक तथ्यपरक और विश्लेषणात्मक अध्ययन पूँजी में करता है तो शुरू से इसका घिनौना रूप सामने आता है, जिसका कुछ आभास प्रथम खण्ड में मिलता है। बाद में द्वितीय खण्ड से जो अंतरविरोध दिखाई देता है, वह रोजा लक्जम वर्ग के अध्ययन में उभरकर सामने आता है। मार्क्स तो सिर्फ पहला खण्ड ही अपने जीवन काल में पूरी तरह समाप्त कर पाया था। जो अध्ययन की दिशा है, वह बतलाता है कि पूंजीवाद समाज के विकास को उच्चस्तर पर ले जाने में शुरू से ही अक्षम था और बाद के अनुभवों से जैसा लगता है, यह तो संसार को सर्वनाश के कगार पर ले जाने वाला है। इन सबके आधार पर मैंने 'पूंजी का अंतिम अध्याय' के नाम से एक छोटी पुस्तक लिखने की योजना बनायी है, जिसमें यह बतलाना है कि अगर मार्क्स ने पूंजी का अंतिम अध्याय लिखा होता तो कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो के आशावाद की जगह घोर निराशावादी नतीजों पर पहुंचता, जो पूंजीवाद की हकीकत है।

अगर संभव हो तो रोजा लक्जमबर्ग वाली पुस्तक किसी से या डाक से भिजवा दीजियेगा फिर स्वस्थ होने पर अगर संभव हुआ तो इसी दिशा में लिखूंगा। शायद इस तरह का मेरा विश्लेषणात्मक अध्ययन का भी यह अंतिम ही प्रयास होगा। कोई बड़े पुस्तक की योजना नहीं है। आशा है आप स्मिता, बच्चे भवेश आदि सानंद से होंगे। ■

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 39

सच्चिदा जी के पत्र शर्मिला जालान को

प्रिय शर्मिला जी,

मैं अपनी सबसे छोटी बहन से मिलने रांची चला गया था। वहां से लौटने पर आपका पत्र मिला। अन्तदेर्शीय वास्तव में एक सीमा कुछ कहने पर लगा देता है। यह अच्छा ही है क्योंकि अगर सब-कुछ कहा जाने लगे तो आप धीरज खो देंगी। आपने पूर्णिमा का ओल्ड होम में होने वाले सत्कार में एक बुनियादी मनोवैज्ञानिक सच्चाई को उद्घाटित किया है। बूढ़े लोग कम उम्र के लोगों से अपनी बात कहने और सानिध्य स्थापित करने में अत्यधिक आनन्द का अनुभव करते हैं। अस्त होते जीवन में उगते सूरज का प्रकाश पाने को लालायित रहते हैं। अतीत की बात करने में कुछ क्षणों के लिए अपने पुराने दिनों में लौट आने का अनुभव करते हैं। लेकिन नयी पीढ़ी के लोगों को जीवन की नयी चुनौतियों का सामना करना होता है और उनको सामने के सत्य के साक्षात्कार की जल्दी होती है। इसलिए एक सीमा के बाद बूढ़े लोगों की बातों में ज्यादा कुछ नहीं रह जाता। आप साहित्यकार हैं आपकी स्थिति थोड़ी आलग है क्योंकि आगे के काम के लिए आप इनमें कुछ प्रासंगिक बातों को फाइल कर लेंगी। लेकिन तथ्यों में चयन की आवश्यकता आप कितना बटोरती हैं इस पर भी एक सीमा लगाती है। पत्र का संक्षिप्त होने की इस सफाई के बाद मैंने आपसे जो पूछा है, उस पर आता हूं।

पता नहीं क्यों मुझे किसी को कोई उपहार देने में सदा संकोच होता रहा है। शायद कोई भी उपहार मुझे अपनी भावना के हिसाब से इतना छोटा लगता था कि देने से हिचकता था। इसका एक कारण यह भी था कि आसपास लोगों को कीमती उपहार देते देखता था, जो करना कभी मेरे सामर्थ्य में नहीं था। इससे मैं उपहार देता ही नहीं था। अभी तो स्थिति यह है कि मेरे कपड़े या उपयोग की अधिकांश वस्तुएं उपहार में मिली हुई हैं। मैं जो कपड़े पहन कलकत्ता गया था, वे भी उपहार में ही मिले थे। यह एक विलक्षण स्थिति है, इसी से विस्तार से लिख दिया। आप इसे कंजूसी कह सकती हैं। आश्चर्य की बात यह है मेरे सगे संबंधियों में इस बात से कोई नाराजगी रही हो, यह मैंने कभी अनुभव नहीं किया।

भाई बहनों को थोड़ी बहुत डांट तो जरूर पिलायी होगी, लेकिन शायद ऐसे मौके बहुत कम आये हों क्योंकि मुझे कभी कोई घटना याद नहीं, जब मैंने भाई-बहनों को डांटा-फटकारा हो। एक कारण यह भी हो सकता है कि मैंने परिवार के साथ बहुत कम समय बिताया। प्रारंभिक दिनों में स्कूल कॉलेज के होस्टलों में और लगभग 20 वर्ष की उम्र से ज्यादा समय खानाबदोशी या प्रवास में।

मैं दिल्ली में पहली बार स्वयं खाना बनाना शुरू किया-मजबूरी में क्योंकि ढाबे के खाने में अत्यधिक मिर्च-मसाले से स्वास्थ्य खराब होने लगा। यह काम मैंने लगभग 45 वर्ष की उम्र से शुरू किया। लेकिन 27-28 वर्ष से खाना बनाते हुए भी मुझे कभी खाना बनाने में रुचि नहीं रही और हर वक्त जब खाना बनाना होता है तो पहाड़ सा लगता है। इसे सहज बनाने के लिए मैं लगभग हर दिन चावल-दाल उबाल कर खिचड़ी ही पकाता हूँ और मेरा दावा है कि संसार में कोई दूसरा आदमी नहीं होगा, जिसने मेरे बराबर खिचड़ी खाई हो। मुझे भोजन का जब भी निमंत्रण मिलता है, तो क्या खाने को मिलेगा यह दिमाग में नहीं होता। खाना बनाने से राहत होगी, इसकी खुशी होती है। मैं उस

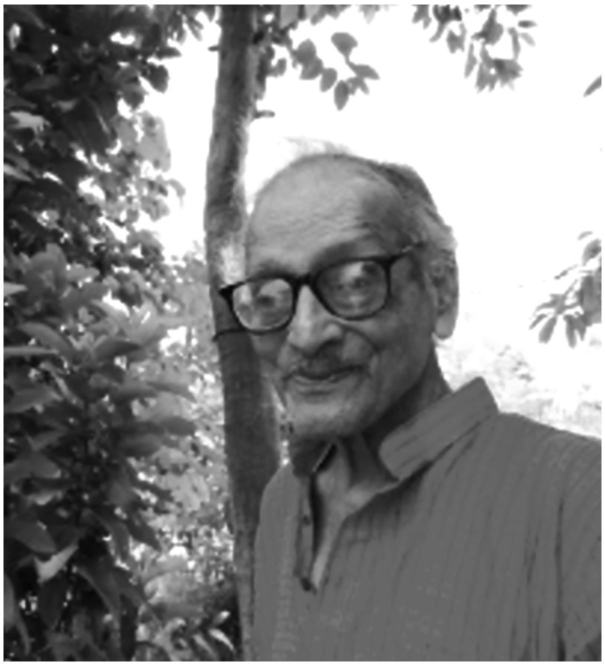

लड़के जैसा जिसका वर्णन आपने किया है, झाड़ू लगाने में कच्चा तो नहीं हूं, लेकिन मेरे झाड़ू लगाने के बाद भी काफी कुछ कूड़ा रह जाता है। और जाले तो महीने जमा होते रहते हैं। मेरे अपने कमरे को देखने पर मुझे च्यवन ऋषि की बात याद आती है, जिनके शरीर पर जंगल झाड़ उग आये थे। आवास के संबंध में मुझे थोड़ी सी बात बहुत पसंद आयी कि उसने रहने के लिए एक बड़ा संदूक बना लिया था, जिसमें जंगल झाड़ के बीच वह पक्षी के घोंसलों में होने का आनन्द पा सके।

अन्तर्देशीय की सीमा ने फिर आपको मेरे लम्बा होते वृतांत से बचा लिया।

मैंने आपका उपन्यास पढ़ा। बहुत अच्छा लगा। सबसे अच्छी बात यह है कि सभी पुरुष पात्र हाशिये पर हैं। संसार को पूरी तरह स्त्री के नजरिया से देखा गया है। यह एक विलक्षण चीज है।

मनिका, 13.7.2001

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 40

चिट्ठी-पत्री

(2)

मुझे यह जानकर कुछ अचरज हुआ कि आपकी मित्र आपसे बात करने में इससे हिचकती है कि कहीं उनकी बातों से आप लिखने के लिए कुछ न निकाल लें। मुझे तो लगता है कि मेरे समेत ज्यादा लोगों को इस बात से खुशी होगी कि उनके जीवन की कोई बात किसी लेखक के द्वारा प्रकाश में आ गया। बहुत सारी बातें जो हम स्वयं प्रकाश में लाने से हिचकते हैं परोक्ष

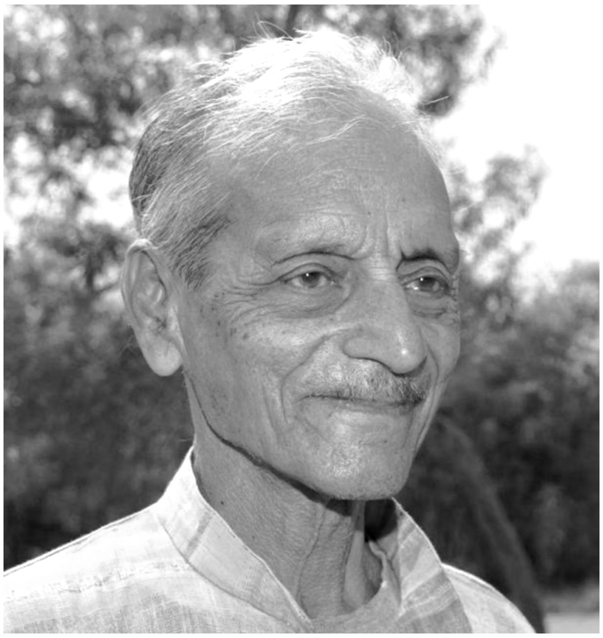

रूप से प्रकाश में आ जाने से हमें राहत देती हैं। क्या लेखक के द्वारा प्रकाश में आ गया। बहुत सारी बातें जो हम स्वयं प्रकाश में लाने से हिचकते हैं परोक्ष रूप से प्रकाश में आ जाने से हमें राहत देती हैं। क्या लेखक भी उन बातों को जिन्हें जीवन में व्यक्त नहीं कर सकते लेखन में नहीं व्यक्त करते हैं? मेरे खयाल से लोगों के साथ संबंध को संतुलित करने का कोई फार्मूला नहीं हो सकता। स्वयं ही अपने अनुभव से यह सीखना होता है। कुछ अपने को बदलना होता है कुछ संगति को बदलना होता है। कभी-कभी इस विषय पर पुस्तकें भी प्रकाशित होती हैं लेकिन ऐसा नहीं लगता कि इससे लोगों को बहुत लाभ होता है। एक अचूक फामूर्ला है, 'दूसरे व्यक्ति को सदा साध्य मानो कभी साधन नहीं।' क्या यह करना सदा संभव होता है? क्या हम दूसरे को अपने लिए सहारा की तरह इस्तेमाल करना छोड़ सकते हैं? ये सब ऐसे सवाल हैं, जिसका जबाब मैं तो नहीं दे सकता। अशोक जी हमारे परिचितों में अकेले व्यक्ति हैं, जो दूसरों के लिए ही अपने को साधन बनाने में लगे रहते हैं। इससे औरों को जो लाभ हो, उनका अपना जीवन तो अस्त-व्यस्त ही होता रहता है। सुखान्त उपन्यासों की इति के बाहर शायद मानव संबंधों में आदर्श स्थिति कभी नहीं कायम होती। सदा इसमें तनाव और राहत बारी-बारी से आती रहती है। यह भी एक भ्रम है कि प्यार निःस्वार्थ भाव से दिया जाता है। आदमी सदा किसी वस्तु या व्यक्ति के अपने इमेज से प्यार करता है और यह उम्मीद करता है कि प्रिय वस्तु उस इमेज से कन्फर्म करेगा। आदमी पालतू कुत्ते के लिए अनेक तरह की सुविधाएँ प्रदान करता है और परेशानियां उठाता है। लेकिन उसे यह आशा भी होती है कि वह उसके अनुकूल व्यवहार करेगा। प्रिय व्यक्तियों से भी कुछ ऐसी ही अपेक्षा होती है। मैंने स्थिति को जानबूझ कर बहुत ही रोचक ढंग से पेश करने की कोशिश की है। इस पृष्ठभूमि में रखने से आदमी के संबंधों की बहुत सारी जटिलताएं सही परिप्रेक्ष्य में दिखाई देने लगती है।

बहुत कम लोग जो बनना चाहते हैं बन जाते हैं। मैंने तो सही अर्थ में कुछ बनने का सोच ही नहीं पाया। भावना में राष्ट्रीय और समाजवादी आंदोलनों से जुड़ा जिसके साथ अगर कुछ बनने की बात थी तो बहुत ही रोमांटिक अर्थ में क्रान्तिकारी बनने की। लेकिन शायद वह भी स्वभाव के अनुकूल नहीं था, इसलिए क्रान्तिकारी समझे जाने वाले समूहों के जुलूस में हमसफर बनने की कोशिश करता रहा। अब तक यही कर रहा हूं। यह जरूर हुआ है कि शुरू के दिनों में समूह के चरित्र के संबंध में जितना आश्वस्त था आज नहीं हूं। वैसे मैं आशावादी हूं इससे चलता चला जा रहा हूँ।

मैं यह मानता हूं कि पुरुष और स्त्री में भावनात्मक भिन्नता होती है और इसलिए पूरी तरह से कोई पुरुष लेखक औरत की अनुभूति को नहीं समझ सकता और न स्त्री लेखक पुरुष की अनुभूति को। भाषा एक है तोता रटंत की तरह एक-दूसरे द्वारा व्यक्त की गयी बातों को दुहरा सकता है। एशप की पशुओं की कहानियों में उनके व्यवहार ठीक आदमियों की तर्ज पर दिखलाये गये हैं। लेकिन हम नहीं जानते कि पशु वैसा महसूस करते हैं। आपने पुरुषों के बाहरी व्यवहार का तो वर्णन किया है, लेकिन कहीं उनकी भावनाओं को व्यक्त करने की कोशिश नहीं की है। इससे आप के उपन्यास में एक तार्किकता है, जो वैसे उपन्यास में नहीं होगी, जिसमें पुरुष लेखक द्वारा महिलाओं की भावना का विस्तृत वर्णन हो या महिला लेखक का पुरुष की भावना का। मेरा इतना ही अभिप्राय था आशा है आप समझ गई होंगी। शुभकामनाएं। ■

(3)

आपके पत्र का जवाब काफी देर से दे रहा हूं। आपका पत्र मिला, उसी समय प्रभाकर आ गये थे और मेरी तबियत खूब ठीक नहीं थी तो मुझे साथ मुजफ्फरपुर ले गये। अब वहाँ से लौटने के बाद पत्र का जबाब दे रहा हूं।

आपके पत्र लिखने के बाद की घटनाओं ने तो आपके इस

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 41

सवाल का जबाब दे ही दिया है कि क्या अमेरिका कोई जबाबी कार्रवाई सचमुच करने वाला है? लादेन का हाथ हो या न हो अमेरिका के अहं को 11 सितम्बर की घटना से इतना बड़ा धक्का लगा है कि उसे किसी ऐसे प्रतीक की तलाश है, जिसे बचाव के लिए लक्ष्य बनाकर सजा दे और अपने मन को संतुष्ट कर सके। मिसाइल रक्षा प्रणाली विकसित कर वह जिस अभेद्य अमेरिका की कल्पना कर रहा था वह पूरी तरह खोखला और निरीह साबित हुआ। अब तक जो अफगानिस्तान में मारे जा रहे हैं वे प्रायः निरपराध लोग ही हैं, जिन्हें तालिबान से कुछ लेना-देना नहीं है और जो स्वयं तालिबान की धर्मांधता से सताये जा रहे थे। लेकिन सजा अमेरिका की शक्ति और मर्यादा के अनुपात का होना जरूरी है।

मुझे याद नहीं कि नेल्सन मंडेला ने कुछ कुछ कहा है या नहीं। लेकिन अगर नहीं कहा हो तो कोई अचरज नहीं। अफ्रीका में इधर दशकों से कबाइली, धार्मिक या दूसरे तरह के कलह से लाखों लोगों के मारे जाने की तुलना में छः या सात हजार लोगों का मारा जाना किसी अफ्रिक्की नेता के लिए दुःखद तो जरूर होगा लेकिन दहलाने वाला नहीं। कोई अफ्रीकी मूल का आदमी यह कैसे भूल सकता कि अमेरिका में लाया जाना रहा है, जिसमें आधे से अधिक लोग रास्ते की कठिनाइयों से मर जाते थे।

आपकी चिट्ठी में जो चीज विशेष तौर से ध्यान आकर्षित करती है, वह है आपकी सोच की प्रक्रिया है। यह खास साहित्यिक लगी। हम लोगों की सोच रैखिक होती है, जिसमें किसी खास बात तक सीमित रह जाता है। आपकी सोच बहुआयामी है, जिसमें एक साथ ही जीवन के विविध अनुभवों के क्षेत्र जुड़ जाते हैं। बरसात और ठंढ से वृंदावन की वर्षा और फिर कृष्ण की बांसुरी और उनका जल में जन्म और नेल्सन मंडेला की लंबी जेल यातना। मेरे खयाल से ऐसी ही सोच से कविता तथा उत्तम साहित्य का जन्म संभव होता है।

हाँ, जैसी सृष्टि है, उसे देखकर यह विश्वास करना तो कठिन लगता है कि किसी रहम दिल परमात्मा ने इसकी रचना की होगी। ओल्ड टेस्टामेंट में एक अध्याय बुक ऑफ जॉब है। जॉब ईश्वर का अनन्य भक्त और उसके न्याय पर भरोसा करने वाला है। लेकिन इसका पूरा जीवन असह्य यातनाओं से भरा है। उससे बार-बार यह अपेक्षा की जाता है कि वह मान ले कि ईश्वर उसके साथ जो कर रहा है, गलत है। लेकिन वह अंत तक ईश्वर में अपनी निष्ठा नहीं छोड़ता। हमारी धार्मिक कथाओं में भी धर्मात्माओं के ऐसे कष्ट का उल्लेख होता है और इसे ईश्वर द्वारा परीक्षा मान लिया जाता है। लेकिन सवाल उठता है कि ईश्वर ऐसी परीक्षा क्यों लेता है? क्या वह स्वभाव से अपने जीवों की पीड़ा में आनन्द लेता है? यह उन लोगों के लिए जरूर विचार का विषय है, जो ईश्वर द्वारा सृष्टि की रचना में विश्वास रखते हैं। इस सवाल पर मेरा दिमाग खुला है। मेरे लिए सृष्टि में mystery जरूर है, लेकिन यह ईश्वर द्वारा निर्मित है यह निश्चित रूप से नहीं मानता। अगर ईश्वर है भी तो अच्छाई के लिए हस्तक्षेप नहीं कर सकता तो फिर हमें ही तय करना होगा कि दुनिया कैसी बनाई जाय। ■

(4)

काफी दिनों के बाद आपका पत्र पाने से प्रसन्नता हुई। मैं आपको अच्छी तरह से जानता हूं। अशोक जी के यहां एक से अधिक बार आपसे मिल चुका हूं। आप का एक उपन्यास 'शादी से पेस्तर' पढ़ा था। इसके अलावा वागर्थ में कुछ कहानियाँ भी पढ़ी थीं, जो सब अच्छी लगीं।

आपने मूर्ति निर्माताओं की जिस समस्याओं का जिक्र किया, वह हम सबों की चिंता का कारण है, लेकिन यह मामला सिर्फ हमारे शिल्पकारों का ही नहीं है और न सिर्फ चीन की प्रतिस्पर्धा से पैदा संकट का। बीमारी अधिक गंभीर है, जो शैक्षिक बाजार व्यवस्था से जुड़ी है। इसका मूल सिद्धांत सर्वाइबल ऑफ द फिटेस्ट है और वह यह मानकर चलती है कि वैश्विक प्रतिस्पर्धा में सिर्फ उन्हें ही जिंदा रहने का हक है, जो बाजार की प्रतिस्पर्धा में टिके रह सकें। जब सारा संसार और इसके उत्पादन बाजार की शक्तियों के लिए खोल दिये जायेंगे तो अनिवार्य रूप से सभी क्षेत्र में वैसे उत्पादक ही बचे रह जायेंगे, जो प्रतिस्पर्धा में औरों से आगे निकल जायेंगे। प्रचार के जरिये स्थानीय भिन्नताओं की बारीकियों को नजरअंदाज कर कुछ स्थापित मानकों के आधार पर कुछ खास स्थानों पर बनी वस्तुओं की गुणवत्ता को वरीयता दी जायेगी और वैसे लोग जो मीडिया से प्रभावित होते हैं– और संयोग से जिनके हाथों में ही क्रय शक्ति है– वैसे स्थानों की बनी वस्तुओं को ही खरीदेंगे। वैश्वीकरण के युग की यह सार्विक त्रासदी है और छोटे स्तर पर इससे बचने का कोई उपाय भी नहीं। दरअसल यह पूरी व्यवस्था के प्रति अपने नजरियों को परीक्षित करने की चुनौती है।

समस्या यह है कि हमारे यहां लोगों को अपनी पीड़ा ले अलग-अलग रोने की आदत है, जबकि जरूरत है इस व्यवस्था को बदलने के लिए एक बड़े समन्वित प्रयास की।

इस बात से खुशी हुई कि आप जैसी लेखिका इस समस्या के प्रति संवेदनशील हैं। शायद ऐसी संवेदनशीलता से ही कोई विकल्प की शक्ति जन्म ले। ■

मनिका, 15.6.2001

(5)

आपका पत्र मिला। पत्र पाना बहुत अच्छा लगा। इस बात से बड़ी खुशी हुई कि अशोक जी ने जो मेरे गम्भीर व्यक्ति होने की गलत भावना आपमें पैदा कर दी थी, वह दूर हो गयी। स्वयं अशोक जी में इस बात से झुंझलाहट पैदा होती है कि मैं जब एक

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 42

चिट्ठी-पत्री

बार कुछ लिख देता हूं तो फिर उसे ठीक से पढ़ता नहीं, विषय में और विस्तार से नहीं जाता। पता नहीं आपको उन्होंने उल्टा इम्प्रेशन कैसे दिया। शायद उनका आशय समय की पाबन्दी से रहा हो। समय पर काम करने की एक आदत सी बन गयी है। शायद यह मेरे नाना का प्रभाव था, जिनका सब काम घड़ी के कांटे के हिसाब से होता था। लेकिन यह गंभीरता से ज्यादा किसी आंतरिक दबाव का परिणाम हो सकता है। जॉर्ज ऑरवेल ने कहीं लिखा है 'हम अंगरेज समय के मरीज हैं। लगता है मुझमें भी यह मानसिक रोग है। लेकिन यह तो एक मानसिक रोग है, गंभीरता का लक्षण नहीं। दरअसल मेरा अनेक विषयों में दिलचस्पी लेना और उन पर लिखना भी गंभीरता के अभाव का ही लक्षण है। गंभीर विश्लेषण इस बात की मांग करती है कि आप एक ही विषय की गहराई में प्रवेश कर उसके रेशा-रेशा से परिचित हो जाय। यह मेरे स्वभाव के ठीक विपरीत है, जिसकी दिलचस्पी कहीं एक जगह स्थायी रूप से टिक नहीं पाती। मैं स्वयं गंभीर विद्वत्तता से आतंकित महसूस करता हूं। यह मेरे लिए बहुत खुशी की बात है कि प्रत्यक्ष साक्षात्कार से यह भ्रम दूर हो गया। दरअसल मेरे आस-पास के छोटे बच्चे भी मुझे उम्र के हिसाब से गंभीर नहीं मानते और इसलिए दूसरे वयस्कों के मुकाबले मुझसे ज्यादा स्वतंत्रता से बातचीत करते हैं। मेरे पड़ोस के 5-7 वर्ष तक के बच्चे आकर मुझसे बतियाना चाहते हैं और कभी-कभी तो जरूरी काम होने पर मुझे उन्हें जबर्दस्ती वार्तालाप भंग करने को मजबूर करना पड़ता है। शायद बच्चे ऐसा मानते हैं कि मेरी मानसिक उम्र कुछ उन लोगों जैसी ही है। शायद उम्र का प्रभाव हो, बुढ़ापे को दूसरा बचपन भी कहते हैं।

इसलिए मैं पढ़ने-लिखने के संबंध में किसी को गाइड नहीं कर सकता। मैंने व्यवस्थित रूप से तो कोई पढ़ाई की नहीं है कि सिलसिलेवार रूप से बतला सकूं कि किस विषय के लिए क्या-क्या पढ़ना चाहिए और कहां से शुरू कर कहां अंत करना चाहिए। मुझे तो एक विषय पढ़ते समय उसका संबंध किसी दूसरे विषय से दिखायी पड़ा और फिर मैं दूसरे विषय की तरफ मुड़ गया और अगर कोई तीसरा विषय प्रासंगिक लगा तो तीसरे विषय की तरफ। इसी से इस नतीजे पर भी पहुंचा कि अगर पूरी दिलचस्पी से किसी एक विषय में रुचि ली जाय तो स्वयं अन्य विषयों की ओर भी रुझान होगा। इसमें एक फायदा यह होता है कि पढ़ना किसी क्रम के दबाव में नहीं रुचि से होता है।

आपने पड़ोस में फूल होने पर उन पर कविता लिखने की बात की। वैसे मेरे पड़ोस में जंगली फूल तो अधिक हैं; घरेलू फूलों से पड़ोस की बकरियों का प्रेम ज्यादा है और वे उनके पेट में चले जाते हैं। पक्षियों पर मैंने बच्चों के लिए कविता में जरूर कभी लिखी थीं—पड़ोस के पक्षियों पर और उनके ड्राइंग भी बनाये थे। लेकिन पुस्तक रूप में छापने के लिए कोई प्रकाशक नहीं मिल सका। छिटपुट कुछ पत्रिकाओं में कुछ छपी है। लेकिन वे तुकबंदियां हैं, वैसी कविता नहीं जैसा आप फूलों पर लिखने की सोचती हैं। वैसे हर आदमी किसी खास उम्र में कविताएं लिखता है, लेकिन गम्भीरता से कविता लिखना फिर गंभीर अध्ययन और हुनर की खोज करती है, जिसे विकसित करना होता है। उस हिसाब से भी मैं गंभीर नहीं था।

आपके पत्र से अपने बारे में बहुत सारी बातें मैं लिख गया, शायद यह भी वृद्ध होने का लक्षण और सुविधा है। ■

मनिका, 14.5.2001

(6)

आपका पत्र अभी-अभी मिला और सोचा कि अपनी पहली प्रतिक्रिया ही लिख दूं। मुझे लगता है कि हर व्यक्ति को जो सामाजिक मान्यताओं से थोड़ा हट कर सोचता है और अपनी सोच के मुताबिक आचरण करने की कोशिश करता है, उसे सीता जैसे तनाव से होकर गुजरना होता है या उसके भीतर ही रहना पड़ता है। परंपरा में आदमी पूरी तरह यकीन करने लगे तो समाज के किसी क्षेत्र में सर्जनात्मक विकास नहीं हो पाएगा। इसीलिए समय-समय पर मसीहा, विचारक, क्रान्तिकारी चिंतक होते रहे हैं, जो जड़ीभूत हुई परंपराओं को तोड़ते हैं और फिर समाज गतिशील होता है। वर्तमान पूंजीवादी उपभोक्तावादी समाज में यह समस्या ज्यादा जटिल हो गयी है क्योंकि वे मानक जिनसे मुठभेड़ करना होता है वे भी रोज दिन, कुछ व्यापारिक कारणों से, फैशन शो, विज्ञापनों आदि से बदलते जाते हैं। इससे हर रोज अपने को दूसरों की मर्जी से बदलने का दबाव बना रहता है। वैयक्तिक इच्छा शक्ति से अगर आदमी इस दबाव को नजरअंदाज करता है तो समाज से कट जाता है। लगभग एक शताब्दी पहले जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने अपने उपन्यास द *अनसोशल सोशलिस्ट* में अपने खास व्यंगात्मक अंदाज में बतलाया था कि कैसे एक सोशलिस्ट जो अपने आदर्शों के हिसाब से रहना चाहता है। समाज में हर मौके पर हास्यास्पद बन जाता है। कुछ हद तक यह समस्या एक अनैतिक समाज में नैतिक जीवन की आकांक्षा से पैदा संकट भी है पर असल समाजवाद या दूसरे ऐसे आदर्शों के लिए जो आन्दोलन हुए उनके मूल में इसी अंतरविरोध को मिटाना था। अलग-अलग हर व्यक्ति के लिए संभव नहीं है कि समाज की मान्यताओं के खिलाफ खड़ा हो सके। सिर्फ जिन्दा रहने की समस्या इतनी जटिल होती है कि आदमी की मानसिक और शारीरिक ऊर्जा का बड़ा हिस्सा इसमें लगता है।

इसलिए सामाजिक प्रयत्नों से समाज परिवर्तन या बड़े समाज सुधार के प्रयासों से ही ऐसे संस्कारों को सामाजिक मान्यता दिलायी जा सकती है, जो एक संवेदनशील और सचेत व्यक्ति के लिए अनुकूल वातावरण दे सके। लेकिन यह एक अंतहीन प्रक्रिया है। आज के क्रान्तिकारी विचार कल की जड़ परंपरा बन जायेंगे और फिर नये लोग इसे बदलने का प्रयास करेंगे। जीवित

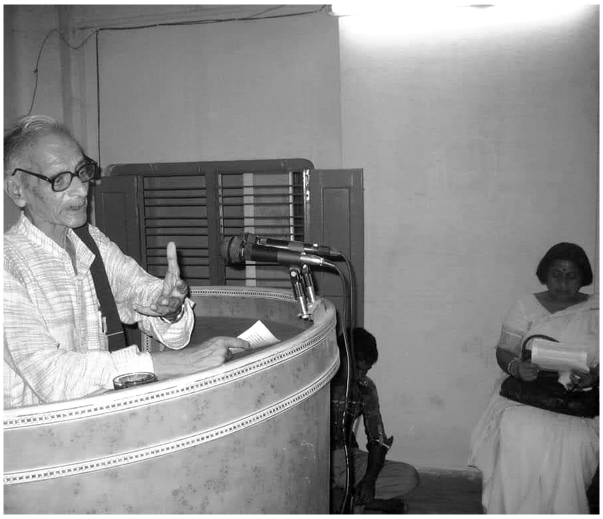

संस्कृतियों में कन्फर्मिटी और रिन्यूअल इन दोनों के तत्व मौजूद होते हैं, जिससे समाज की संरचना कायम रहती है और बिना विघटन के इसमें आवश्यक बदलाव होते रहते हैं। हमारा संकट यह है कि एक तरफ हम 'अति आधुनिक' पश्चिमी समाज की परिपाटियों को उधार ले रहे हैं तो दूसरी तरफ इन्हें उस पारंपरिक सांचे में ढालने की कोशिश कर रहे हैं, जिसे काफी कुछ खारिज किया जा चुका है। मैं कोई समाधान देने का दावा नहीं कर रहा हूँ। अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कर रहा हूं। ■

मनिका, 28.6.2001

(7)

आपका पत्र पढ़ना बहुत अच्छा लगा। मेरे पास काफी समय रहता है, जो बेकार की बातों में ही जाता है। पत्र अच्छा इसलिए लगा कि कोई मुझसे निजी बातें नहीं पूछता। आपको यह जानकर हँसी आयेगी कि हम भाई बहन जब साथ होते हैं तो घर परिवार की बात से ज्यादा राजनीति की ही बातें होती हैं। यह पारिवारिक विशेषता के साथ बिहार की विशेषता भी है। कहते हैं कि ब्रिटेन में जब लोगों को एक-दूसरे से कुछ कहने को नहीं होता तो मौसम की बातें करते हैं। हम बिहारी कुछ नहीं कहने का होने पर राजनीति की बातें करते हैं। आपके व्यक्तिगत प्रश्न काफी राहत देने वाले हैं।

ऐसा नहीं है कि मेरे ऊपर हर बात में नानाजी का प्रभाव पड़ा। लेकिन समय की पाबन्दी के बारे में जरूर पड़ा। यह भी ठीक है कि मेरे नानाजी असाधारण व्यक्ति थे। मेरी जाति में सौ साल पहले पढ़ाई-लिखाई की ओर रुझान नहीं था– खेती और जमीन के लिए जरूरत होने पर लट्ठ उठाना यह आम बात थी। उस वातावरण में मौलवी के यहाँ पढ़कर फारसी ले उन्होंने मैट्रिक पास किया और फिर कलकत्ता विश्वविद्यालय से केमिस्ट्री में एमएससी फिर कॉलेज में डिमंस्ट्रेटर की नौकरी छोड़ 1920 में गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन में शामिल हो पटना विद्यापीठ में शिक्षक हुए और उनके प्रिय शिष्यों में जयप्रकाश नारायण भी थे। जब उन्हें सार्वजनिक रूप से अभिनन्दन ग्रन्थ दिया गया तो जे.पी. ने ही जनसभा में यह ग्रन्थ उन्हें अर्पित किया था। आजादी के आन्दोलन के क्रम में वे लगभग 8-10 साल जेल में रहे होंगे। लेकिन उनके सामाजिक जीवन की व्यस्तता के कारण हम लोगों का साथ बहुत कम होता था। मेरी माँ भी विलक्षण थीं। वे ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं थीं। सिर्फ लिखना-पढ़ना भर जानती थीं। लेकिन मेरी बहनें शिक्षित हो सकीं तो उसके पीछे उनका विशेष योगदान था, जो करना वे एक बार ठान लेती थीं तो जरूर कर लेती थीं। सिलाई और कढ़ाई का काम उन्होंने अपनी युवा अवस्था में इतनी महीनी से किया था कि बाद में उनकी सिलाई की कुछ वस्तुएं हाइडेलबर्ग के फोक आर्ट म्यूजियम में रखी गयीं। शायद मेरी मां का बॉयस भी कुल मिलाकर लड़कों के पक्ष में था। मैं 9 वर्ष तक भाई-बहनों में अकेला था। इससे स्वाभाविक था कि मां का पूरा स्नेह मुझे मिला। मेरे बाद प्रभाकर आये। पर इसके बाद मेरी माँ की देवताओं से मनौती के परिणामस्वरूप मेरी पहली बहन आयी। उसके प्रति मेरी मां का अत्यधिक प्यार होना स्वाभाविक था। सबसे छोटा मेरा छोटा भाई अरविन्द था। सबसे छोटा होने के बाद में मेरे खयाल में मां का सबसे ज्यादा प्यार उसी को मिला। इसमें यह कहना बड़ा मुश्किल है कि माँ किसे सबसे ज्यादा प्यार करती थीं। मेरी सबसे छोटी बहन सबसे अधिक मेरी मां के साथ रही और इससे एक खास तरह का लगाव बन गया। लेकिन एक बात मेरे परिवार में विलक्षण थी उनके प्रेम के चलते हम सभी भाई-बहन अपने पिताजी से ज्यादा जुड़े थे। वे कभी बच्चों को मारते-पीटते नहीं थे। मुझे जब गांव की पाठशाला में दाखिल किया गया तो उन्होंने गुरु जी से आग्रह किया था कि वे मुझे पीटें नहीं क्योंकि घर में वे कभी पीटते नहीं।

बचपन में मैं काफी खेलता था। पतंग, गोली, कबड्डी और फिर फुटबॉल, वॉलीबॉल, बैडिंमटन। यह जानकारी देना जरूरी है कि मेरे नानाजी कलकत्ता यूनिवर्सिटी के हॉकी प्लेयर थे। मेरे पिताजी भी युवा अवस्था में टेनिस एवं फुटबॉल के अच्छे खिलाड़ी थे। इससे हम लोगों के खेलकूद पर कभी कोई प्रतिबन्ध नहीं लगा।

मुझे लगता है कि मां, बाप, दादा, दादी, नाना, नानी आदि के संबंधों और प्रभावों के संबंध में कोई नियम नहीं निकाला जा सकता। यह बहुत कुछ व्यक्ति की विशेष स्थितियों पर निर्भर करता है।

आशा है आपको मेरे परिवार और आपसी संबंधों का विस्तार से हुलिया मिल गया। वैसे व्यक्तिगत संबंधों के मूल आधार को समझने के लिए किसी कहानीकार या उपन्यासकार जैसा होना पड़ेगा। यह आपका कार्यक्षेत्र है। शुभकामनाएं। ■

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 44

मार्क्स और लोहिया से आगे जाने वाले साथी सच्चिदाजी

अफलातून

लालकृष्ण अडवाणी ने सोमनाथ से अयोध्या की रथयात्रा निकाली थी। तब मेरे पिता नारायण देसाई मुझसे विभीषण की प्रसिद्ध पंक्ति का उल्लेख करते थे। जब अधीर होकर विभीषण ने कहा था 'रावण रथी विरथ रघुवीरा'। विभीषण की आशंका तो बहुत सहज थी कि रावण रथ पर है, उसका मुकाबला बिना कवच, पैदल कैसे करेंगे? मैंने तब अपने पिता से पूछा भी नहीं कि रथी रावण का मुकाबला राम कैसे कर लेंगे। मेरे पिता मानकर चल रहे होंगे कि बेटा जानता ही होगा। बहरहाल, बरसों बाद जब मैं साथी चंचल मुखर्जी के साथ मनिका गया हुआ था, तब सच्चिदाजी ने साथी जगत से रामचरितमानस मंगवाई। पढकर बताया, 'हे सखे वह रथ दूसरा ही है, जिससे जय होती है। शौर्य और धैर्य उस रथ के पहिये हैं। सत्य और शील उसकी मजबूत ध्वजा और पताका है। बल, विवेक, दम और परोपकार उस रथ के घोडे हैं, जो क्षमा, दया और समतारूपी डोरी से रथ से जुते हुए हैं। ईश्वर का भजन उस रथ का चतुर सारथी है। वैराग्य ढाल है और संतोष तलवार है। दान फरसा है, बुद्धि प्रचंड शक्ति है, श्रेष्ठ विज्ञान कठिन धनुष है। निर्मल और स्थिर मन तरकश के समान है। अहिंसादि यम और शौचादि नियम ये बहुत सारे बाण हैं। हे सखे! ऐसा धर्ममय रथ, जिसके पास हो उसके लिए जीतने के लिए कहीं शत्रु है ही नहीं।' सच्चिदाजी ने चंचल और मुझसे कहा कि तुलसीदास ने राम के वचन से जो व्याख्या की है वह गांधीजी के सत्याग्रह से कहां भिन्न है!

हमने गौर किया कि सच्चिदाजी की सफेद बनियान गेरुआ-सी हो रही है। 'चमेला कुटीर' के चापाकल के पानी में लौह अवशेष की मात्रा अधिक है, उसका रंग कपडों पर चढ़ रहा है। सच्चिदाजी ने कहा कि मेरी सेहत पर पानी का प्रतिकूल प्रभाव नहीं है। फिर एक स्मित हास के साथ बोले साधुओं को वनों में ऐसा पानी मिलता होगा, जिससे उनके कपड़े गेरुआ हो जाते होंगे।

कुछ ही दिन पहले बिजली दर बढी थी, तब उन्होंने दरख्वास्त देकर कनेक्शन कटवा लिया था। एक लैंप सौर उर्जा से चार्ज हो रहा था। बहुत आग्रह के बाद एक छोटा मोबाइल रखना कबूला था, जो साथी जगत के घर में चार्ज होता था।

सार्वजनिक तौर पर मोदी का सूट और चश्मा, अमित शाह का मफलर, महुआ मोइत्रा का पर्स या राहुल गांधी का टीशर्ट की चर्चा हुई है। क्या इन सर्वजनिक व्यक्तियों के रहन-सहन को नितांत निजी मामला मान लिया जाना चाहिए? अपनी प्रसिद्ध पुस्तिका 'उपभोक्तावादी संस्कृतिः गुलाम मानसिकता की अफीम' सच्चिदाजी ऐसे मामलों पर खुलासा करते हुए कहते हैं-

'हमारा निजी रहन-सहन कैसा होता है, इसके सामाजिक प्रभाव के संबंध में बहुत विचार नहीं किया जाता। ऐसे लोग भी, जो समाज-परिवर्तन करना चाहते हैं, समाज से गरीबी मिटाना चाहते हैं और समता लाना चाहते हैं, खुद कैसे रहते हैं इस बारे में नहीं सोचते, लेकिन हमारा रहन-सहन और उपभोग का स्तर वास्तव में एक नितांत निजी मामला नहीं है। यह एक विशेष वातावरण की उपज है और स्वयं एक वातावरण बनाता है। यह वातावरण बहुत हद तक समाज के विकास की दिशा को प्रभावित करता है और इस बात का भी निर्धारण करता है कि उपलब्ध साधनों का कैसे उपयोग होगा। अतः यह एक ऐसा विषय है, जिस पर गहराई से विचार करने की जरूरत है।'

रामजन्मभूमि आंदोलन के दौर में सर्वोदयी, मार्क्सवादी और समाजवादी विचार से जुड़े बनारस के तीन समूहों ने राष्ट्रतोड़क राष्ट्रवाद की चुनौती का सामना करने के लिए 'सद्भाव अभियान' का गठन किया, तब तीनों समूहों का साझा वैचारिक आधार क्या होगा, यह तय करने के लिए तीनों समूह के लोगों को वैचारिक प्रस्तुति करनी थी। स्वातिजी ने सच्चिदाजी की 'भारतीय राष्ट्रीयता और सांप्रदायिकता' के आधार पर जो प्रस्तुति की, उसे तीनों धाराओं के साथियों ने स्वीकार कर लिया। भारतीय राष्ट्रीयता के सांस्कृतिक आधार की नजीर देते हुए वे अल्लामा इकबाल के तराना ए हिंदी का शेर याद करते थे', यूनान ओ मिस्त्र रूमा सब मिट गये जहां से, अब तक मगर है बाकी नाम ओ निशां हमारा। कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी, सदियों रहा है दुश्मन दौर ए जमां हमारा।

अंग्रेजी और हिंदी की कई किताबें लिखने के अलावा वे जर्मन और फ्रेंच सीखे थे। बिहार सरकार ने उन्हें फादर कामिल बुल्के के नाम से दिया जाने वाला पुरस्कार देने का निर्णय लिया। सच्चिदाजी ने विनयपूर्वक अस्वीकार करते हुए कहा

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 45

मैं साहित्यकार नहीं लेखक हूं। उन्होंने सुझाव दिया कि लेखक, साहित्यकारों की मद के लिए सरकार को एक कोष बनाना चाहिए।

मौजूदा समय में कस्बों, नगरों और महानगरों में अपमान और संवेदनहीनता का शिकार एक तबका है। इस त्रासदी का अध्ययन तथा भविष्य की विभीषिका का पूवार्नुमान सच्चिदाजी ने एक गहन अध्ययन से किया था, 'जिंदगी सभ्यता के हाशिए पर'। वे दिल्ली और मुंबई में लंबा समय रहे थे। गोदी मजदूरों की ट्रेड यूनियन बनाने के क्रम में स्वयं कुली का काम कर चुके थे। 'जिसकी लड़ाई उसका नेतृत्व' इस उसूल पर खरे उतरते हुए उन्होंने ट्रेड यूनियन का संगठन किया। इसके साथ-साथ उसी दौर में समाजवादी पत्रिकाओं के संपादन से भी जुडे। बनारस के पटरी व्यवसाइयों का संगठन और आंदोलन शुरू करते वक्त सच्चिदाजी की इस किताब से हमें बुनियादी समझ और दिशा मिली।

उत्तर भारत की राजनीति पर नजर रखने वाले यह भी जानते होंगे कि नक्सलबाड़ी उत्तर बंग का वह गांव है, जहां मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी से अलग होकर भाकपा (माले) की स्थापना हुई तथा इस नई जमात द्वारा, 'बुर्जुआ लोकतंत्र को नकारने तथा वर्ग शत्रु के खात्मे के सिद्धांत का ऐलान हुआ'। उत्तर बंग के इसी इलाके में गत चार दशकों से चल रहा है एक और आंदोलन। यह संगठन है उत्तर बंग तपशिली जातियों का आदिवासी संगठन (उत्जास)। 1982 में उत्जास ने अपने सम्मेलन के उद्घाटन के लिए समता संगठन के नेता सच्चिदानंद सिन्हा को बुलाया। साथ-साथ समता संगठन के राष्ट्रीय संयोजक शिवानंद तिवारी और बनारस से डॉ. स्वाति तथा मैं थे। सम्मेलन में कर्नाटक की दलित संघर्ष समिति के नेता वेंकटेश भी निमंत्रित थे। सच्चिदाजी ने उत्तर बंग को एक आंतरिक उपनिवेश के रूप मे चिह्नित किया और बुलंदी से इस बात को कहा कि आजादी के बाद विकास की जो दिशा तय की गई, उसमें यह अंतर्निहित है कि बड़े शहरों की चकाचौंध उत्तर बंग, झारखंड, छत्तीसगढ, पश्चिम ओडिशा, पूर्वी उत्तर प्रदेश जैसे भौगोलिक इलाकों तथा खेती को लूट कर ही बनी है। लोहिया और रोजा लक्समबर्ग ने मार्क्स के आगे का अर्थशास्त्र बताया था तथा सच्चिदाजी ने पूंजीवाद और साम्यवादी व्यवस्थाओं के विकास के लिए आंतरिक उपनिवेशवाद को समझाया। उस सम्मेलन में उत्जास के युवा नेता प्रभात बर्मन बता रहे थे कि सुंदरवन में बाघ है किंतु उत्तर बंग में वृहतकाय हाथी। छोटी-छोटी आंखों के पीछे सूप जैसे बड़े-बड़े कानों की वजह से विशालकाय शरीर को नहीं देख पाते हैं। सच्चिदाजी ने उत्जास को एक स्पष्ट समझदारी दी।

कर्नाटक और बंगाल के दलित आंदोलन में भी एक समानता है। दोनों प्रांतों के दलित आंदोलन पर डॉ. अम्बेडकर के अलावा लोहिया और किशन पटनायक का भी प्रभाव रहा है। लोहिया और किशन पटनायक की वजह से पी लंकेश (गौरी लंकेश के पिता), वेंकटेश, लेखक देवनूर महादेव तथा सजप के संस्थापक अध्यक्ष युगलकिशोर रायबीर में गांधी द्वेष नहीं था। कर्नाटक दलित संघर्ष समिति का एक धड़ा बसपा में शामिल होना चाहता था। उस धड़े ने कांशीराम के समक्ष शर्त रखी कि वे गांधी निंदा बन्द करेंगे। इस धड़े ने कहा कि वे अम्बेडकर की समाजनीति और गांधी की अर्थनीति को मानते हैं। कांशीराम ने शर्तों को सार्वजनिक तौर पर माना और यह धड़ा बसपा की कर्नाटक इकाई बना।

1980 में समता संगठन वैकल्पिक राजनीति के औजार के रूप में गठित हुआ। मुख्यधारा के सभी दलों की कई नीतियां समान थीं। कांग्रेस, भाजपा, कम्युनिस्ट और ज्यादातर मध्यमार्गी दल 'मजबूत केंद्र' को मानते थे। समता संगठन विकेंद्रीकरण और संघवाद (कुछ कम्युनिस्ट युवा संघवाद को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जोड़ते रहे हैं, यहां फेडरलिज्म का अर्थ है) के बारे में स्पष्ट समझ और मान्यता रखता था। पंजाब और असम आंदोलन,स्वर्ण मंदिर पर ऑपरेशन ब्लूस्टार नामक सैनिक कार्रवाई, सिख विरोधी बर्बर दंगों पर समता संगठन की स्पष्ट राय थी, जो अक्सर मुख्यधारा की राजनीति से मेल नहीं खाती थी। इस वैकल्पिक सोच के निर्माण में सच्चिदाजी, किशनजी, जसवीर और सुनील जैसे साथियों का प्रमुख योगदान था।

पिछली शताब्दी के आठवें दशक में जो किसान आंदोलन चला, उसे सैद्धांतिक आधार देने के साथ-साथ सच्चिदाजी की सरपरस्ती में सांस्कृतिक मंच भी गठित हुआ। सच्चिदाजी ने न सिर्फ किसान जागरण गीत लोक भाषा में रचे बल्कि उनकी तर्ज भी बताई।

समता संगठन, समाजवादी जन परिषद से शुरू हुई वैकल्पिक राजनीति की धारा को दो बार मुष्टिमेय लोगों ने छोड़ा। 1982 में समता संगठन पहला राजनीतिक संगठन था, जिसने स्पष्ट फैसला लिया कि उसके सदस्य विदेशी धन पर चलने वाले प्रोजेक्ट्स का हिस्सा नहीं बनेंगे और न उन्हें संचालित करेंगे। ऐसी परियोजनाओं से जुड़े साथी संगठन से अलग हो गए।

दूसरी बार की टूट अन्ना आंदोलन के समय हुई। समाजवादी जन परिषद की राष्ट्रीय कार्यकारिणी ने दिल्ली के दो साथियों को उस आंदोलन की बाबत रिपोर्ट देने के लिए कहा। उस आंदोलन में युगांतकारी संभावना देखते हुए उन साथियों ने कहा कि समाजवादी जन परिषद अपना विलय अन्ना हजारे, केजरीवाल वाली धारा में कर दे। उस आंदोलन के विचारवंत साफ तौर पर लिख रहे थे कि वे समाजवादी नहीं हैं।

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 46

सजप के तत्कालीन महामंत्री ने अपने इस्तीफे में लिखा था कि आम आदमी पार्टी की नीतिविहीनता को कुछ समय के लिए नजरअंदाज कर देना चाहिए। तब सच्चिदाजी ने अपने लेख में साफ तौर पर समझाया, 'अनैतिकता की जड़ नीतिविहीनता में है'। इस संदर्भ में साथी सुनील ने कहा, 'बहुत से लोग यह मानते हैं कि आईडियोलॉजी की बात बकवास है। विचारधारा की कोई जरूरत नहीं है। जो मुद्दा सामने आएगा, उस पर हम मिलजुल कर तय करेंगे, यह सोच दिशाहीनता की ओर ले जाती है। विचारधारा का मतलब यह नहीं है कि अंधानुकरण हो, लेकिन दुनिया को समझने और समझकर दुनिया बदलने का एक ढांचा तो बनाना पड़ेगा, उसी को आप विचारधारा कह सकते हैं। वह समाजवादी विचारधारा हो, सर्वोदयी विचारधारा हो, मार्क्सवादी विचारधारा हो या कोई और विचारधारा हो। विचारधारा का शून्य बहुत खतरनाक होता है और अंततः वह यथास्थिति को मजबूत करने वाला होता है।'

समाजवादी जन परिषद के कोट्टायम सम्मेलन के लिए सच्चिदाजी ने लिखित संदेश भेजा। इसे सम्मेलन ने सर्वसम्मति से राजनैतिक प्रस्ताव से जोड़कर पारित किया गया। सच्चिदाजी ने संदेश में यह भी कहा था, 'आम आदमी पार्टी की तात्कालिक सफलता ने हमारे कुछ साथियों को भ्रमित किया और इससे संगठन को अस्थायी क्षति भी पहुंची थी। हमें छोड़कर जाने वाले हमारे वह साथी यह अनुभव कर चुके हैं कि विचारविहीन दल उस पतवारविहीन नौका की तरह है, जो अंततः कुछ लोगों की व्यक्तिगत जिदों से संचालित होते हैं। मैं आशा करता हूँ कि हमारे कई गम्भीर साथी इस अनुभव से अपनी गलती महसूस करेंगे और अपने पुराने समूह में वापस होंगे।'

अपने वरिष्ठतम साथी को हृदय में संजोकर हम दृढ़तापूर्वक कहते हैं, 'साथी तेरे सपनों को, हम मंजिल तक पहुंचाएंगे'। ■

लोकतंत्र के हिमायती

नवीन

'एक बूढ़ा आदमी है मुल्क में या यों कहो इस अंधेरी कोठरी में एक रोशनदान है।'

सच्चिदा जी ने 97 वर्ष पूरा कर लिया था। उसके दस बारह दिन पहले जगत नारायण जी ने मुझे फोन करके कहा था कि अरविंद जी (सच्चिदा जी के छोटे भाई) चाहते हैं कि मैं भी सच्चिदा जी के जन्म दिन पर मौजूद रहूं। यह नितांत पारिवारिक कार्यक्रम था, जिसमें कुछेक अभिन्न लोग ही आमंत्रित थे। तमन्ना थी कि वे शतायु होंगे, लेकिन अलविदा कह गए।

किशोरावस्था में सच्चिदा जी से जुड़ना हुआ और पता ही न चला कि कब यौवन बीता, कब अधेड़ हुआ और अब बुढ़ापे का छठा पायदान पार कर रहा हूं। अवचेतन में यह भाव गहराई से शुरू से अब तक है कि सच्चिदा जी के पास समाज, देश और दुनिया को स्वस्थ, सुंदर और समतामूलक बनाने का सूत्र है।

1978 के सराय सम्मेलन में सच्चिदा जी को पहली बार देखा था। दिल्ली से वह सीधे आए थे। मंगलीलाल मंडल को युवा जनता के प्रदेश अध्यक्ष पद से राष्ट्रीय उपाध्यक्ष शिवानंद तिवारी जी ने हटाकर नीतीश कुमार को अध्यक्ष बनाया था। इस स्थापना सम्मेलन का उद्‌घाटन किशन पटनायक जी ने किया था। शिवानंद जी ने सच्चिदा जी का परिचय देते हुए इन्हें ट्राटस्कीवादी बताया था। इसका सच्चिदा जी ने फौरन खंडन कर दिया था। सच्चिदा जी निखालिस समाजवादी हैं। जब कोई उन्हें लोहियावादी कहता, तब भी सच्चिदा जी आपत्ति जाहिर करते।

सराय सम्मेलन के बाद जब सच्चिदा जी से मिला तो पहली किताब *सोशलिज्म ऐंड पावर* मिली। जिस तरह से मार्क्स, एंजिल्स, गांधी, नरेंद्रदेव, लोहिया, जेपी और किशनजी की किताबों को हमलोग पढ़ते हैं, उसी तरह से सच्चिदा जी की भी किताबों का पारायण करते हैं। किसी-किसी किताब के एक पैरा को समझने में तो मुझे घंटों लग जाता है। मगर जब समझ लेता हूं तो अलौकिकता का अहसास होता है। सच्चिदा जी का संपूर्ण लेखन रचनावली के रूप में आठ खंडों में आ गई है। लोहिया समग्र के बाद सच्चिदा जी ही ऐसे समाजवादी लेखक हैं, जिनकी रचनावली आई है। सच्चिदा जी की अंगरेजी उच्च कोटि की है। प्रभाकर जी ने कभी कहा था, आरडीएस कॉलेज के अंगरेजी के विद्वान प्रोफेसर बी घोष के बारे में। प्रो घोष सच्चिदा जी की सारी अंगरेजी किताबों को चाव से पढ़ते थे। इसलिए नहीं कि वह राजनीति में दिलचस्पी लेते थे, महज इस कारण से कि सच्चिदा जी की अंग्रेजी बहुत अच्छी है। हिंदी से ज्यादा प्रवाह उनकी अंग्रेजी में है। सच्चिदा जी फ्रेंच भाषा भी जानते है। फ्रेंच लेखक अलबेयर कामू का नाटक का अनुवाद 'न्यायी हत्यारे' सच्चिदा जी ने किया है। साठ दशक के उत्तरार्द्ध में अंगरेजी में संपादक अबू सईद ने डॉ. लोहिया का इंटरव्यू किया था।

संपादक ने डॉ. लोहिया से पूछा था कि यदि उन्हें समाजवाद और लोकतंत्र में से

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 47

किसी एक को चुनना पड़ेगा तो वह किसे चुनेंगे। डॉ. लोहिया ने कहा कि अव्वल तो ऐसी स्थिति आएगी ही नहीं। संपादक ने जोर देते हुए फिर पूछा, यदि मान लीजिए आ ही गई तो किसे चुनेंगे? डॉ. लोहिया ने कहा, समाजवाद को चुनूंगा। मुझे इस इंटरव्यू ने बहुत परेशान किया था। मैं भागते हुए सच्चिदा जी के पास पहुंचा था और उनका मंतव्य जानना चाहा था। सच्चिदा जी ने बिना किसी असमंजस के कहा, 'लोकतंत्र को चुनूंगा, क्योंकि जो यह व्यवस्था दे सकती है, उसे छीन भी सकती है।' इस तरह से मेरे आगे जो धुंधलका छाया था, उसे सच्चिदाजी ने एक झटके में खत्म कर दिया।

डॉ. लोहिया की अंतरराष्ट्रीय स्तर की अंगरेजी मासिक पत्रिका मैनकाइंड होती थी। अगस्त 1956 में उसके प्रवेशांक में ही सच्चिदा जी का लेख उस सोशलिस्ट आइडिया ऑफ इक्वालिटी छपा था। उसके शुरू के अंश कुछ इस तरह थे, जब हम किसी गरीब किसान से समानता लाने की बात करते हैं तो वह तिरस्कारपूर्ण तरीके से पांचों उंगलियों को दिखा कर कहता है, 'भगवान ने ही पांचों उंगलियों को समान नहीं बनाया है। अमीर और गरीब बने रहेंगे।' यह विडंबना है कि समाजवादी आंदोलन की उत्पत्ति और शक्ति समतामूलक समाज की अपील से ही होती है, यह भाव अधिकाधिक पीछे चला गया है। समाजवाद को केवल अर्थव्यवस्था पर राज्य के नियंत्रण के बराबर माना जा रहा है।

प्रवेशांक के उस लेख से लोहिया अत्यंत प्रभावित हुए थे। पटना आने पर उन्होंने तत्कालीन सोशलिस्ट पार्टी के बिहार अध्यक्ष प्रणब चटर्जी से कहा कि 'मुझे सच्चिदानंद से मिलवा दो।' और डॉक्टर लोहिया सच्चिदा जी को अपने साथ हैदराबाद ले गए। सच्चिदा जी ने वहां मैनकाइंड के संपादकीय सहकर्मी के रूप में काम किया। बाद में तो सच्चिदा जी ने जनता, जनक्रांति, सामयिक वार्ता वगैरह में सक्रिय योगदान दिया। सच्चिदा जी का कलम के साथ-साथ कुदाल से भी मजबूत रिश्ता रहा है। अविभाजित मुजफ्फरपुर जिला में तमाम विपक्षी दलों का जो संयुक्त किसान संघर्ष मोर्चा था, सच्चिदाजी उसके जिला संयोजक थे। किसानी के साथ-साथ मजदूर के भी रोल में हम सच्चिदा जी को पाते हैं। कोयला मजदूरों और रेल मजदूरों के आंदोलन से भी सच्चिदा जी शिद्दत से जुड़े रहे हैं। मुंबई के ट्रेड यूनियन में काफी सक्रिय रहे। जॉर्ज फर्नांडिस के निकट सहकर्मी थे। वहां रेल में तो बतौर खलासी का भी काम किया है। रोमांच और चमक-दमक की मायानगरी मुंबई भी युवा सच्चिदानंद सिन्हा को प्रभावित न कर पाई। सच्चिदा जी के चरित्र पर कभी किसी तरह का दाग नहीं लगा। बगैर विवाह के सहजीवन जीने वाले भी खुद को चिर कुमार बताते नहीं थकते, हमारे सच्चिदा जी ने कभी इस तरह का प्रयोग नहीं किया। कभी कोई कानाफूसी भी सुनने में न आई।

ऐश्वर्यशाली और सत्ता प्रतिष्ठान से जुड़े परिवार में जन्म लेने वाले सच्चिदा जी ने जिस तरह से खुद को डिक्लास किया, वह विरल है। एक ही उदाहरण दूंगा। बरगढ़ सम्मेलन में सच्चिदा जी के साथ हम लोग गए थे। आयोजक ने सच्चिदा जी और पन्ना लाल सुराना जी को होटल में ठहराने का इंतजाम किया था। पन्ना लाल जी तो होटल में ठहरे मगर सच्चिदा जी हम कार्यकर्ताओं के साथ ही दरी पर सोए।

'वे जो प्रतिभावान बड़े हैं।
उनके साथ बड़े लफड़े हैं'।

हमारे सच्चिदा जी इन लफड़ों में कभी नहीं फंसे।

सच्चिदा जी ने हम कार्यकर्ताओं को सिखाया है कि रैली प्रदर्शन में जाना है तो टिकट लेकर चलना है। ऐसे कार्यक्रमों में बेटिकट जाना क्रांतिकारिता मानी जाती है। ठाणे के सम्मेलन में दिवंगत शिवपूजन सिंह ने सच्चिदा जी और हम लोगों की तरफ देखते हुए तंज कसा था, 'ये लोग टिकट वाले हैं।' साथी सुनील ने ही सवाल उठाया था कि किसान और आदिवासी कैसे किसी कार्यक्रम में शामिल हो सकते हैं? सच्चिदा जी ने छूटते ही जवाब दिया था, 'क्यों किसान और आदिवासी अपने बच्चों की शादी में कर्ज नहीं लेते? अपना काम समझेंगे तो साधन भी निकल आएगा। 'गांधी जी का हवाला देते हुए आगे कहा कि यदि एक भी बगैर टिकट के यात्री होगी, तो वह गार्ड को गाड़ी खोलने से मना करेंगे।

राजनीति को रोजमर्रा का काम सच्चिदाजी बतलाते हैं। जिस तरह से हम आजीविका, परिवार, कुटुंब आदि के लिए समय निकालते हैं, उसी तरह से राजनीति के लिए भी समय निकालना चाहिए।

सच्चिदा जी अखबार पढ़ने में ज्यादा समय जाया करने के खिलाफ हैं। सच्चिदा जी का आग्रह रहता है कि टेक्स्ट की किताबों को तवज्जो दी जाए। अखबार पढ़कर गंभीर राय नहीं बनाई जा सकती है। आज हम देख रहे हैं कि वॉट्सएप यूनिवर्सिटी से कितना कूड़ा निकल रहा है।

सच्चिदा जी तो पिता की उम्र के हैं, मगर प्रारंभ में ही उन्होंने सख्त ताकीद कर दी थी कि पांव कतई न छुआ जाय। उन्हें सर से संबोधन कदापि न किया जाए। समाजवादी को तो इस पर अमल करना ही चाहिए। एक बार जब मैं अपने विभागीय प्रमुख के प्रकोष्ठ में बैठा था, तभी राज्यसभा के उपाध्यक्ष हरिवंश जी का फोन आया था। मुझे हरिवंश जी संबोधित करते हुए अधिकारी महाशय को ताज्जुब हुआ। उन्होंने कहा भी आप हरिवंश जी कहते हैं? उन्हें उम्मीद थी मैं सर-सर कहूंगा।

जन्म दिन पर प्रभाकर जी, अरविंद जी, मनोरमा दीदी, सुरेंद्र मंगला पुरी, बंटू, प्रो. नंदन जी सपत्नीक, लालदेव जी, महेंद्र जी, मोती जी, पवन और जगत जी थे।

संस्मरण

दूजा न कोई

मैं 1989 में विभागीय काम से दो पखवाड़े के लिए कोलकाता गया था। एक दिन शाम को अशोक सेकसरिया जी के साथ राजकिशोर जी मिलने आए। जब चाय पीने के लिए रेस्तरां में गया और सच्चिदा जी पर बात होने लगी तो राजकिशोर जी ने कहा था, 'विश्व में सच्चिदा जी इकलौते विद्वान हैं, जिनका एक से अधिक विषयों पर अधिकार है। एक व्यक्ति किसी एक विषय का प्रकांड विद्वान हो सकता है, सच्चिदा जी तो अनेक विषयों पर साधिकार लिखते हैं।'

वर्षों पूर्व शिवानंद तिवारी जी ने मुझसे कहा था, 'नवीन तुम भाग्यशाली हो जो सच्चिदा जी और किशन जी के सान्निध्य में रहते हो। जब भी इन दोनों के पास बैठो तो कागज कलम लेकर बैठना। जो भी कुछ कहें, उसे फौरन नोट कर लेना। यह बहुत काम की चीज होगी।' और इस पर मैंने अमल भी किया और करता हूं। इन्हीं नोट्स के आधार पर कई लेख और समाचार बनाए गए।

सच्चिदा जी का निवास 'चमोला कुटीर' हम लोगों के लिए समाजवादी तीर्थ है। यहां वाम दक्षिण की संकीर्ण दीवारें भी टूट जाती हैं। दोनों खेमों के लोग अपनी जिज्ञासाओं के शमन के लिए आते हैं। जब माले के महासचिव दीपांकर भट्टाचार्य और भाजपा के पूर्व केंद्रीय मंत्री संजय पासवान सच्चिदा जी से मिलने आए थे तो संयोगवश मैं भी वहीं विद्यमान था।

स्कूली जीवन से ही राजनीतिक यात्रा शुरू करने वाले सच्चिदा जी की कोई महत्वाकांक्षा नहीं है। यहां तो पार्टी मेंबर बनते ही लोग विधायक सांसद बनने की जुगत भिड़ाने लगते हैं। गांधी और जेपी की तरह बगैर किसी ओहदे पर रहे सच्चिदा जी की आभा दीप्तिमान है। सत्ता बार-बार यहां शीश नवाने आती है। कर्पूरी ठाकुर मुख्यमंत्री रहते हुए मनिका गांव में दरी पर बैठ कर सच्चिद जी से मशविरा करके गए। जॉर्ज फर्नांडिस भी मनिका गांव आकर ग्रामीणों से यह कहते पाए गए कि वह सच्चिदा जी को सच्ची बोलते हैं।

मनोरमा दीदी और नंदन जी पर्याप्त मात्रा में मधुर और नमकीन लाए थे। सबको खिलाया गया। भतीजा बंटू ने गुलदस्ता भेंट किया। सच्चिदा जी से केक कटवाया गया।

सच्चिदा जी शतकवीर हों। स्वस्थ रहें, यह हम सबकी दिली तमन्ना थी। शताब्दी वर्ष की आतुरता से प्रतीक्षा थी।

सच्चिदा जी से जुड़ी बातों का कोई ओर-छोर नहीं है। लंबे पोस्ट को विराम देता हूं। ■

कुछ लोगों के नाम मैं नहीं जानता हूं।

नब्बे के दशक में हिन्दुस्तान टाइम्स में अभयकांत का तीनों भाइयों पर केंद्रित आलेख छपा था। तीनों भाइयों की राजनीति पर विशद चर्चा थी। प्रोफेसर भुवनेश्वरी सिन्हा ने मुझसे कई बार कहा था कि तीनों भाई तीन विचारधारा से जुड़े हैं, कोई किसी की राजनीति में हस्तक्षेप न करते हुए प्रेमपूर्वक रहते हैं, यह अद्भुत बात है। अभयकांत जी का एक और लेख सच्चिदा जी पर याद आता है।

गांधीवादी मूल्यों को आत्मसात करने वाले सच्चिदा जी ने वर्षों पूर्व सिद्धांतनिष्ठता से संबद्ध एक वाकया बताया था। इसे दोहराना इसलिए समीचीन है कि वर्तमान राजनीति सिद्धांत के मामले में एक सौ अस्सी डिग्री घूम गई है। सत्ता पक्ष और प्रतिपक्ष दोनों एक ही उसूल पर चल रहे हैं। दोनों पक्ष एक-दूसरे से यह उम्मीद रखता है कि भावी प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री का नाम पहले से घोषित हो।

सच्चिदा जी के नाना रामचरित्र सिंह श्री कृष्ण सिंह के मंत्रिमंडल में कबीना मंत्री होते थे। श्री बाबू ने किसी सभा में यह कह दिया था कि, 'के बी सहाय मेरे राजनीतिक उत्तराधिकारी होंगे।' सच्चिदा जी के नाना रामचरित्र बाबू ने इस पर गंभीर आपत्ति दर्ज की थी, 'राजतंत्र में उत्तराधिकारी तय होता है, लोकतंत्र में तो चुनाव बाद विधायक अपना नेता तय करेंगे।' यहीं से दोनों नेताओं में खटास आ गया था। आज चुनाव चेहरों के इर्द-गिर्द घूमता है। मुद्दाविहीन राजनीति से देश की तकदीर संवरने वाली नहीं है। ■

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 49

सच्चिदा जी को जितना सुन और समझ पाया

अरविंद वरुण

मेरे जैसे साधारण कार्यकर्ता के लिए सच्चिदानंद सिन्हा जैसे साधक पर कुछ लिख पाना बहुत कठिन है। अनेक स्मृतियां जरूर हैं। उन्हीं में से कुछ यहां आपके साथ बांटने की कोशिश कर रहा हूं। सच्चिदा बाबू को देखने और सुनने का पहला मौका मुझे गांधी शांति प्रतिष्ठान, मुजफ्फरपुर केंद्र के तत्कालीन स्थानीय कार्यालय में मिला। कश्मीर पर एक संगोष्ठी का आयोजन 16 जून 1996 को किया गया था, जिसका विषय था 'कश्मीरः शेष संभावनाएं'। यह एक कसी हुई गोष्ठी थी, जिसमें विभिन्न विचारधाराओं के कोई 25-30 बुद्धिजीवी और समाजकर्मी शामिल हुए थे। प्रख्यात गांधीवादी डॉ. एसएन सुब्बाराव ने इसका उद्घाटन किया था और सच्चिदानंद सिन्हा मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित हुए थे। कश्मीर समस्या उस समय चरम पर थी।

बतौर मुख्य अतिथि सच्चिदा बाबू ने विभिन्न ऐतिहासिक संदर्भों का हवाला देकर कहा कि अखंडता की बात पर हमें नए तरीके से सोचना होगा, क्योंकि किसी भी देश की सीमा सदैव अटल नहीं रहती। गांधीजी विलेज रिपब्लिक की बात करते थे। गांधीवादी कार्यकर्ताओं ने इस पर आगे विचार नहीं किया। अगर स्वायत्त रहते हुए कश्मीर भावनात्मक रूप से भारत से जुड़ा रहता है, तो इस पर विचार किया जाना चाहिए। प्राचीन काल में भी भारत की राजनीतिक सत्ता एक नहीं थी। हम सांस्कृतिक एवं भावनात्मक रूप से जुड़े थे। हमारी राजकीय परंपरा जनपदों की परंपरा थी। इसी रूप में हमारी राष्ट्रीयता थी। लेकिन राष्ट्रीयता का जो वर्तमान स्वरूप है, वह पश्चिमी अवधारणा से विकसित है। आज इस बात को कहने की जरूरत है। परंतु यह कहने के लिए साहस चाहिए, क्योंकि ऐसा कहते ही अनेक लोग कहेंगे कि यह राष्ट्रद्रोही बात है। गांधी संस्थाओं को यह साहस दिखाना चाहिए।

संगोष्ठी में इस पर तीव्र प्रतिक्रिया हुई। सुब्बाराव जी ने भी त्वरित प्रतिक्रिया देते हुए उनसे अपनी असहमति दर्ज की। हम जैसे उपस्थित कुछ युवा कार्यकर्ताओं के लिए दिनभर चला वह संवाद एक अविस्मरणीय अनुभव बन गया कि किसी बड़े और विवादास्पद मुद्दे पर सहमति-असहमति के बीच किस तरह एक लोकतांत्रिक संवाद बिना किसी कटुता के किया जा सकता है।

उसके कुछ ही समय बाद सच्चिदा बाबू के कार्यकर्ता रूप से मेरा परिचय हुआ। उनके गांव मनिका के समीपवर्ती गांव नवादा के एक वामपंथी कार्यकर्ता की हत्या हो गई थी। उसके बाद गांव दो खेमों में बुरी तरह विभाजित हो गया था और रोज बम फूटने तथा गोलीबारी होने का एक सिलसिला-सा शुरू हो गया था। इस अशांति से अगल-बगल के गांव भी प्रभावित हो गए थे। गांधी शांति प्रतिष्ठान, मुजफ्फरपुर केंद्र के तत्कालीन सचिव सुरेंद्र कुमार जी की पहल पर वहां शांति अभियान चलाने का निर्णय हुआ। सच्चिदा बाबू ने इसमें हर कदम पर हम लोगों का मार्गदर्शन किया और साथ दिया। दरवाजे-दरवाजे भटकने से लेकर गांव में शुरू हुई शांति बैठकों तक। शुरू में लगा कि अभियान कारगर नहीं हो पाएगा, लेकिन प्रयास की निरंतरता से कुछ सकारात्मक परिदृश्य उभरा और अंततः हमलोग दोनों पक्षों को वार्ता की मेज पर लाने में सफल हुए। फिर दोनों पक्षों ने यह वचन दिया कि आगे कोई हिंसा नहीं होगी और दोनों पक्ष अब अदालती रास्ते ही अपनाएंगे। इस अभियान में हमने जाना कि कोई बड़ा विचारक जब कार्यकर्ता के रूप में काम करता है तो कितना प्रभावी हो जाता है।

सच्चिदा बाबू में छोटे प्रयासों को भी महत्व देने का अद्भुत गुण था। प्रमुख गांधीवादी और गांधी शांति प्रतिष्ठान की तत्कालीन अध्यक्षा सुश्री राधा भट्ट की प्रेरणा से मुजफ्फरपुर केंद्र ने वर्ष 2012 में एक मासिक स्टडी सर्किल शुरू किया। उद्देश्य था विभिन्न विषयों पर चर्चा आयोजित करके सामाजिक कार्यकर्ताओं और युवाओं को वैचारिक और तथ्यात्मक रूप से मजबूत बनाना। शुरू में कुछ अंक आरंभिक उत्साह में निकल गए, लेकिन संयोजनकर्ता के रूप में मुझे बार-बार यह आशंका होती थी कि सिलसिला कहीं रुक न जाए। डेढ़ वर्ष निकल गए। तभी एक दिन सच्चिदा बाबू के निकट सहयोगी भाई जगत नारायण राय जी ने मुझे सूचना दी कि सच्चिदा बाबू स्टडी सर्किल में आना चाहते हैं। मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा और मुंह से अनायास निकल गया कि सच्चिदा बाबू इतने छोटे कार्यक्रम में! लेकिन जगत जी ने कहा कि आप अवश्य बात कर लें।

जब सच्चिदा बाबू 18वें अंक के वक्ता के रूप में उपस्थित हुए तो हमें आश्वस्ति हुई कि स्टडी सर्किल का सिलसिला टूटेगा नहीं। तारीख थी 5 जनवरी 2014 रविवार। विषय था- 'वर्तमान परिदृश्य एवं वामपंथ।' उन्होंने आरंभ ही किया कि यह वामपंथ

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 50

के पराभव का समय है। इसलिए विचारना होगा कि आखिर यह स्थिति क्यों बनी। उनके अनुसार, मार्क्स ने पूंजी का जो अध्ययन किया था, उसमें कुछ कमियां रह गईं, कुछ भूलें भी हुईं। मार्क्स का मानना था कि मजदूरों का जो शोषण होता है, वही श्रम संचित रूप में पूंजी बन जाता है। मार्क्स ने उत्पादन में कच्चे माल का जो महत्व है, उसे नकार दिया। जैसे- कपड़े में कपास का योगदान या लोहा-निर्माण में अयस्क का योगदान। इन कच्चे मालों के लिए प्राकृतिक परिवेश और खास तरह के वातावरण की जरूरत होती है। आज के औद्योगिक विकास में प्राकृतिक परिवेश, स्थानीय समाजों का ढांचा आदि नष्ट होता जा रहा है- इस उत्पादन व्यवस्था में इस पर सोचा ही नहीं गया था। जब सामाजिक ढांचा और व्यवस्था भंग होती है तो चरम पंथ की शुरुआत होती है। संसाधनों को लूटकर औद्योगिक उत्पादन बढ़ाने की इस व्यवस्था ने स्थानीय समाजों के ढांचे को तोड़ा। इस टूट और विघटन के खिलाफ वामपंथियों के पास आज कोई समाधान नहीं है। इसमें सच्चिदा बाबू ने यह उल्लेख किया कि पूंजीवाद के खिलाफ मजदूरों का आंदोलन खड़ा करो- यह दृष्टि सफल नहीं हुई। इस विफलता के कारण औद्योगीकरण पूरी तरह मानव विरोधी और प्रकृति विरोधी हो गया है। उसे हर हाल में प्रकृति के साथ जोड़ना होगा। प्रकृति के लय को बनाए रखे बिना आगे नहीं बढ़ा जा सकता। वामपंथ को इसे समझना होगा, अन्यथा वामपंथ पूरी तरह अप्रासंगिक हो जाएगा।

उसके बाद सच्चिदा बाबू उस स्टडी सर्किल से ऐसे जुड़े कि उसके अभिन्न अंग हो गए। हमें बड़ी ऊर्जा और प्रेरणा मिलती थी, जब यह संदेशा मिलता कि अगले संस्करण में सच्चिदा बाबू फिर बोलेंगे। यह क्रम तब तक चला, जब तक स्टडी सर्किल अपने आठवें वर्ष में कोरोना महामारी का ग्रास नहीं बन गया। इस दौरान '21वीं सदी में समाजवाद का भविष्य', 'समाजवाद : आत्मघाती औद्योगीकरण का विकल्प', 'राष्ट्रवाद की अवधारणा', 'निहत्था पैगंबर- गांधी', 'विकास की वर्तमान दिशा' आदि विषयों पर उनके सुचिंतित विचारों से स्टडी सर्किल समृद्ध हुआ। यहां हम राष्ट्रवाद की अवधारणा पर उन्होंने जो बताया-सिखाया, उसे सूत्र रूप में रखना चाहेंगे। 6 मार्च 2016 के उस स्टडी सर्किल में उन्होंने जो कहा था, उसके प्रमुख बिंदु थे-

1. राष्ट्रवाद की अवधारणा पूरी तरह आभासी अवधारणा है।
2. भारत के इतिहास में राष्ट्रवाद का विचार कभी, कहीं नहीं मिलता है। किसी काल में नहीं, किसी भूभाग में नहीं।
3. यूरोप में भी यह कोई प्राचीन अवधारणा नहीं हैं। स्वयं ग्रेट ब्रिटेन ही 1688 में ग्लोरियस रिवोल्यूशन के बाद कई हिस्सों को मिलाकर बना।
4. 17वीं सदी में पूंजीवाद के विकास के साथ ही राष्ट्रीयता की बात यूरोप से शुरू हुई।
5. फ्रांसीसी क्रांति तक राष्ट्र की कोई अवधारणा नहीं थी। उसी क्रांति से राष्ट्रवाद का आरंभ होता है, जो एकछत्र शासन से सीधा जुड़ा है।
6. आज भारत में छोटे समूहों और हाशिए पर पड़े समाजों को नष्टकर एक केंद्रीकृत एकछत्र शासन स्थापित करने के लिए राष्ट्रवाद का सहारा लिया जा रहा है।
7. भारतीय सभ्यता या इतिहास में कभी कोई राष्ट्र नहीं था। लेकिन आज गलत संदर्भ देकर राष्ट्रवाद की वकालत की जा रही है।
8. आज मूल बात है कि बड़ी कंपनियों के लिए प्राकृतिक संसाधन कैसे जुटाए जाएं? यह तभी संभव है, जब विकास के नाम पर राष्ट्रवाद को आगे खड़ा किया जाए और जो इसका विरोध करें उन्हें राष्ट्रद्रोही करार दिया जाए।
9. लोकतंत्र में राष्ट्रवाद के नाम पर किसी को दबाया या नकारा नहीं जा सकता। स्कॉटलैंड की बड़ी आबादी ब्रिटेन से अलग होने की मांग करती है, लेकिन उसे वहां कभी राष्ट्रविरोधी या द्रोही नहीं माना जाता। भारत में ऐसा नारा लगा देने मात्र को राष्ट्रद्रोह बता दिया जाता है।
10. कुल मिलाकर राष्ट्रवाद को आज पूंजीवाद के लिए ढ़ाल की तरह इस्तेमाल किया जा रहा है। वर्तमान सरकार इस ढ़ाल का बढ़-चढ़कर इस्तेमाल कर रही है। यह लोकतंत्र के भविष्य के लिए खतरनाक है।

एक और प्रसंग। जनवरी 2011 में मुझे जानकारी मिली कि सच्चिदा बाबू इन दिनों रामचरित मानस का अध्ययन कर रहे हैं। मैं गांधी स्मृति व्याख्यान के लिए वक्ता की तलाश में था। सहसा दिमाग में कौंधा कि क्यों न सच्चिदा बाबू से राम के व्यक्तित्व पर बोलने का आग्रह किया जाए। अगले दिन उनके गांव मनिका जाकर उनसे मिला और आग्रह किया। मुस्कुराते हुए उन्होंने कहा कि मैं तो उस खयाल से नहीं पढ़ रहा हूं, अब तक नहीं पढ़ पाया था इसलिए पढ़ रहा हूं। मैंने इतना ही कहा कि अभी समय है, लेकिन एक विश्वास जगा कि वे बोलने के लिए तैयार हो जाएंगे। इसीलिए तीन-चार दिन बाद फिर गया। उनकी सहमति मिल गई और विषय भी तय हो गया- 'गांधी के राम'।

महात्मा गांधी के बलिदान दिवस पर ऐसा विषय और सच्चिदा बाबू जैसे वक्ता, मुजफ्फरपुर के प्रबुद्ध जन सुनने को बहुत उत्सुक थे। व्याख्यान में उन्होंने जो सब कहा, उससे ज्ञान की एक नई खिड़की खुली। उन्होंने बताया -'सत्याग्रह के बीज तत्व के दर्शन रामचरित मानस में होते हैं। लंका कांड में रावण की सेना को देखकर विभीषण अधीर हो जाते हैं- *रावण रथि बिरथ रघुबीरा, देखि बिभीषन भयउ अधीरा*। ऐसे में राम कहते हैं कि जिससे जय होती है, वह रथ दूसरा ही है। धैर्य और शौर्य उस रथ के पहिए हैं। सत्य और सदाचार उसका ध्वज है। बल, विवेक, परोपकार और दम (इंद्रियों का वश में होना) उसके घोड़े

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 51

हैं, जो क्षमा, दया और समतारूपी डोरी से जुड़े हुए हैं। यही रामायण का संपूर्ण दर्शन है। वहां कहीं भी हथियार की कोई चर्चा तक नहीं है। और यही सत्याग्रह का भी मूल दर्शन है। पूरा दर्शन एक जगह है।'

उन्होंने रेखांकित किया कि गांधी ने निश्चित रूप से रामचरित मानस का अध्ययन किया था और उसका उन पर गहरा प्रभाव था। राम के बारे में गांधी की दृष्टि लगभग वही है, जो तुलसीदास की है। *हिन्द स्वराज* में इसे स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

तुलसी के राम की तरह गांधी ने भी समाज के सबसे निचले पायदान पर खड़े लोगों के साथ अपने को मिला दिया। केवट निषादराज और सबरी से लेकर जटायु तक समाज और प्रकृति की पिछली पंक्ति के लोगों और जीवधारियों के प्रति राम का प्रेम अटूट था। पूरे रामचरित मानस में ब्राह्मणों के प्रति राम का कोई अनुराग कहीं नहीं दिखता। उनका अनुराग तो भील और बंदरों के साथ है। गांधी के साथ भी यही है। वह अंतिम आदमी का दुख-दर्द बांटते हैं।

तुलसीदास खुद ब्राह्मणों से बहुत प्रताड़ित थे, उन्हें ब्राह्मणों ने बहुत सताया था। जब उन्होंने रामचरित मानस की रचना की, तब भी उनका बड़ा विरोध हुआ। एक कठिन परीक्षा के बाद उन्हें और रामचरित मानस को कबूल किया गया।

सच्चिदानंद बाबू के अनुसार, गांधी राम को मानते थे, साथ ही हर धर्म को अपने साथ समाहित रखते थे। दक्षिण अफ्रीका के टाल्सटॉय फॉर्म से ही इसकी शुरुआत हो जाती है। गांधी धार्मिक थे, लेकिन अपनी मान्यताओं को उन्होंने कभी दूसरे धर्मावलंबियों पर नहीं थोपा। राम के प्रति उनकी भक्ति अंतिम सांस तक रही और गोली लगने के बाद भी उनके मुंह से 'हे राम' निकला। आज जय श्रीराम के नारे के साथ दुनिया के सामने राम का उग्र और हिंसक स्वरूप रखने का प्रयास किया जा रहा है। इस स्वरूप में सीता कहीं नहीं हैं, जबकि गांधी के राम के साथ सीता अविच्छिन्न हैं। रामचरित मानस में कहीं भी दलित, शूद्र या महिला विरोधी भावना नहीं है। ढ़ोल, गंवार... वाली बात एक खास संदर्भ में कही गई है। एक घबराया हुआ व्यक्ति वह बात कहता है। न तुलसी कहते हैं, न राम वैसा कहते हैं। लेकिन आज राम के नाम पर दलित विरोधी और स्त्री विरोधी भावनाएं भड़काई जा रही हैं। आज राम को आक्रामक दिखाया जा रहा है। यह राम के चरित्र के सर्वथा विपरीत है। रामायण पूर्णतः समता और सत्याग्रह का दर्शन देती है। इसे लोगों तक पहुंचाना सच्चा गांधी-कर्म होगा।

सच्चिदानंद सिन्हा के इस व्याख्यान पर आगे खूब चर्चा हुई। और अंत में एक निजी बात। पिछले वर्ष 30 अगस्त की सुबह मैंने सच्चिदा बाबू को फोन मिलाया। यह नंबर फिलहाल चालू नहीं है, सुनाई पड़ा। तब उनके सहयोगी और बगलगीर जगत जी को फोन मिलाया। संयोग से वे साथ ही बैठे थे। मोबाइल पकड़ते ही सच्चिदा बाबू समझ गए। हंसते हुए कहा - जन्मदिन पर आज पहली शुभकामना आपकी ही मिली है। फिर हम दोनों खूब बतियाए, खूब हंसे। मुझे क्या पता था कि फोन पर उनसे मेरी आखिरी बार बात हो रही थी! ■

मेरी यादों के झरोखों से

स्मिता

मैं सच्चिदा जी के बारे में लिखने से झिझक रही थी क्योंकि उनके बारें में काफी कुछ लिखा जा चुका है और मेरी बातें दोहराव लग सकती है। पर *सामयिक वार्ता* के संपादक मण्डल के आग्रह पर मैं यह एक छोटा सा संस्मरण लिख रही हूं और मुझे उम्मीद है कि पाठक इसकी मूल भावना को समझते हुए इसको पढ़ेंगे।

जहां तक मुझे याद पड़ता है सच्चिदा जी से मेरी पहली मुलाकात 1983 में दिल्ली में यूएनआई के लॉन में समता युवजन सभा की शनिवार शाम की बैठक में हुई थी। मेरे लिए वह मुलाकात और उस मीटिंग में जाना दोनों ही बहुत अलग तरह के अनोखे अनुभव थे। हम लोग यूएनआई के धूल भरे लॉन में बैठ कर चर्चा कर रहे थे। मैंने अपनी पहले की सारी पढ़ाई रसायन विज्ञान में की थी और मेरी समाज शास्त्र, राजनीति शास्त्र और अर्थशास्त्र की समझ काफी मामूली थी। मीटिंग मे चलने वाली कई सारी राजनैतिक बातें मुझे थोड़ा उलझा रही थीं। सच्चिदा जी की मेरे मन पर पहली छाप यह थी कि वे बहुत कम बोलते हैं, लेकिन जब बोलते हैं तो हमेशा सटीक और मार्के की बात रखते हैं। पर अगर कोई उनसे उनकी राय पूछता तो वे विस्तार से अपनी बात रखते। उनकी बातें काफी दिलचस्प और गहराई वाली होती थी। बाद में वर्षों के लंबे संपर्क के दौरान मैंने उनके साथ कई बार गैर-राजनैतिक विषयों पर भी लंबी-लंबी चचाएं की। बीच-बीच में बातें जब कभी गॉसिप में बदलने लगतीं तो वे उसे सकारात्मक बातचीत की दिशा में बदलने की कोशिश करते। उस मीटिंग के बाद, मैं समता संगठन के साथ जुड़ी और बाद में सुनील और अन्य साथियों के साथ मिलकर केसला में हमने किसान आदिवासी संगठन का काम शुरू किया। उस पहली मुलाकात के बाद सच्चिदा जी के साथ मेरा संपर्क बढ़ा और फिर

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 52

आजीवन चलता रहा।

जब सच्चिदा जी साकेत, नई दिल्ली में रहते थे, तब एक बार सुनील और जसवीर के साथ मैं उनके घर उनसे मिलने गई थी (शायद 1983 की बात है)। वे बहुत ही सादगी के साथ रहते थे और उन्होंने बताया कि वे आम तौर पर अपने हाथ से बनाई हुई खिचड़ी और हलवे का भोजन किया करते हैं। इस अवसर पर उन्होंने हमें भी सूजी का हलवा अपने हाथ से बनाकर खिलाया। जब वर्षों बाद, कई बार मनिका (बिहार) में उनके घर जाने का अवसर मिला, तब भी यही छाप दिमाग में बनी कि सच्चिदा जी बहुत ही सादगी-से, सिर्फ जरूरत की चीजों के साथ जीवनयापन करते हैं।

सच्चिदा जी का अपना एक विशिष्ट हास्यबोध था। वे मजाक में एक किस्सा बताते थे, उन दिनों का जब वे अपनी युवावस्था में मुंबई की एक फैक्ट्री में मजदूरों के साथ काम किया करते थे। वहां उन्होंने तेल के टैंकर साफ करने और रेलवे कोच साफ करने का काम किया। उस दौरान दूसरे मजदूर उनसे कहते कि वे बैठ जाएं और उन्हें काम करने दें क्योंकि सच्चिदा जी को एक काम खत्म करने में काफी समय लगता। साथी मजदूर उनसे कहते कि आप पेन उठाने वाले व्यक्ति हैं (छात्र हैं) आपसे श्रम का काम नहीं होगा, दूसरे शब्दों में जिसने पेन उठा लिया, उससे औजार नहीं उठेंगे। उन्होंने एक और किस्सा बताया था, उसी दौर का जब वे बंबई से मुजफ्फरपुर (बिहार) ट्रेन की यात्राएं करते, जहां उन्हें 36-48 घंटे एक ही जगह, एक ही अवस्था में खड़े रहकर, खचाखच भरी ट्रेन में यात्रा करना पड़ता था। एक बार किसी दूसरे यात्री ने उन पर उल्टी कर दी और उन्हें अपनी मंजिल तक उसी स्थिति में सफर करना पड़ा क्योंकि बाथरूम तक जाकर उसको धोने या कपड़े बदलना संभव नहीं था, उस ट्रेन के डिब्बे में हिलने-डुलने की भी जगह नहीं थी। एक और बार सर्दियों में जब वे रेल यात्रा कर रहे थे उनके पास ओढ़ने के लिए कंबल नहीं था, इसलिए उन्होंने अपने सारे कपड़े पहन लिए ताकि ठंड से अपने को बचा सकें। मुझे वे यात्राएं कुछ डरावनी ट्रेन यात्राओं जैसी लग रही थीं पर सच्चिदा जी इन किस्सों को सहज और मजाकिया तरीके से जीवन के अनुभवों की तरह सुना रहे थे।

मैंने सच्चिदा जी को काफी-कुछ उनकी किताबों से भी जाना। उनकी कई किताबें मैंने समय-समय पर पढ़ीं हालांकि, कला और साहित्य पर उनका लेखन अभी मेरे लिए बंद किताब जैसा हैं। उनकी कई किताबों में से मेरी पसंदीदा और मुझे बहुत प्रभावित करने वाली किताबें है-*बिटर हार्वेस्ट* और *सोशलिज्म ऐंड पावर*। *बिटर हार्वेस्ट* उन्होंने मुझे भेंट में दी थी और मैं उसे एक झटके में ही पढ़ गई। उसकी लेखन शैली मुझे पढ़ने में बहुत आसान लगी। *सोशलिज्म ऐंड पावर* को पढ़ने में मुझे ज्यादा समय लगा, उसके तर्क और चर्चाएं काफी विस्तृत और जटिल थे। कई बार जब मुझे उनकी किताब से कुछ समझ नहीं आता था, तो मैं सच्चिदा जी से पूछती और वे मुझे आसान भाषा में उसको समझाते। सच्चिदा जी की किताबों का जिक्र किए बगैर उनके बारे में लिखा नहीं जा सकता। सच्चिदाजी की किताबें उनके ज्ञान की गहराई, उनकी समाजवादी दृष्टि, समाजवादी चिंतन और उनके अनुसंधान (शोध) और मेहनत को दर्शाती हैं। जो लोग सच्चिदा जी को करीब से जानते हैं, वे यह भी जानते है कि किताबें सच्चिदा जी के काम, सोच और व्यक्तित्व के एक छोटे से हिस्से को दिखाती हैं और उनका काम, उनका चिंतन और उनका जीवन इससे काफी बड़ा और विस्तृत था।

बिटर हार्वेस्टः भारतीय अर्थव्यवस्था, जो एक कृषि आधारित अर्थव्यवस्था थी, उसकी नाकामी का एक गहरा अध्ययन प्रस्तुत करती है। यह किताब इस बात पर जोर देती है कि आजादी के बाद भारत ने अपनी सीमित पूंजी और संसाधनों का इस्तेमाल बड़े उद्योग और बड़ी आधारभूत संरचना (इंफ्रास्ट्रक्चर) वाली परियोजनाओं में किया। जरूरत इस सीमित पूंजी को कृषि क्षेत्र में लगाने की थी, जिस पर लगभग 75वें वर्ष में देश की जनता आजादी के बाद आजीविका के लिए निर्भर थी। इसके उलट, चीन ने भूमि-सुधार, कृषि और लघु उद्योगों को अपने विकास मॉडल के केंद्र में रखा। इसलिए, तानाशाही होने के बावजूद, चीन ने विकास का वह रास्ता चुना, जो बहुसंख्यक जनता के हित में था और जिससे उसने भुखमरी को रोका और चीन में मानव पूंजी (शिक्षा और स्वास्थ्य) में प्रगति का मार्ग प्रशस्त हुआ। भारत में कृषि क्षेत्र को आजादी के बाद के विकास मॉडल का परिणाम आम जनता को भुगतना पड़ा है और जो कुछ हद तक हम अभी भी भुगत रहे हैं।

सोशलिज्म ऐंड पावरः दुनिया में समाजवादी आंदोलन की शुरुआत और उसके इतिहास की एक व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत करती है। किताब की प्रस्तावना के आखिरी पैरा में सच्चिदा जी लिखते है कि 'मैं सोशलिस्ट आंदोलन के सैकड़ों साथी कार्यकर्ताओं का शुक्रगुजार हूं, जिनकी बिना स्वार्थ के लगन ने मुझे यह यकीन दिलाया है कि एक आजाद और बराबरी वाला समाज बनाया जा सकता है। भले ही इस मकसद तक पहुंचने के लिए प्रकृति में कोई बड़ी योजना न हो' (नवंबर 1973)। इस किताब के आखिरी हिस्से में वे लिखते है कि 'यह पूरी शिद्दत से तो नहीं कहा जा सकता कि अहिंसक तरीके से किए गए काम कामयाब ही होंगे, लेकिन पिछले अनुभवों और इंसानी जुनून, गुस्से और उनके रूपों के

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 53

अध्ययन से यह तो अवश्य ही कहा जा सकता है कि हिंसक तरीकों से सत्ता परिवर्तन तो हो सकता है, लेकिन लोगों को सामाजिक न्याय नहीं मिल सकता। अहिंसा के अचूक तरीके को अभी सही तरह से आजमाया नहीं गया है। अगर लोग इसे सही तरीके से अपनाते हैं तो कोई वजह नहीं है कि इसे क्रांति की अलग-अलग बाधाओं का सामना करने और समाधान निकालने के लिए विकसित ना किया जा सके'।

इस किताब को पढ़ने के बाद मेरा मन बहुत उत्साह और उम्मीद से भर गया। मैं उसी समय केसला में किसान आदिवासी संगठन का काम शुरू करने वाली थी। और मुझे यह विश्वास मिला कि हम लोग सही दिशा में, अहिंसक तरीकों से, आंदोलन और निर्माण दोनों उद्देश्यों को साथ लेकर, आदिवासियों के बीच में यह काम शुरू कर रहे हैं और इसमें हमें जरूर सफलता मिलेगी। सच्चिदा जी समाजवाद के भविष्य को लेकर बहुत आशावादी थे और उन्होंने *समाजवाद के बढ़ते कदम* किताब में अपनी इस सोच के कई उदाहरण दिए हैं। इसके साथ ही उन्हें यह भी विश्वास था कि समाजवादियों के मौकापरस्त गठबंधन, जो सिद्धांतों या विचारधारा पर आधारित नहीं हैं, वे नाकाम ही होंगे। यह दुखद है कि समाजवादी धारा में इस तरह के अवसरवादी समूह उभरते रहते हैं।

केसला में रहना शुरू करने के बाद सच्चिदा जी से मेरा लगातार पत्राचार होता रहा। उससे जुड़ा एक वाकया याद आता है। मैंने अंगरेजी भाषा में पढ़ाई की थी और मेरे लिए अंगरेजी में चिट्ठी लिखना ज्यादा सुविधाजनक था। तो मैंने सच्चिदा जी को अंगरेजी में पत्र लिखना शुरू किया। मैं उनको पत्र - डियर सचिदा जी 'लिख कर शुरू करती थी। मेरे ऐसे एक पत्र को सुनील ने बाद में पढ़ा और कहा कि तुम्हें 'रेसपेक्टेड (आदरणीय) सच्चिदा जी' लिखना चाहिए वह ज्यादा सम्मानजनक है। मैंने जवाब दिया कि अंगरेजी में पत्र लिखने वाला कोई भी किसी को 'रेसपेक्टेड (आदरणीय)' लिखकर पत्र शुरू नहीं करता है। फिर सुनील ने सलाह दी कि मैं सच्चिदा जी को (और अशोक सेकसरिया जी को भी) हिंदी में पत्र लिखूं। मैंने जब सच्चिदा जी और अशोक जी दोनों से इस बारे में पूछा तो दोनों ने जवाब दिया कि वे त्रुटिपूर्ण हिंदी में लिखे पत्र के बजाय बेहतर अंगरेजी में लिखा हुआ पत्र पसंद करेंगे। उसके बाद मेरा सच्चिदा जी के साथ पत्राचार अंगरेजी में ही हुआ- मैं उनको अंगरेजी में लिखती और वे मुझे अंगरेजी में जवाब देते।

सच्चिदा जी के पत्र मेरे जीवन के कई अहम पहलुओं का हिस्सा बनें और उनको उन्होंने प्रभावित किया। अपने पत्रों के जरिए वे उन बातों को समझाते, जो मुझे उनकी किताबों और लेखों में समझ नहीं आती। इन पत्रों में राजनैतिक-सामाजिक चर्चाएं होती, एक-दूसरे के कार्य क्षेत्र में क्या चल रहा है, उसका विवरण होता, पर साथ ही मैं उनसे पारिवारिक और भावनात्मक बातें भी करती थी। केसला में अपने पूरे समय के दौरान, जब मैं बीमार थी, जब हम लोग आर्थिक समस्याओं से गुजर रहे थे और जब दूसरी पारिवारिक समस्याएं थीं, मुझे सच्चिदा जी के खतों से हिम्मत और संबल मिला। मैं उनके साथ कई तरह की बातें शेयर कर पाती थी।

सच्चिदा जी जी ने मेरे परिवार (मायका के कुछ रिश्तेदारों) से बढ़ती मेरी दूरी पर मेरी परेशानी को यह बताकर दूर किया कि हमारे राजनैतिक साथी ही हमारा सच्चा परिवार हैं। हम कभी-कभी खतों के जरिए काफी लंबी चर्चाएं करते। इन चर्चाओं के कुछ विषय जो मुझे याद आते हैं, वे हैंक्रोपोटकिन की कोऑपरेशन की थ्योरी, डार्विन की थ्योरी ऑफ एवोलूशन तथा पर्यावरण केंद्रित विकास का मॉडल।

सच्चिदा जी जब भी मुझसे मिलते मुझे प्रोत्साहित करते और मेरा मनोबल बढ़ाते। चुनाव के समय, जब वे जनसभाओं को संबोधित करने के लिए और चुनाव प्रचार में सहयोग के लिए केसला आते तो वे मुझे सलाह देते कि मैं जनसभाओं में बोलूं। मुझे स्टेज पर बोलने से हिचक होती है तो मैं आम तौर पर बड़ी भीड़ के सामने बोलने से बचती थी। पर सच्चिदा जी के प्रोत्साहन के बाद मुझे हिम्मत मिलती और फिर मैंने कई जनसभाओं में अपनी बात रखी। मुझे चीन के राजनैतिक-आर्थिक और सामाजिक पहलुओं में काफी रुचि थी और मैं एक समय पर उस पर काफी अध्ययन कर रही थी। जब मैंने सच्चिदा जी से इसका जिक्र किया तो उन्होंने मुझे काफी प्रोत्साहित किया और उनकी सलाह पर चीन के ऊपर किताब लिखने की एक साझा लेखन योजना बनी, जिसे उनके और सुनील के सहयोग से पूरा करने का प्लान था। इस किताब में चीन में वामपंथ से लेकर तथाकथित बाजार केंद्रित समाजवाद (मार्केट सोशलिज्म) तक के सफर का समालोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करने की योजना थी। लेकिन सुनील अपनी दूसरी व्यस्तताओं के चलते उसके लिए समय नहीं निकाल पाया और फिर वह प्रोजेक्ट कभी पूरा नहीं हुआ।

स्वाति जी के बाद सच्चिदा जी ही मेरे राजनैतिक गुरु हैं। असल में अगर ये दो महान लोग न होते तो शायद मैं राजनीति में आती ही नहीं और बाद में समता संगठन और समाजवादी जन परिषद में भी शायद शामिल नहीं होती। सच्चिदा जी के नैतिक मूल्य और दृष्टिकोण, कार्यशैली और काम करने के उसूल, राजनैतिक सिद्धांत और इन सैद्धांतिक मूल्यों का अनुसरण अतुलनीय है और यह मेरी दृष्टि में उनको महान बनाता है।

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 54

ऐसे बहुत कम लोग है समाजवाद की धारा में या उसके बाहर भी (वामपंथ या गांधीवादी धारा में), जिन्होंने सवर्ण और मध्यम वर्ग के होते हुए भी समाजवाद (विचारधारा) को स्थापित करने की लड़ाई में इस तरह का जीवन जिया, जो बहुत ही सादगीपूर्ण किन्तु सिद्धांतों पर अटल था। और जिन सिद्धांतों की बात उनकी लेखनी और वक्तव्य में थी, उसे उन्होंने अपनी जिंदगी मे शब्दशः लागू किया और जीवन में अनवरत उस विचारधारा को स्थापित करने के लिए काम किया और आखिर समय तक करते रहे।

हालांकि सच्चिदा जी खुद पिछले कुछ साल से अपने जीवन के अंत के बारे में कुछ दार्शनिक अंदाज में बात करने लगे थे, पर फिर भी मन में संतोष था कि सच्चिदा जी हैं और उनका साया है मेरे ऊपर।

उनका इस दुनिया से चले जाना मेरे लिए बहुत बड़ा धक्का है और व्यक्तिगत रूप से बहुत बड़ा नुकसान भी। वे एक ऐसी शक्तिशाली सकारात्मक आवाज थे, जो हमेशा मानते थे कि समाजवाद की वह परिकल्पना जो समता और सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक न्याय को केंद्र में रखती है और उसको स्थापित करने की दिशा में काम करती है, वह विचारधारा ही इस दुनिया में आखिर में जीतेगी। आज मौत के आगमन से कुछ लोगों को लग सकता है कि उनकी इस आवाज को नियति (समय) ने चुप करा दिया है। पर मैं इस बात को नहीं मानती और मेरा विश्वास है कि उनकी किताबें और लेख और उनका प्रेरणादायक जीवन, हमें आज की दुनिया में बढ़ती हुई तानाशाही और अलगाववादी ताकतों से लड़ने और आगे बढ़ने में मदद करेंगे।

सच्चिदा जी का जीवन, उनका काम, एक प्रेरणा और उम्मीद है, जो मेरे जीवन के आखिर समय तक मेरे साथ रहेगी और मुझे विश्वास है आने वाली पीढ़ी को भी दिशा दिखाने का काम करेगी। ■

अनुवाद : शिउली वनजा

खामोश रुख्सत, बुलंद विचार

बृज खंडेलवाल

यह लेख समाजवाद के उस गौरवशाली, विचारशील इतिहास को समर्पित है, और उन ऋषि-स्वभाव (संत सरीखे) व्यक्तित्वों को भी, जिनमें सच्चिदानंद सिन्हा जैसे लोग शामिल हैं, जो राजनीति को सत्ता का खेल नहीं, बल्कि सच की तलाश मानते थे।

समाजवाद किसी एक दिमाग की पैदाइश नहीं था। यह औद्योगिक क्रांति के बाद पैदा हुई अमानवीय परिस्थितियों के खिलाफ इंसानियत की सामूहिक बगावत थी। अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में, जब यूरोप की फैक्ट्रियां मजदूरों को मशीनों का पुर्जा बना रही थीं, तब रॉबर्ट ओवेन और चार्ल्स फूरिये जैसे ख्वाब देखने वालों ने सहयोगी समाजों की कल्पना की। बाद में कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स ने समाजवाद को वैज्ञानिक आधार दिया। उन्होंने बताया कि इतिहास वर्ग संघर्षों की कहानी है और आखिरी जीत मेहनतकश वर्ग की होगी।

बीसवीं सदी में समाजवाद ने कई शक्लें लीं। रूस में लेनिन ने इसे क्रांति का रूप दिया। जर्मनी में रोजा लक्जमबर्ग ने चेताया कि लोकतंत्र के बिना समाजवाद बेमानी है। भारत में समाजवाद की यात्रा और भी अनोखी रही। आचार्य नरेंद्र देव, जयप्रकाश नारायण (जेपी) और डॉ. राम मनोहर लोहिया ने इसे सिर्फ आर्थिक सिद्धांत नहीं रहने दिया, बल्कि गांधीवादी नैतिकता और भारतीय गांवों की सच्चाई से जोड़ा। यहां समाजवाद सत्ता हथियाने की नहीं, समाज को नीचे से बदलने की सोच थी। इसी शांत, नैतिक और सवाल पूछने वाली परंपरा के प्रतिनिधि थे साथी सच्चिदानंद सिन्हा।

आज, जब नारे सोच की जगह ले चुके हैं और जल्दबाजी ने गहराई को पीछे छोड़ दिया है, सच्चिदा जी की कमी और भी ज्यादा महसूस होती है। वे याद दिलाते हैं कि सच्ची महानता ऊंची आवाज में नहीं, बल्कि ईमानदार, सादगी भरी और विचारशील जिंदगी में होती है

19 नवंबर 2025 को बिहार के मुजफ़्फ़रपुर जिले के छोटे से गांव मनिका में सच्चिदानंद सिन्हा की जीवन-यात्रा चुपचाप थम गई। उम्र 97 वर्ष। न कोई ब्रेकिंग न्यूज, न टीवी पर बहस, न सोशल मीडिया पर हंगामा। लेकिन उनके जाने के साथ ही भारतीय समाजवाद का एक ईमानदार, सादा और आत्मालोचन से भरा अध्याय भी विदा हो गया।

उन्होंने पूरी जिंदगी दिखावे से दूरी

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 55

बनाए रखी। न मंचों की चाह, न ओहदों का लालच। वे उन विरले समाजवादियों में थे, जो अपने विचार भाषणों से नहीं, अपने जीवन से जीते थे। हमारे पुराने संपादक ट्रेवर ड्रीबर्ग उन्हें ट्रॉट्स्की से प्रेरित समाजवादी कहा करते थे। सच्चिदा जी अक्सर श्रीलंका से आए ट्रॉट्स्कीवादियों की चर्चा करते थे, जिन्होंने 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में हिस्सा लिया था। उनके लिए इतिहास तारीखों का ढेर नहीं, जिया हुआ अनुभव था।

लियोन ट्रॉट्स्की की 'स्थायी क्रांति' की अवधारणा उन्हें इसलिए पसंद थी, क्योंकि वह स्टालिन के 'एक देश में समाजवाद' के विचार को खारिज करती थी। उनका मानना था कि जब तक दुनिया से पूंजीवाद खत्म नहीं होता, समाजवाद सुरक्षित नहीं रह सकता। यह नैतिक बेचैनी सच्चिदा जी के साथ जीवन भर रही।

करीब दो दर्जन किताबें और अनगिनत लेख, यही उनकी असली पूंजी थी। उनके कई लेख नेशनल प्रेस एजेंसी द्वारा सिंडिकेट किए गए, जहां मैं सहायक संपादक था। फिर आपातकाल थोपा गया। स्वतंत्र सोच पर ताले लग गए।

उन दिनों सच्चिदा जी लोधी कॉलोनी की एक साधारण बरसाती में रहते थे। हम पास ही ब्लॉक 18 की बरसाती में रहते थे। पारसनाथ चौधरी, बिहार के वर्मा जी, सब आसपास ही थे। रोज मुलाकात हो जाती। कभी कनॉट प्लेस के कॉफी हाउस में, कभी यूएनआई कैंटीन के लॉन में, घंटों बहस चलती रहती।

राजनीति, समाज, कला, खेती, कोई विषय वर्जित नहीं था। उनका जीवन बेहद सादा था, ब्रेड या खिचड़ी। बस। ऐसा कभी नहीं लगा कि वे इस धरती पर बोझ हैं।

बहसें तीखी भी होती थीं। हमें उनके विचार कभी-कभी ज्यादा आदर्शवादी लगते थे। वे हर मुद्दे पर सैद्धांतिक रुख लेते थे। मजाक में हम उन्हें 'मार्क्सवादी गांधीवादी' कहा करते थे। लेकिन मतभेदों के बावजूद रिश्तों में कभी कड़वाहट नहीं आई। वे परिवार के बुजुर्ग की तरह हमें राह दिखाते रहे। उनकी कई अंगरेजी किताबें मेरी पत्नी पद्मिनी ने टाइप कीं। उनकी लिखावट बेहद बारीक, लेकिन साफ थी, बिल्कुल उनके विचारों की तरह। एक तरफ तीखा राजनीतिक विश्लेषण, दूसरी तरफ यूरोपीय कला और चित्रकला पर गहरी समझ। खेती, ग्रामीण जीवन, आध्यात्म, पक्षी, फूल, पत्ते, हर चीज पर वे घंटों बात कर सकते थे। उनके साथ समय बिताना अपने आप में सौभाग्य था।

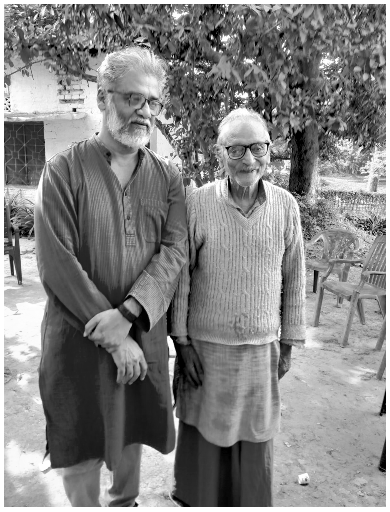

भाकपा-माले के दीपांकर भट्टाचार्य के साथ।

1928 में एक संपन्न परिवार में जन्मे सच्चिदा जी बचपन से ही आजादी की हवा में पले। लेकिन ऐशो-आराम ने उन्हें कभी नहीं लुभाया। पढ़ाई बीच में छोड़कर उन्होंने किताबों के बजाय जिंदगी से सीखने का फैसला किया।

वे मजदूर बने, रेलवे स्टेशन पर कुली बने, खदानों में उतरे, मिलों में पसीना बहाया। यह कोई नाटक नहीं था, बल्कि विचारों को जीने की सच्ची कोशिश थी।

दिल्ली में रहते हुए भी उनका दिल गांव में ही बसता था। अंततः वे मनिका लौट गए। मिट्टी की खुशबू, आम के पेड़ और गांव की धीमी रफ्तार, यहीं उन्होंने जीवन के आखिरी साल बिताए। न किसी विश्वविद्यालय से नाता, न सत्ता के गलियारों से। पढ़ना, सोचना और मिलने आने वालों से शालीन बातचीत, यही उनकी दुनिया थी।

डिग्रियां उनके पास नहीं थीं, लेकिन ज्ञान अथाह था। हिंदी, अंगरेजी, फ्रेंच और जर्मन, चार भाषाओं पर पकड़। उन्होंने मार्क्स, गांधी, लोहिया और रोजा लक्जमबर्ग को पढ़ा, लेकिन किसी के अंध अनुयायी नहीं बने। सवाल करना, बहस करना और सच की तलाश, यही उनका धर्म था।

द इंटरनल कॉलोनी, द बिटर हार्वेस्ट, केऑस ऐंड क्रिएशन और *इमरजेंसी इन पर्सपेक्टिव* जैसी किताबों में उन्होंने समाज, राजनीति, कला और तानाशाही पर गहरी और आज भी प्रासंगिक दृष्टि दी। *द इंटरनल कॉलोनी* विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसमें उन्होंने कहा कि आजादी के बाद भारत में आंतरिक उपनिवेशवाद पैदा हो गया। शहर नए शासक बन गए और गांव नए उपनिवेश। गांवों से कच्चा माल और सस्ती मजदूरी ली गई, लेकिन विकास शहरों तक सीमित रहा। बिहार जैसे खनिज-समृद्ध राज्यों से लोहा और कोयला निकला, पर लोग गरीब ही रहे। उनके अनुसार, जब तक सत्ता और संसाधन गांवों तक नहीं पहुंचेंगे, समाजवाद अधूरा रहेगा।

सच्चिदानंद सिन्हा से मिलकर कोई भी मायूस नहीं लौटता था। वे सोचने को मजबूर करते थे, लेकिन उम्मीद भी देते थे। वे अविवाहित रहे, तारीफ से झिझकते थे और आत्म-प्रचार से नफरत करते थे।

आज, जब नारे सोच की जगह ले चुके हैं और जल्दबाजी ने गहराई को पीछे छोड़ दिया है, सच्चिदा जी की कमी और भी ज्यादा महसूस होती है। वे याद दिलाते हैं कि सच्ची महानता ऊंची आवाज में नहीं, बल्कि ईमानदार, सादगी भरी और विचारशील जिंदगी में होती है।

उनकी विदाई भले ही खामोश रही हो, लेकिन उनकी विरासत आज भी बोलती है, धीरे, गहराई से, और दूर तलक। ■

संस्मरण

पवित्र जिंदगी और सोच

विनोद पय्यादा

वह मौत भी जिंदगी जितनी ही आसान थी। एकदम शांत और बिना किसी जल्दबाजी के, हल्की हवा के साथ, शरीर को आंगन की मिट्टी में छोड़कर, सच्चिदा जी एक सहज और मासूम-सी मुस्कान के साथ, फूलों की खुशबू और तोतों की चहचहाहट के साथ गए होंगे। वे ऐसे भी जा सकते थे! जो लोग उन्हें करीब से जानते हैं, उन्हें बिल्कुल भी हैरानी नहीं होगी।

सच्चिदानंद सिन्हा का राजनैतिक योगदान यह है कि उन्होंने भारतीय समाजवादी सोच को नए सिरे से परिभाषित किया और उसे आगे बढ़ाया। उनके पास राजनैतिक घटनाओं का मशीनी विश्लेषण नहीं था। जहां उनके साथ चलने वाले कई लोग समाजवाद को एक रूढ़ विचार के रूप में देखते थे, वहीं उनके लिए समाजवाद एक जीवंत विचार था, जो लगातार विकसित होता रहता है। उन्होंने सत्ता के हर तरह के दबदबे का विरोध किया।

वे लोहिया से आगे बढ़े, जिन्होंने उपनिवेशवादियों के खिलाफ सोशलिस्ट सोच को विकसित किया था और पूंजीवादी विकास की उपनिवेशवादी जड़ों को ढूंढा था। उन्होंने लोहिया के पूंजीवादी विश्लेषण के इनर-आउटर सर्कल थ्योरी के आधार पर भारत में विकास के नेहरूवादी मॉडल में शहरी-ग्रामीण संबंधों की जांच की और समझाया कि पूंजीवादी उत्पादक ताकतों पर आधारित आधुनिक विकास मॉडल में दोनों सर्कल एक अर्थव्यवस्था के भीतर मौजूद होते हैं। उन्होंने देखा कि शहरों और उत्पादन क्षेत्रों के बीच संबंध, जो भारत में उत्पादन के केंद्र हैं, और गांवों और उत्पादन क्षेत्रों के बीच संबंध, जो संसाधनों के स्रोत हैं, औपनिवेशिक नीतियों पर आधारित हैं और इसी तरह, यह उत्पादन प्रणाली और देश के ग्रामीण, जो संसाधनों के असली मालिक हैं, और पारंपरिक श्रमिक, जो अपनी आजीविका के लिए संसाधनों का उपयोग करते हैं, निचली जातियां और झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वाले गरीब, एक क्षेत्रीय कॉलोनी में मौजूद हैं। लोहिया के विपरीत, सच्चिदानंद सिन्हा ने पूंजीवाद की प्रकृति को समझने के लिए पूंजीवाद की उपभोक्ता संस्कृति को एक पैमाने के रूप में लिया। इसीलिए वे भारतीय समाजवादी सोच में उदासीनता और अलगाव को महत्वपूर्ण तत्वों के रूप में देख पाए। सच्चिदानंद सिन्हा आधुनिक समाजवादी सोच को इंसान और इंसान के बीच और देशों के बीच लोकतंत्र और समानता पर आधारित संबंधों के संदर्भ में भी देख पाए, जो इंसान और प्रकृति में अन्य जीवित प्राणियों के बीच मौजूद होना चाहिए।

लोहिया समेत सोशलिस्ट विचारक और नेता एक मजबूत नेशन-स्टेट के हिमायती थे, क्योंकि उन्होंने नेशनल मूवमेंट के असर में अपनी राजनैतिक गतिविधियां शुरू कीं और आजादी की लड़ाई का नेतृत्व किया। सच्चिदा जी ने सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक ताकतों के विकेंद्रीकरण के तरीकों से राज्यसत्ता के असर को कमजोर करने की बात की, जबकि लोहिया की दलील भारत के नेशन-स्टेट को मजबूत करने के पक्ष में थी। लोहिया ने यूरोपीय औद्योगिक क्रांति के औपनिवेशिक प्रकृति के बारे में सही अंदाजा लगाया था। लेकिन यह सच्चिदानंद सिन्हा हैं, जिन्होंने नेशन-स्टेट के बनने और उपनिवेशवादी शोषण के बीच अंदरूनी रिश्ते को गहराई से समझा है। सच्चिदानंद सिन्हा यह देख पाए कि भारतीय संसद देश के उपनिवेशवादी मॉडल के विकास के लिए बड़ी संस्था में तब्दील हो गई। उन्होंने संसद की आलोचना की कि यह संसाधनों पर देश में गांव के लोगों के अधिकारों और उन तक उनकी पहुंच को खत्म करने और बड़ी कंपनियों के लिए संसाधनों का शोषण आसान बनाने के एक जरिया के तौर पर काम कर रही है। उन्होंने आजादी की लड़ाई के दौरान बनी राष्ट्रवाद की अवधारणा की गहराई से फिर से जांच की। उन्होंने इस बात की कड़ी आलोचना की कि भारतीय राष्ट्रवाद शोषण-मुक्त अवधारणा की तरह विकसित नहीं हो पाई। इस बारे में उनके विचार को इस तरह संक्षेप में बताया जा सकता है।

नेशनलिज्म का अवधारणा पूरी तरह आभासी अवधारणा है

भारत के इतिहास में कभी भी कहीं भी राष्ट्र-राज्य की अवधारणा नहीं थी और यूरोप में भी यह कोई पुरानी अवधारणा नहीं थी, ग्रेट ब्रिटेन खुद 1688 की क्रांति के बाद कई हिस्सों को मिलाकर बना था, और यूरोप में राष्ट्रवाद की बात 17वीं सदी में पूंजीवाद के विकास के साथ शुरू हुई, फ्रांसीसी क्रांति तक राष्ट्र की कोई अवधारणा नहीं थी। राष्ट्रवाद उसी क्रांति से शुरू होता है, जो सीधे मोनोपॉली व्यवस्था से जुड़ी है।

आज भारत में छोटे समूह और हाशिए के समाज को खत्म करके एक केंद्रीय तानाशाही कायम करने के लिए राष्ट्रवाद का इस्तेमाल किया जा रहा है। सच्चिदानंद सिन्हा के विचार इस दौर में सबसे प्रासंगिक हैं, जब हम दुनियावी फासीवाद से लड़ने के लिए तौर-तरीके ढूंढ रहे हैं। ■

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 57

बड़े भईया

रामेश्वर दुबे

यह बात 1987 की है, जब सच्चिदानन्द सिन्हा के छोटे भाई डॉ. अरविन्द सिन्हा से मेरी पहली मुलाकात धनबाद में इंडियन स्कूल ऑफ माइंस (आइएसएम) मेरे एमटेक करने के दौरान हुई। कुछ महीनों बाद जब मैं पटना आया, तो अरविन्द जी के घर पर डॉ. प्रभाकर सिन्हा से मुलाकात हुई। प्रभाकर भईया से मिलने के बाद तो मैं लोक स्वातंत्र्य संगठन (पीयूसीएल) का आजीवन सदस्य बन गया। 1988 में प्रभाकर भईया के यहां मुजफ्फरपुर स्थित आवास- नेपाली कोठी में दो-तीन दिन रुका। उसी समय प्रभाकर भईया ने ही बड़े भईया से मनिका में परिचय कराया। अगले दिन नेपाली कोठी से मनिका गया। मैं दो-तीन दिन बड़े भईया के साथ रहा। उस समय उनके निवास का नाम चमेला कुटीर नहीं था। वह नाम बाद में रखा गया।

इसी दौरान शूमाकर की पुस्तक *स्मॉल इज ब्यूटीफुल* पर विस्तृत चर्चा हुई। इस पुस्तक का मेरे जीवन पर गहरा प्रभाव था। गांधीजी की आत्मकथा *माई एक्सपेरिमेंट विद ट्रूथ* पर भी विस्तृत चर्चा के बाद बड़े भईया की लिखी पुस्तक *एन अनार्म्ड प्रोफेट* पढ़ी। पटना में मेरी पोस्टिंग के दौरान 1992 तक तो अनेक बार बड़े भईया से मिलने, उनके साथ एक-दो दिन रहने और विविध विषयों पर चर्चा कर उनसे ज्ञान प्राप्त करने का अवसर मिला।

यह बात 1989-90 की होगी। अक्टूबर-नवंबर का महीना रहा होगा। मैं दो दिन भईया के साथ चमेला कुटीर में रहा। चमेला कुटीर नाम रखने के पीछे का कारण भी भईया ने बताया कि भईया के बाबा (दादाजी) की नानी चमेलाजी कैसे जातिगत भेदभाव के कारण प्रगाढ़ रूप से प्रताड़ित वंचित एवं अछूत कही जाने वाली जाति के लोगों की सहायता करती थीं। इसी दौरान दो पुस्तकें- *रिकलेक्टिंग द फ्यूचर* और *ह्यूमन जू* भईया ने मुझे अध्ययन के लिए सुझाईं। इसी मिलन के दौरान भईया ने 'सामयिक वार्ता' पत्रिका की चर्चा की और मैं 'सामयिक वार्ता' का आजीवन सदस्य बन गया। एक पुस्तक और 'चाचा टॉम की कुटिया' पढ़ने के लिए भईया ने सुझाया।

दूसरी घटना, संयोग की घटना। यह बात 1997 अक्टूबर की है। मैं सपरिवार (तीन बच्चे एवं पत्नी सहित) ऊना इनक्लेव, मयूर विहार फेज-1 दिल्ली में एक कमरे के मकान में रहता था। बड़े भईया की भतीजी यानी अरविन्द जी की बड़ी बेटी प्रियंवदा सिन्हा (मीठू) वहीं सहयोग अपार्टमेंट में रहती थी। उसके मकान मालिक ने मकान खाली करने के लिए सूचना दे दी थी। वह मेरे पास आई और यह तय किया गया कि मैं बड़ा घर दो कमरों वाला ले लूं, जिससे वह हमारे साथ रह सके। भईया वहां आए थे।

यह बात 2004 की है। मेरा बेटा कॉलेज की पढ़ाई के साथ-अरविन्द गौड़ के अस्मिता थियेटर में सक्रिय था। उसने बताया कि मैं अस्मिता थियेटर के साथ मुंबई में वर्ल्ड सोशल फोरम के तीन दिन के प्रोग्राम में जा रहा हूं।

मेरा भी हौसला बढ़ा और मैं उसमें शामिल होने की योजना मन ही मन बनाने लगा। उत्साह में भईया को पत्र लिखा। भईया, मुझे बहुत खुशी हो रही है कि सोवियत संघ और चीन में साम्यवाद के प्रयोग की शिथिलता, असफलता या बदलाव के बाद पूंजीवाद के बेरोकटोक बढ़ते कदम को रोकने के लिए वर्ल्ड इकॉनोमिक फोरम के विरुद्ध वर्ल्ड सोशल फोरम का दूसरा आयोजन मुंबई में हो रहा है। (पहला आयोजन जेनेरियो- ब्राजील में हुआ था।) शायद इससे पूंजीवाद पर कुछ ब्रेक लग सके।

भईया का पत्र आया। उन्होंने लिखा, यह भानुमति का पिटारा है। किसी बड़े बदलाव के लिए दृढ़ इच्छा, कर्मठता एवं प्रबल निष्ठा की आवश्यकता होती है। तरह-तरह के विचार के ऐसे एनजीओ के लोग मिलकर किसी मुद्दे पर जलसा तो कर सकते हैं, पर उससे बदलाव की आशा मृगतृष्णा ही है। इसे धन एवं संसाधन का एक तरीके से अपव्यय ही कह सकते हैं।

मैंने लिखा- भईया, मैं इससे सहमत नहीं हो पा रहा हूं। मैं बहुत उमंग और उत्साह से वर्ल्ड सोशल फोरम के आयोजन में शरीक हुआ। वहीं अरविन्द जी पटना से आए। कुछ समाजसेवी साथियों से मुलाकात आयोजन के दौरान हुई।

मैं घर आया, भईया का पत्र मिला। वर्ल्ड सोशल फोरम में सम्मिलित होने के पहले के मेरे पत्र के उत्तर में भईया ने लिखा- 'दुबेजी, आपका पत्र मिला। इस पर हमारे- आपके बीच विचारों की साम्यता नहीं है। हमारे आपके संबंध मात्र इसलिए हैं कि हम और आप एक प्रदेश के निवासी हैं।' यह पढ़ते ही मुझे आघात लगा। इसी बीच एक दिन अरविंद जी आए और मैंने ये सारी चर्चा उनसे की। भईया का पत्र आया, स्नेह भरा, आशीर्वाद भरा, प्रेरित और उत्साहित करने वाला, बिना पीछे के पत्रों का जिक्र किये।

बात सितंबर 2006 की है। बड़े भईया को दो-तीन व्याख्यान देने के लिए दिल्ली आमंत्रित किया गया था। ये व्याख्यान साहित्य अकादमी सभागार एवं दिल्ली विश्वविद्यालय में होना था। उनके ठहरने का इंतजाम दिल्ली विश्वविद्यालय के नॉर्थ कैंपस में अतिथि गृह में किया गया था। अगले दिन भईया से मिलने दिल्ली विश्वविद्यालय के अतिथि गृह पहुंच गया। भईया बोले, दुबेजी, यहां सुविधा तो है, पर ये तामझाम मुझे अटपटा लगता है। ये लक्जरी मुझे पसंद नहीं है। मैं आपके घर चलूंगा। मुझे बहुत खुशी हुई। पर मैंने

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 58

कहा- भईया, मैं अब दिल्ली में नहीं हूं। मैंने वसुंधरा गाजियाबाद में एक फ्लैट ले लिया है, उसी में अभी हाल में ही शिफ्ट किया हूं। साहित्य अकादमी व्याख्यान देकर रात में मेरे घर आए। दो-तीन दिन घर पर रहे।

उसी दौरान एक घटना यह हुई थी कि भारतीय हिन्दी संस्थान, भारत सरकार ने 'हिन्दी सेवी सम्मान योजना' के तहत वर्ष 2004 का 'महापंडित राहुल सांकृत्यायन पुरस्कार' से भईया को सम्मानित करने का निर्णय लिया। इसमें सम्मान स्वरूप एक लाख रुपये, एक शॉल, तथा प्रशस्ति-पत्र महामहिम राष्ट्रपति जी के कर-कमलों द्वारा 14 सितंबर को राष्ट्रपति भवन में दिया जाना प्रस्तावित था। परन्तु भईया ने यह पुरस्कार लेना यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया कि- 'दरअसल, किसी भाषा या साहित्य की सेवा एक सामूहिक प्रयास से ही संभव होता है और अनेक लोग अलग-अलग तरह से इसमें योगदान करते हैं। एक, दो या थोड़े से लोगों को पुरस्कृत करना इस प्रयास में लगे दूसरे लोगों के योगदान को नजरअंदाज करना है। शायद ऐसे पुरस्कारों के पीछे हिन्दी लेखन को प्रोत्साहित करने का इरादा काम करता है, लेकिन मुझे लगता है कि इसके लिए प्रयास यह होना चाहिए कि निष्ठापूर्वक अच्छे लेखन को चयनित कर संस्थान के संसाधनों और सामाजिक ढांचे के जरिए इसे ज्यादा से ज्यादा लोगों के लिए उपलब्ध कराया जाए। अगर हिन्दी भाषी विशाल जनसंख्या में पढ़ने की रुचि जगी, तो स्वतः अच्छे लेखन और लेखकों की बाढ़ आ जाएगी। आशा है संस्थान मेरे सुझाव पर विचार करेगा। आपने मुझे अपने पुरस्कार के योग्य समझा, इसके लिए आभारी हूं। आशा है आप मेरी अस्वीकृति के पीछे की भावना को समझेंगे और इसके लिए क्षमा करेंगे।'

मैंने सुना था कि बड़े भईया उस किसी शादी- विवाह में शरीक नहीं होते थे, जिसमें तिलक-दहेज का लेन-देन हुआ हो। मैंने भी यह प्रण किया हुआ था कि जहां तिलक-दहेज की मांग होगी, वहां मैं अपनी बेटियों का रिश्ता नहीं करूंगा और अपने बेटे की शादी में मेरी कोई मांग नहीं होगी। बड़े भईया 2008 में अस्सी वर्ष की उम्र में भी मनिका से सीतापुर मेरी बड़ी बेटी की शादी में आए, यह हमारा सौभाग्य रहा।

1995 में मेरी पहली पुस्तक काव्य नाटक- *उत्पादकता के संगः श्रमिक और प्रबंध* प्रकाशित हुई। बड़े भईया बोले-श्रम संबंध, उत्पादकता, तकनीकी और प्रबंधकीय विषय पर छंद में नाटक विश्व में क्षेत्रीय भाषा में शायद यह पहला प्रयोग है। मेरा एकमात्र उपन्यास *वह कहती रही* पढ़कर भईया ने मुझे लिखते रहने के लिए बहुत प्रेरित किया। मेरी एक 'युद्ध' कविता की अंतिम चार लाइन भईया ने ही जोड़ा था, तभी जाकर यह कविता में निखार आया।

युद्ध हमेशा से था, है, रहेगा,
युद्ध की विभिषिका थी, है, रहेगी
राजा का युद्ध राजा के लिए प्रजा
हमेशा लड़ती थी, लड़ती है, लड़ती रहेगी
चाहे हो युधिष्ठिर, दुर्योधन, कृष्ण, शकुनी का राजतंत्र
या हो बुश, ब्लेयर, वाजपेयी का प्रजातंत्र
राजा का लालच, राजा की महत्वाकांक्षा, राजा का घमंड
राज का फरेब, राज का झूठ, राज का षड्यंत्र।
ये सब हमेशा से थी, है, रहेगी
रोग, गरीबी, भुखमरी, भ्रष्टाचार
पहले से ही बढ़ी थी, बढ़ती है, बढ़ती रहेगी
क्योंकि लड़ाई हमेशा से होती थी, होती है, होती रहेगी।
पर एक लड़ाई और भी थी जनता की अपनी
जिसे जनता लड़ती रही है, आगे भी लड़ेगी
सभी शासकों, राजाओं एवं युद्धों के खिलाफ
जिसमें जनता जीतेगी या पूरी दुनिया मरेगी।

यह बात 1999 की है। भईया मीठू की शादी में हमारे घर ऊना इनक्लेव, मयूर बिहार फेज-1, दिल्ली आए हुए थे। चर्चा गाड़ियों में लाल, पीली बत्ती और सायरन लगाने की हो रही थी। बड़े भईया ने कहा - यह हमारे ट्राईबल मेंटिलिटी का द्योतक है। कबीलाई मानसिकता हमारे जेनेटिक कोड में है। जैसे कबीलाई सरदार अपने सर पर तरह-तरह के पक्षियों के रंग-बिरंगी पंख, पशुओं की सींग या बदन पर उनके छाल अपनी विशिष्ट पहचान के लिए लगाते थे, वैसे ही आज ये 'विशिष्ट जन' अपनी पहचान के लिए गाड़ियों में रंग-बिरंगी बत्ती एवं सायरन लगाते हैं।

बात 2008 की है। 30 अगस्त, 2008 को अनेक शहरों- दिल्ली, कोलकाता, मुंबई, पटना से अनेक साथी मुजफ्फरपुर पहुंचे। वहां उनके परिवार एवं साथियों के बीच भईया का अस्सीवां जन्मदिन बहुत सादगी से परन्तु उमंग एवं उत्साह से मनाया गया। उस दिन बिहार विश्वविद्यालय के एल.एस. कॉलेज के सभागार में उनकी रचनाओं पर सेमिनार का आयोजन किया गया, जिसमें उपरोक्त साथियों के अलावा अनेक विद्वानों ने विचार रखे। रात को जब सिकन्दपुर स्थित मनोरमा दीदी के मकान में, जहां बाहर से आए सब लोग ठहरे थे, चर्चा शुरू हुई कि भईया अपने जन्मदिन की वर्षगांठ मनाने की अनुमति नहीं दे रहे थे, कैसे-कैसे उन्हें मनाया गया। इसी पर राजकिशोर जी ने कहा, यह बड़ी विचित्र बात है। हम लोगों से गाय पर लेख लिखने के लिए कहा जाता है, तो क्या हम लोग गाय से परमिशन लेकर लेख लिखते हैं? और अगर हम लोग गाय से बिना अनुमति लिए उस पर लेख लिखते हैं, तो सच्चिदा जी का जन्मदिन मनाने के लिए उनके परमिशन का क्या औचित्य है? सभी लोग जोर-जोर से ठहाके लगाने लगे, भईया भी।

मैं तो भईया का सशरीर अंतिम दर्शन नहीं प्राप्त कर सका, क्या उनका अशरीर अंतिम दर्शन (गुणों) को प्राप्त कर पाऊंगा, शायद नहीं। प्रार्थना है, आने वाली पीढ़ी में कोई उन्हें प्राप्त कर सके, लोहियाजी की तरह कुजात गांधीवादी और सच्चिदानन्द सिन्हा (बड़े भईया) की तरह विजातीय संत बन सके। ■

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 59

सच्चिदा जी हमेशा याद रहेंगे

जसवीर अरोड़ा

उनसे मिलने का मन बहुत दिनों से था, खासकर जब से अशोक सेकसरिया जी से उनके बारे में सुना था : 'मेरी नजर में तो एक ही इंसान है, जो जी रहा है, उस तरह जैसे एक समाजवादी को जीना चाहिये, गांव में पूरी सादगी और विचार सम्मत आचार से।' मिलना हो पाया पहली बार 2012 में दिल्ली के गांधी शांति प्रतिष्ठान में। वे 2 अक्टूबर को गांधी स्मृति व्याख्यान के लिए आए थे।

उसके बाद फोन पर ही तीन-चार बार सच्चिदा जी से थोड़ी बात हुई। शायद 2016 में संजय भारती की किताबों के विमोचन के मौके पर पटना जाना हुआ। वहीं से हम लोग (संजय भारती, संजय गौतम और मैं) मुजफ्फरपुर गए। प्रभाकर जी के घर ही सच्चिदा जी से पहली बार टिककर यह मुलाकात हुई। फिर दो साल बाद : जून 2018 में : मेरी पोस्टिंग हो गयी हाजीपुर में... और वहां पहुंचकर शुरू हुआ सिलसिला मनिका-तीर्थ की यात्राओं का।

यूं तो उन्होंने बहुत सारे विषयों पर बहुत कुछ लिखा, लेकिन उनकी छोटी-सी पुस्तिका *उपभोक्तावादी संस्कृति का जाल* (रोशनाई प्रकाशन) ने मेरे मानस पटल पर बहुत गहरा असर छोड़ा। इस किताब में वे लिखते हैं, 'सौन्दर्य की दृष्टि से एक ही रंग का सारा लिबास रखना भोंडी चीज है। सौन्दर्य रंगों की विविधता और उपयुक्त संयोजन से आता है। इसी कारण राजस्थान की सरल ग्रामीण महिलाएं अपने सस्ते लिबास में भी रंगों के उचित संयोजन से जहां इकट्ठी होती हैं, फूलों की क्यारियों सी सज जाती हैं।'

सामाजिक और आर्थिक विषमता (गैर-बराबरी), विकास की अंधाधुंध दौड़ में प्रकृति और पर्यावरण पर छायी धुंध, राजनीतिक तंत्र की केंद्रीकृत व्यवस्था और तानाशाही जैसे सवालों से घिरे आज के नौजवान को सच्चिदानंद सिन्हा जी के जीवन और विचारों से बहुत कुछ सीखने को मिल सकता है और समाधान के लिये सही दिशा भी।

सच्चिदाजी सदा स्मृतियों में रहेंगे : जब भी मुजफ्फरपुर का कोई मिलेगा, जब भी उनकी किताब दिखेगी शेल्फ में और जब भी कहीं समाजवाद की चर्चा होगी। ■

बाबा, तुम्हारे रोशनदान से झांकती हैं प्रकाश की किरणें...

शेफाली

किताबों के रोशनदान से झिलमिलाती रोशनी कई बार पथ के दीपक बन जाती हैं। कई बार ऐसा भी होता है कि किताबों में सिर्फ शब्द होते हैं, वाक्य होते हैं, पन्नों में सिमटे सकुचाये। उनमें झरोखे या रोशनदान नहीं होते। जिन किताबों में रोशनदान होते हैं, वे रोशनदान आकाश की ओर खुलते हैं। प्रकाश और विभिन्न रंगों की ओर। सच्चिदा जी की हर किताब में एक रोशनदान है, जिनसे प्रकाश की किरणें समस्याओं पर बात करती, समस्याओं की जड़ को तलाशती, एक एक सूक्ष्म तत्वों को बारीकी से देखती, वर्तमान और भविष्य के असर को पहचानती, समाधान दिखाती हैं। एक छायादार वृक्ष की तरह हैं उनकी किताबें। समाजवादी वर्ग का एक तबका ऐसा है, जो यह मानता है कि उनकी किताबों की भाषा कठिन है, आसानी से समझ में नहीं आने वाली। मगर हम कुछ लोग ऐसे हैं, जो इस बात से सहमत नहीं। एक प्रयोग के माध्यम से भी इसे हमने जाना। सच्चिदा जी की किताब *उपभोक्तावादी संस्कृति का जाल* और *नक्सल आंदोलन का वैचारिक संकट* लेकर जब हम युवा होते छात्रों के पास पहुंचे, उसके कुछ अंश को साझा किया तो उन्होंने बड़ी संजीदगी से उसे सुना और सामयिक विषयों को उससे जोड़ते हुए अपनी प्रतिक्रिया दी। एक बार सच्चिदा जी से यह प्रश्न मैंने किया- 'आपकी जीवनी लिखने के दौरान मैं कई लोगों से मिली, उनमें से कुछ लोगों का यह मानना है कि आपकी किताबें आसानी से समझी जाने वाली नहीं हैं, इनमें कुछ

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:56 Page 60

समाजवादी कार्यकर्ता भी शामिल हैं। क्या आपको भी ऐसा लगता है?' उन्होंने पूछा, 'कौन सी किताबें नहीं समझ आती हैं?' जब मैंने उन्हें बताया कि मेरे इस प्रश्न के उत्तर में उन लोगों ने किसी एक किताब का नाम नहीं लिया। सच्चिदा जी ने कहा कि 'ऐसा भी हो सकता है या तो उन लोगों ने पूरी एकाग्रता के साथ किताबें नहीं पढ़ी, या फिर उन्होंने बिना किताब पढ़े ही यह बात कही हो। सभी तो नहीं, मगर कुछ एक किताबों में बौद्धिक रेफरेंस होने के कारण ऐसा हो सकता है कि नहीं समझ आई होंगी। रेफरेंस के बारे में न जानने से दिक्कत तो आती है किताब समझने में। एक और बात है कि मेरा लेखन तो साहित्य लेखन है नहीं- कहानी, किस्से, कविता आदि इसलिए हर किसी को समझ आ जाए, ऐसा नहीं मान सकते। वैसे यह कोई खास बात नहीं, हर आदमी हर किताब नहीं पढ़ सकता और एक लेखक को ऐसे आग्रहों से बच कर रहना चाहिए।'

किसी लेखक के कितने करीब लेकर जा सकती है कोई किताब कि उसका संपूर्ण व्यक्तिव झलकने लगे किताबों के रोशनदान से। शायद ऐसा बहुत कम देखने को मिलता है। सच्चिदा जी की किताबों के रोशनदान से हम दुनिया को एक नये नजरिए से देख पाने की दृष्टि विकसित कर सकते हैं। मगर उनकी किताबें उनके संपूर्ण व्यक्तित्व के दर्शन करा पाने में समर्थ नहीं हो सकतीं। कारण लगभग सौ वर्षों का लंबा सफर और आकाश जितना ज्ञान और अनुभव का विस्तार और विलक्षण व्यक्तित्व।

सच्चिदा जी का व्यक्तित्व उनके नाम को सार्थक करता था - सच्चिदानंद जो मूल रूप से बना है- 'सत', 'चित', 'आनंद' से। सच्चिदा जी से मेरे संबंध कभी उनकी जीवनी लिखने के कारण नहीं बने। वे बहुत पहले से थे। हमारी घंटों लंबी बात हुई है अनेक विषयों पर। हमने कई विषयों पर कई-कई दिन बात किये हैं। और बहुत कुछ ऐसा है, जिसे उनकी जीवनी में समेटा नहीं जा सका है। जीवनी की अपनी सीमा होती है। हमें सच्चिदा जी सरीखे लोगों को किताबों और कुछ चर्चाओं तक सीमित नहीं रखना है - यह उनके जीवन, उनके विराट व्यक्तित्व को मृत घोषित कर देने जैसा है। उनका तो संपूर्ण जीवन श्रम, प्रेम, और आदर्श की जीवंत मिसाल रहा है। इस दिशा में एक पुस्तक 'बाबा और शेफाली की गपशप' नाम से रूप ले रही। उसका एक छोटा अंश।

'बाबा की कुर्सी'

बाबा की एक कुर्सी थी काष्ठ की। बाबा की कुर्सी कोई आम कुर्सी नहीं थी। ऐतिहासिक कुर्सी थी। बाबा अक्सर उसी ऐतिहासिक लकड़ी की कुर्सी पर बैठा करते थे और मैं उनकी चौकी पर, अक्सर सुखासन की मुद्रा में या फिर पैरों को नीचे लटकाए बैठी होती। वे आमतौर पर जिस कुर्सी पर बैठा करते थे, उसका एक इतिहास है। यह कुर्सी कई साल पुरानी है। इतनी पुरानी कि इस कुर्सी ने पूरी एक शताब्दी की यात्रा की हो मानो, या क्या पता उससे भी ज़्यादा! पहले इसी कुर्सी पर बाबा यानी सच्चिदानंद सिन्हा जी के पिता बृजनंदन सिन्हा जी बैठा करते थे, फिर पिता जी के जाने के बाद यह कुर्सी बाबा के पास आ गई। ऐसी एक और कुर्सी है, जो बाबा के भाई प्रभाकर सिन्हा जी के पास भी है। ऐसा नहीं था कि उस कुर्सी पर सिर्फ बाबा ही बैठा करते थे। कोई भी बैठ जाता था। शेफाली के चमेला कुटीर (जहां बाबा रहते थे) जाते ही बाबा उस कुर्सी पर से अक्सर उठ जाते और कहते - 'तुम यहां बैठो, इस कुर्सी पर'।

शेफाली कहती- 'नहीं बाबा, इस कुर्सी पर बैठने के लायक मैं नहीं हूं।' बाबा खूब हंसते और कहते, 'अरे यह राजा-महाराजा की, या फिर प्रधानमंत्री की कुर्सी थोड़े ही है कि इस पर कोई दूसरा नहीं बैठ सकता!'

शेफाली कहती - 'नहीं नहीं, फिर भी, दूसरे भले ही बैठ जायें, मगर मैं नहीं बैठ सकती। बाबा, पहली बात तो यह कि इस पर आपके पिता जी बैठते थे जो कि एक कर्तव्यनिष्ठ स्वतंत्रता संग्रामी थे, मानवीय मूल्यों के संस्थापक, एक शिक्षाविद्, एक ईमानदार नेता, जो आदर्शों पर टिका रहा जीवन पर्यंत और उसके बाद आप इस पर बैठ रहे, उनके उत्तराधिकारी के रूप में'। यह कह शेफाली थोड़ी शांत हो गई। दरवाजे के बाहर दूर सड़क के उस पार वह शून्य में कुछ ताकती रही। फिर उसने कहा- 'बाबा, और उत्तराधिकारी वह नहीं होता जो अपने परिवार का हो, बल्कि वह होता है जो मूल्यों आदर्शों को जिंदा रख सके, है ना?'

'हां, ठीक कहती हो। मगर मैंने कभी इस बारे में बहुत गहराई से आज तक नहीं सोचा'। बाबा गंभीर हो शेफाली को ध्यान से देखते और सुनते रहे- 'बाबा, इसलिए मैं स्वयं को इस योग्य नहीं समझती। और दूजी बात यह कि आप मुझे इस कुर्सी पर बैठे बहुत अच्छे लगते हैं, बहुत अच्छे, एकदम सच्चे।'

बाबा हंसते हुए शेफाली को बीच में टोकते हुए कहते हैं- 'दूसरी कुर्सियों पर बैठे, या चलते-फिरते ऐसे नहीं अच्छा लगता मैं तुमको, तब तो मुझे इस कुर्सी से चिपक जाना होगा ताकि मैं तुम्हें हमेशा अच्छा सच्चा लगूं।' बाबा यह बोलकर खूब हंसने लगे, बच्चों की तरह। शेफाली झेंप गई। शेफाली बच्चों की तरह झेंपते हुए बस इतना कह सकी - 'नहीं, नहीं, यह बात नहीं। आप हमेशा अच्छे लगते हैं'। वे हंसते रहे देर तक। शेफाली शांत हो गई। फिर बेहद मृदुल स्वर में उसने बाबा से कहा, 'इस कुर्सी में कोई बात है। यह काठ की बरसों पुरानी कुर्सी मुझे बहुत जीवंत लगती है, चेतना पूर्ण। आपको इस पर

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:57 Page 61

बैठे देखती हूं तो मुझे दो शताब्दियों की चेतना जागृत दिखती है इसमें। मेरे लिए यह किसी राजा महाराजा की कुर्सी से कहीं अधिक मूल्यवान है। और बाबा, भला राजा महाराजा की कुर्सी में किसी को दिलचस्पी क्यों हो भला, हमें तो नहीं। आपको पता है, आपकी यह कुर्सी, कुर्सी के अर्थ को ही बदल देने वाली कुर्सी है। बाबा यह कुर्सी, मेरे लिए आम कुर्सी नहीं। इसलिए सॉरी बाबा, मैं इस पर बैठ नहीं सकती।

उन्होंने कहा - 'मेरे जाने के बाद सब राख ही हो जाएगा। यह कुर्सी जो तुम्हें चेतनावान और जीवंत लगती है, वह मेरी मृत्यु के साथ ही मर जाएगी, क्या पता तुम इसे जीवंत रख सको। मैं अपने जाने से पहले ऐसी व्यवस्था करवाकर जाऊँगा कि यह कुर्सी तुम्हें सौंप दी जाये।' शेफाली भी गंभीर हो गई। उसने बाबा से कहा- 'आपके बाद मैं क्या करूँगी इस कुर्सी का। आप हैं तो यह कुर्सी चेतनावान है। मेरी कल्पना से परे है इस कुर्सी को आपके बिना देखने की।'

फिर वातावरण को हल्का करने के लिए शेफाली हंस कर कहती - 'बाबा, कुर्सी तो कुर्सी है, जहां एकाधिकार की बात आती है, कुर्सी के खेल ही बदल जाते हैं। चाहे यह कुर्सी हो या कोई और कुर्सी!' दोनों हंसने लगते।

('बाबा और शेफाली की गपशप' पुस्तक से)।

बाबा यानी आप सबके सच्चिदा जी चले गये। सच है, उम्र तो थी जाने की मगर एक मित्र के चले जाने की पीड़ा, एक बाबा के चले जाने की पीड़ा तो रहेगी ना! यह विरह की पीड़ा है। यह पीड़ा हम सबको रूपांतरित कर सके, हमारी हिम्मत को दो गुना कर सके, हमें ऐसी चेतना से भर दें कि बेहतर दुनिया के, समाजवाद आधारित दुनिया के सपने को साकार करने के लिए हम पूर्ण रूप से जाग सकें। यह विरह की पीड़ा हमारा मार्गदर्शन करे। ■

सरल रेखा से भी सरल

कश्मीर उप्पल

आपातकाल के बाद 1977 में निरंतर उन्नीस महीने जेल में रहने के बाद गिरधर राठी अपने वृद्ध माता-पिता से मिलने इटारसी आये थे। रोज की तरह गिरधर राठी के साथ में बाजार में एक कॉफी की दुकान की तरफ जा रहे थे।

बाजार जाने के लिए हमें रेस्ट हाउस के पास से गुजरना होता था। एक दिन रेस्ट हाउस के सामने कुछ लोगों ने आवाजें लगाई... गिरधर भाई, गिरधर राठी जी। हमने देखा रेस्ट हाउस के कमरों के सामने खादी के कुरते पहने 8-10 लोग खड़े हैं और गिरधर भाई को बुलाने के लिए हाथ से इशारे कर रहे हैं।

गिरधर भाई ने कहा अरे आप लोग? गिरधर राठी के साथ मैं उनकी तरफ बढ़ा। उनसे गिरधर राठी ने मेरा परिचय कराया और मुझे मिलाया किशन पटनायक, सच्चिदानंद सिन्हा, सुरेन्द्र मोहन जी, अशोक सेकसरिया, ओमप्रकाश रावल और ये हैं पुरुषोत्तम कौशिक।

रेस्ट हाउस में ही मुझे पता चला कि केसला में 'लोहिया अकादमी' की स्थापना होने जा रही है। इटारसी देश के मध्यक्षेत्र का बड़ा स्टेशन देश की चारों दिशाओं से जुड़ा है। इसलिए यह स्थान महत्वपूर्ण है। यह थी उन महानुभावों से मेरी पहली भेंट, जो कई-कई भेंटों में बदल गई।

उसके बाद लगभग एक-दो वर्षों बाद मेरे छात्र युवा राजनारायण केसला के घने जंगलों के एकांत में जाकर बैठ गए। लगभग 1980 के बाद राजनारायण ने उस एकांत को अनेकांत में बदल दिया।

इधर मेरी दुनिया भी बदल रही थी। सर्वोदयी बनवारी लाल चौधरी के गांधी आश्रम से मैं 1966 से जुड़ा हुआ था। भवानी भाई द्वारा स्थापित आचार्य कुल का सदस्य भी था। भवानी भाई भी होशंगाबाद जिले के थे और अक्सर अपनी भतीजी के पास इटारसी ठहरते, मैं अपने स्कूटर के साथ उनका सारथी था। 'गांधीमार्ग' में मेरे लेख, कविताएं छपने लगी थीं। यह सिलसिला अनुपम के साथ आगे बढ़ता रहा। अनुपम ने पूरा आश्रम को ग्रामीण उत्थान के मोड में डाल दिया था। आपातकाल में कई सभाएं इटारसी में होती थीं। आपातकाल की लहरों में सौभाग्य या दुर्भाग्य से मैं बचा रह गया।

इस तरह के सामाजिक- स्फूलिंग के कारण मैं सहज ही किशन पटनायक, सच्चिदा जी, सुनील आदि के जीवन में समाहित होता गया। केसला से जब भी इटारसी आते मुझसे आन्दोलन के बारे में चर्चा करते। उसके बाद सुरेन्द्र झा और गिन्नी भी केसला आ गये थे। एक दिन राजनारायण एक युवा को लेकर आये वह सुनील था। सुनील और मेरे पत्र अक्सर 'नई दुनिया' इन्दौर में छपते रहते थे, उनमें राजनारायण के पानी, लकड़ी और वनकर्मियों की घूसखोरी के विषय होते। तो ये थे सतलुज हॉस्टल दिल्ली के

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:57 Page 62

सुनील, जो 1982 में केसला आ गए। इसके कुछ ही वर्षों बाद स्मिता, अरुण भाई और अरविंद मोहन, योगेन्द्र यादव, आलोक सागर आदि के नाम केसला में सुनाई पड़ने लगे थे।

केसला आंदोलन के दिनों में किशन पटनायक और सच्चिदा जी का केसला वर्ष में दो, तीन, कभी चार बार भी आना होता। अब वे रेस्ट हाउस नहीं, कश्मीर और कुलदीप जी के घर रुकते थे।

सच्चिदा जी के आने पर हम दोनों और हमारी बेटी कुछ असहज सा हो जाते कि सच्चिदा जी इतने सहज और सरल थे कि हम लोग देखते रह जाते। वे हमेशा छत पर बने बाथरुम में अपने कपड़े धोते और नहाते। वे नहाने के लिए कभी साबुन का उपयोग नहीं करते। हमारा लक्स और लाइफबॉय छूते भी नहीं। भारत में किसी अनाम साबुन का घिसा सा टुकड़ा उनके हाथ में रहता था।

कई बार रेलवे के रिजर्वेशन के कारण उन्हें कुछ अधिक दिन रुकना पड़ता। वे मेरी पुस्तकों पत्रिकाओं में कुछ ढूंढ़ते रहते थे। टीवी नहीं देखते थे और हमारी हिम्मत न होती कि टीवी खोल लें।

एक बार मैं होशंगाबाद नर्मदा घाट ले गया। उन्होंने अपनी चप्पल एक तरफ रख दी और नंगे पैर दूर घाटों, मंदिरों और लोगों को देखते-समझते रहें। घाट की नदी से लगी सीढ़ियों पर पांव नर्मदा की लहरों में रखे वे बहुत देर तक सूर्यास्त देखते रहे थे।

वे घर में बहुत सीमित मात्रा में खाना खाते और सहज हंसते कहते कि कुलदीप जी मुझे मोटा कर देंगी। वे कुलदीप जी से बातें करते उनके किसान - परिवार की बातें सुनते। वे अपने भाई और उनकी बेटी के बारे में बताते। मुम्बई में कैसे पढ़ी और एक अखबार की संपादक हैं। मुझे वे अक्सर मुम्बई में ट्रेड–यूनियन आंदोलन के अनुभव सुनाते। वे केवल मीटिंग के लिए नहीं आते थे। वे संगठन की केसला, होशंगाबाद पद-यात्राओं में भी शामिल रहते थे।

सच्चिदा जी जब मनिका में होते निरंतर पत्र लिखते रहते थे। उन पत्रों में सुनील, स्मिता और उनके बच्चों के स्वास्थ्य, शिक्षा आदि की चिंता रहती थी। वे देशभर में हो रही मीटिंग में लिए गए निर्णयों और प्रस्तावों की चर्चा करते थे। उनके कुछ पत्रों में उनकी अपनी पुस्तकों की चर्चा भी रहती थी। उनके पत्रों में उनके कुछ विचार इस रूप में मुझ तक पहुंचते थे -

(एक)

जहां तक पढ़े-लिखे लोगों का सवाल है, इस देश में तो यह सबसे स्वार्थी और भ्रष्ट तबका है। दूसरे, लोगों में निराशा इतनी व्यापक है कि जल्दी ही किसी अतिवादी नुस्ख में कोई रास्ता दिख जाता है। जर्मनी जैसे दार्शनिकों और संगीतज्ञों के देश में मध्यम वर्ग का हिटलर की तरफ रुझान हम सब लोगों के लिए चेतावनी है। (08.08 1999)

(दो)

आदमी के अनेक रुझान उसके (एनीमल एनसेस्टरी) जानवर वंश से आते हैं और 'वाद' का रुझान भी उसके (हंटिंग पैक) शिकार पैक का किसी समय सदस्य होने के कारण पैदा (ग्रुप सोलीडेरिटी) समूह एकजुटता का ही कोई अवशेष है। संयोग से *अनआर्मड प्रोफेट* में और राष्ट्र राज्य वाली मेरी पुस्तक में या अन्यत्र भी मैंने मनुष्य के 'एनीमल एनसेस्टरी' वाली बात को सदा केन्द्र में रखा है। इसको माने बगैर आदमी के अनेक रुझानों को समझना मुश्किल होगा। अस्तित्ववादियों ने प्रश्न उठाया था कि आदमी की नैतिकता का कोई आधार नहीं है, अगर सब कुछ ईश्वर प्रदत्त नहीं माना जाए। कुछ लोगों ने तो ईश्वर के अस्तित्व को कबूल करने के बाद भी नैतिकता के उत्स को अनिर्णीत माना। मुझे लगता है कि इसका जवाब एक हद तक मनुष्य के (बायोलॉजिकल ट्रेटस) जैविक घटक में ही ढूंढ़ा जा सकता है।

असल में मैंने *अनआर्मड प्रोफेट* में यही दृष्टिकोण अपनाकर अस्तित्ववादियों द्वारा उठाये गये प्रश्न का उत्तर देने की कोशिश की है। इसमें मानव स्वभाव में अंतरभूत रुझान कैसे विशेष परिस्थिति में नैतिक मूल्यों को जन्म देते हैं, इस पर प्रकाश डाला गया है। महात्मा गांधी को वर्तमान समाज की मूल समस्याओं के संदर्भ में रखकर प्रासंगिकता का आकलन किया गया है। (27.01.1997)

(तीन)

रूस के उथल-पुथल के बाद अब लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया और तेज होगी। लेकिन यह भी खतरा है कि प्रतिक्रिया में वे पूंजीवाद की बुराइयों की ओर से बिल्कुल आंखे बंद कर पूंजीवादी उपभोक्तावादी संस्कृति के अंधानुकरण में लग जाए। (25.08.1991)

(चार)

विकास की नई हवा तो इतनी तेज है कि कांग्रेस के विरोध में जितनी भी पार्टियां थीं, सबने कहना शुरू कर दिया है कि हम सब उदारीकरण के हिमायती हैं। हमारे मुख्यमंत्री लालू प्रसाद यादव अभी सिंगापुर गये थे, विदेशी कंपनियों को बिहार में पूंजी निवेश का आमंत्रण देने। अब वे अमेरिका जाने वाले हैं, बेरोजगारी बढ़ रही है। हमारे बिहार से लाखों मजदूर दिल्ली, पंजाब तथा दूसरे स्थानों पर नौकरी की तलाश में भाग रहे हैं। छोटे-मोटे उद्योग बंद पड़े हैं या पड़ने जा रहे हैं पर उसकी किसी को चिंता नहीं है। यह कोई सोचता भी नहीं कि आधुनिक तकनीकी सदा मनुष्य के स्थान पर मशीनों को स्थापित करती है और हमारे सबसे बड़े संसाधन मानवों को अप्रासंगिक बनाती है। इस हवा के विरोध में अपनी सारी शक्ति और बुद्धि से खड़ा होने को छोड़ आम लोगों को मानवीय जीवन प्रदान करने को कोई उपाय नजर नहीं आता। (18.08.1995) ■

दूजा न देख्या

जगत नारायण

बड़े शौक से सुन रहा था जमाना
तू ही सो गए दास्ता कहते-कहते

जी हां, मैं बात कर रहा हूं देश के प्रख्यात समाजवादी चिंतक और लेखक सच्चिदा बाबू की, जो 19 नवम्बर 2025 को हम सभी को अलविदा कह गए। यों तो उन्हें कोई गंभीर बीमारी नहीं थी पर अधिक उम्र होने के कारण छोटी-मोटी व्याधियां आती रहती थी, जिसे दवा या प्राथमिक उपचार से ठीक कर लिया जाता था। डॉक्टर के पास जाने में वे असहज महसूस करते थे। वे अक्सर कहा करते थे कि छोटी-मोटी बीमारी को शरीर अपने आप ठीक कर लेता है। पर इस बार की व्याधि जानलेवा साबित हुई। मृत्यु से 5-6 दिन पूर्व पत्रकार पुष्पराज जी के साथ केरल के साथी पत्रकार मिलने आए थे। बहुत सहज ढंग से देश-दुनिया के मौजूदा सवाल पर उन्होंने अपने विचार रखे थे।

उनके स्वास्थ को देखते हुए हम मुजफ्फरपुर के साथी नवीन जी, अरविन्द वरुण जी ने सोचा था की उनके सौवें साल में प्रवेश करने पर मुजफ्फरपुर में एक बड़ा सा आयोजन करेंगे। इस आयोजन में देशभर से उनके दोस्तों और समाजवादी विचारधारा वाले साथियों को बुलाया जायेगा, पर प्रकृति को शायद यह मंजूर न था। उनका अचानक चले जाना मन को व्यथित कर गया। वे उच्च कोटि के विद्वान थे। उन्होंने अपने जीवन में दो दर्जन से अधिक किताबें लिखी। सभी किताबें अति महत्वपूर्ण और चर्चित रही। हम सभी जानते हैं कि उनकी नियमित एवं अकादमिक शिक्षा नहीं हुई थी। फिर भी स्वाध्याय के बल पर उन्होंने अलग-अलग विषयों पर अनेक गंभीर किताबें लिखी। इससे उनके विलक्षण प्रतिभा का पता चलता है। उन्होंने राजनीति कला आर्थिकी और जाति व्यवस्था जैसे जटिल विषयों पर किताबें लिखकर समाजवादी आंदोलन को एक नई दिशा दी।

सच्चिदा बाबू जब बीएससी प्रथम वर्ष पटना साइंस कॉलेज के छात्र थे, तभी उन्होंने पढाई छोड़ दी और समतामूलक समाज का सपना पाले समाजवादी आंदोलन में कूद पड़े। बसावन बाबू ने उन्हें हजारीबाग यूनियन का काम करने के लिए भेज दिया। बसावन बाबू उन दिनों बिहार के बहुत बड़े समाजवादी नेता थे। वहीं पर सच्चिदा बाबू की मुलाकात रामानंद मिश्रा जी से हुई। रामानंद मिश्रा वहां यूनियन के अध्यक्ष थे। उन्होंने सच्चिदा बाबू के पिता जी को खबर भिजवाई कि आप चिंता ना करे, सच्चिदा मेरे पास है। गौरतलब हो कि

सच्चिदा बाबू ने परिवार के लोगों को बिना बताए कॉलेज से सीधा हजारीबाग चले गए थे। वहां पर उन्होंने अरगडा, कर्णपुरा, बरकाकाना आदि जगहों पर संगठन को मजबूत बनाने का काम किया।

हजारीबाग से लौट कर वे पुनः पटना आ गए। कुछ समय पटना में रहने के पश्चात वे मुंबई चले गए। मुंबई में उन्होंने विभिन्न संगठनों के साथ मिलकर समाजवादी आंदोलन को मजबूती प्रदान की। इसी क्रम में उनकी मुलाकात वहां के मजदूर नेता लक्ष्मण जाधव, एसआर राव, जॉर्ज फर्नांडिस और प्रभाकर मोरे जैसे जुझारू लोगों से हुई। बताते चलें कि हजारीबाग और मुंबई में उन्हें आजीविका के लिए मजदूरी करनी पड़ी थी। वहां उन्होंने रेलवे में खलासी का काम भी किया था। इसी दरम्यान उन्होंने मुम्बई के एक प्रतिष्ठित संस्थान से पत्रकारिता का कोर्स भी किया था। वे बताते थे कि 1952 के चुनाव में अशोक मेहता जी एवं आंबेडकर जी के चुनाव-प्रचार में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था। सन् 1955 में वे पुनः बिहार लौट आए।

सच्चिदा बाबू मनिका 1958 में आए थे। मनिका में उनके दादाजी का ननिहाल है। यहां पर अच्छी-खासी खेती है। पहले से यहां एक जीरतईया (मैनेजर) काम देखते थे, जो उनके पैतृक गांव परसौनी के थे। नाम था जटा सिंह। सच्चिदा बाबू अपने छः भाई- बहनों में सबसे बड़े थे। शायद पारिवारिक जिम्मेदारियों के निर्वहन के लिए उन्हें मनिका आना पड़ा। उनकी बड़ी बहन मनोरमा दीदी का विवाह हो चुका था। बाकी भाई-बहन पढ़ रहे थे। पिताजी ब्रज नंदन सिंह कांग्रेस पार्टी से एमएलए बन गए थे। मुजफ्फरपुर के साहेबगंज क्षेत्र से 1952 में निर्वाचित हुए थे।

मैंने जबसे होश संभाला, सच्चिदा बाबू को खेती किसानी के कार्यों में मशगूल पाया। वे सुबह नाश्ता करके खेत पर चले जाते। दोपहर 12 बजे के बाद लौटते फिर शाम 3-4 बजे बथान पर चले जाते। बथान जहां गाय- बैल पाले जाते हैं। शाम को आवास पर लौटते। रात में लालटेन की रोशनी में देर तक कुछ लिखते-पढ़ते रहते। यह उनकी प्रतिदिन की दिनचर्या थी। उन दिनों उनके साथ एक रसोईया जरूर होता, जो खाना बनाने का काम करता। वे समय के बहुत पाबंद थे। समय पर काम नहीं होने पर नाराज भी हो जाते थे।

खेती-किसानी का काम देखते हुए वे पार्टी के काम भी किया करते थे। उन दिनों उस क्षेत्र में सोशलिस्ट पार्टी का संगठन बहुत मजबूत था। एक-दो बार पुलिस उन्हें यहां से गिरफ्तार कर भी ले गई थी।

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:57 Page 64

1967 के चुनाव में पार्टी ने बोचहां क्षेत्र से एक बहुत ही गरीब दलित व्यक्ति को अपना उम्मीदवार बनाया। नाम था सीताराम रजक। उनके चुनाव प्रचार प्रबंधन की जिम्मेदारी सच्चिदा बाबू को ही थी। सीताराम रजक अच्छे वोटों से विजयी हुए। उन दिनों दलित- पिछड़ों को वोट देने से वंचित रखा जाता था। सच्चिदा बाबू उनके टोले में जाकर मीटिंग करते थे। वोट के महत्त्व को समझाते। उन लोगों का हौंसला बढ़ाते और खुद ढाल बनकर मतदान केंद्र तक लाकर वोट दिलवाने का काम करते। उनके उस कार्य से ऊंची जाति के लोग इनके विरोधी बन गए। सामने से तो प्रहार करने की हिम्मत नहीं हुई। पीठ पीछे तरह-तरह की धमकी और गालियां दिया करते थे। सन् 1969 में भी सीताराम रजक इसी क्षेत्र से निर्वाचित हुए। इस चुनाव में सच्चिदा बाबू के साथ में मैं भी कभी-कभार चुनाव प्रचार में चला जाता था। पर्चा बांटने और पोस्टर चिपकाने में मदद करता। उन दिनों प्रचार प्रायः पैदल या साइकिल से होते थे। चुनाव से 4-5 दिन पहले एक जीप गाड़ी भाड़े पर लिया जाता। रात होने पर किसी कार्यकर्ता के घर पड़ाव डाल दिया जाता। रात में भोजन के बाद सोते समय सरकार बनाने का सपना पाले सभी अपने-अपने विभागों का ख्याली बंटवारा करते। सुबह होने पर सभी लोग अगले गंतव्य की ओर कूच कर जाते। उन दिनों इस क्षेत्र में सोशलिस्ट पार्टी का संगठन इतना मजबूत था कि 1969 के चुनाव में मुजफ्फरपुर से नौ विधायक निर्वाचित हुए थे।

सत्तर के दशक में मुशहरी में नक्सल आंदोलन अपने चरम पर था। कई जुल्मी जमींदारों की हत्या कर दी गई थी। प्रतिशोध में जमींदारों एवं सामंतों ने पुलिस से मिलकर गरीब जनता को तंग-तबाह करना शुरू किया। पुलिस बेकसूर लोगों को पकड़कर जेल भेजने लगी। पूरे इलाके में आतंक छा गया। तब सच्चिदा बाबू सीधे तबके पुलिस मंत्री रामानंद तिवारी जी के पास पहुंच गए। उनसे उन्होंने कहा कि आपकी पुलिस वहां बेकसूर जनता को मार-पीट कर परेशान कर रही है। कहते हैं कि तिवारी जी मुशहरी आए। प्रभावित इलाकों का दौरा किये। तब जाकर पुलिस दमन रुक पाया। इसी घटना के बाद जेपी मुशहरी आए और अलग-अलग इलाकों में कैंप लगाकर नक्सलियों को मुख्यधारा में लाने का सार्थक प्रयास किया गया।

सन् 1969 के अंत में वे अपने से छोटे भाई डॉ. प्रभाकर सिन्हा को यहां की जिम्मेदारी सौंपकर दिल्ली चले गए। दिल्ली में वे सोलह वर्षो तक रहे। इसी दौरान उन्होंने कई महत्वपूर्ण किताबें लिखी। दिल्ली में उनके जीवनयापन के लिये प्रभाकर बाबू 250 रु. प्रति माह भेजते थे। बाद में 300 रु. भेजने लगे। वे बहुत न्यूनतम खर्च में अपना काम चला लेते थे। फिजूल खर्ची बिल्कुल पसंद नहीं करते। दिल्ली प्रवास के दरम्यान वे लेखन कार्य के साथ ही समाजवादी धारा के प्रचार-प्रसार में भी अपना बहुमूल्य समय देते। प्रत्येक शनिवार को एक निश्चित जगह पर बैठक होती, जिसमे देश-दुनिया के सामयिक विषयों पर चर्चाएं होती थी। उसे शनिचरी बैठक के नाम से भी जाना जाता है।

वे सन् 1987 में दिल्ली से पुनः मनिका आ गए। तब से मृत्यु पर्यन्त यही रहे। बीच-बीच में पार्टी के शिविर - सम्मलेनों में यही से जाना-आना करते थे। यहां भी उन्होंने समता संगठन बाद में समाजवादी जन परिषद् के निर्माण में अहम भूमिका निभाई। एक समय मुजफ्फरपुर के कई प्रखंडों में समाजवादी जन परिषद की कई इकाइयां बन गई थी। मुजफ्फरपुर के पारू प्रखंड में हम लोगों ने विधानसभा का चुनाव भी लड़ा था। मो. जुनैद वहां के प्रत्याशी हुए थे।

उन्हीं दिनों मनिका में उन्होंने किसान कला मंच की स्थापना की थी। कला मंच के साथी वाद्ययंत्रों के साथ उनके द्वारा रचित किसान गीत को लय-ताल के साथ गाते थे। गीत का लय भी उन्होंने ही सुझाया था। उनके गाने का कैसेट भी तैयार किया गया था, जो बाद में कहीं विलुप्त हो गया। उनके द्वारा रचित किसान गीत (जागरण गीत) को अरविन्द मोहन जी ने रचनावली में पिरोया है।

सन् 1988 में उनके अभिन्न मित्र अशोक सेकसरिया जी मनिका आये थे। वे

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:57 Page 65

एक सप्ताह तक यहां रुके थे। किसान - कला मंच के गायन को उन्होंने सराहा था। साथ ही कुछ सुझाव भी दिए थे। जब अशोक जी यहां से दिल्ली जाने लगे तो सच्चिदा बाबू ने मुझे और अतुल जी को दिल्ली दर्शन हेतु साथ लगा दिया। अतुल जी भी तब तक हम लोगों के संपर्क में आ गए थे। यह हम लोगों की पहली दिल्ली यात्रा थी। हम लोग अशोक जी के साथ ही गोमती गेस्ट हॉउस में ठहरे थे। वही से प्रत्येक दिन सुबह बस से दिल्ली एवं आस-पास के इलाकों में ऐतिहासिक स्थलों का दर्शन कर शाम को वापस आ जाते। अशोक जी जब भी किसी साहित्यकार या समाजवादी नेता से मिलवाते तो यह कहते कि ये लोग सच्चिदाजी के गांव से हैं। दिल्ली घूमने आए हैं। एक रात वे हम लोगों को प्रसिद्ध साहित्यकार गिरधर राठी जी के यहां खाने पर ले गए। गिरिधर राठी जी से सच्चिदा जी का पारिवारिक रिश्ता जैसा संबंध था। उनकी पत्नी चन्द्र किरण राठी जी ने हम लोगों को बड़े स्नेह से खाना खिलाया था। बाद में राठी जी के दोनों बच्चे- विशाख और मंजरी सच्चिदा जी से मिलने मनिका आए थे।

सच्चिदा बाबू से जुड़े अनेक प्रसंग है, जो स्मृति में आ रहे हैं। मैंने 1974 में मैट्रिक पास किया। उस समय अंगरेजी विषय में भी पास मार्क लाना जरूरी था। मुझे अंगरेजी में पास मार्क्स से कम नंबर आए। पर रेगुलेशन-8 लगाकर पास कर दिया गया। सच्चिदा बाबू जेपी आंदोलन के चलते बिहार आए हुए थे। उन्होंने मुझे सुझाव दिया कि अंगरेजी की परीक्षा फिर से दे दीजिये। उन्होंने समय निकलकर मुझे अंगरेजी पढ़ाना शुरू किया। मैं 1975 में अच्छे नंबर से उत्तीर्ण हुआ। मेरे लिए वे अभिभावक समान थे। जब भी शाम को उनके पास बैठता तो दिनभर के काम का ब्योरा लेते। जैसे कहां-कहां गए। किन-किन लोगों से आज भेंट हुई और क्या-क्या बातें हुई। उस पर वे अपनी प्रतिक्रिया भी देते थे।

पार्टी के सभी कार्यकर्मों में मैं प्रायः उनके साथ जाया करता था। 2008 में केरल के वरिष्ठ साथी जोशी जैकब जी के बुलावे पर वे केरल गए थे। मैं भी उनके साथ था। हम लोग वहां 15 दिन रुके थे। जोशी जी प्रत्येक दिन किसी कॉलेज, स्कूल, यूनिवर्सिटी में उनका कार्यक्रम आयोजित करवाते थे। बहुत प्रभावशाली मीटिंग होती थी। सवाल-जवाब भी होते थे। बड़े ध्यान से लोग उन्हें सुनते थे। केरल के साथियों ने हमें अपार स्नेह और प्रेम दिया। संगठन भी एक परिवार होता है, उसका अहसास केरल जाकर हुआ।

उनके 80वें जन्मदिन के अवसर पर मुजफ्फरपुर के एलएस कॉलेज के सभागार में एक बड़ा कार्यक्रम हुआ था। इस आयोजन के सूत्रधार प्रो. प्रमोद जी और दिल्ली के प्रो. प्रेम सिंह जी थे। वैसे तो वे जन्म दिन मनाने के पक्षधर नहीं थे। पर साथियों ने उनकी किताबों पर चर्चा विषय रखकर यह आयोजन रखा। उसमें देशभर से लोग यहां आए थे। बाहर से आए साथियों के ठहरने खाने-पीने आदि की व्यवस्था उनकी बड़ी बहन मनोरमा दीदी ने अपने सिकंदरपुर वाले घर पर की थी।

1987 में मनिका आने पर वे अकेले रहने लगे। वे स्वयं खाना बनाते, बर्तन साफ करते। किसी के ऊपर निर्भर नहीं थे। खेती-किसानी से भी अपने को मुक्त कर लिए थे। दैनिक खर्च के लिए उनके छोटे भाई डा. प्रभाकर सिन्हा जी 2000 रुपया प्रत्येक माह भेजते थे। उसी पैसे में से बचाकर वे गांव के कुछ जरूरतमंद लोगों को उधार भी दिया करते थे। कुछ तो लौटा देते थे पर कुछ लोग नहीं लौटा पाते। उसके लिए उन्हें कोई शिकायत नहीं थी। इधर मृत्यु से 5-6 वर्ष पूर्व से उनके छोटे भाई अरविंद जी ने एक सहायक रख दिया था। पर वे भोजन बनाने के अलावा कोई काम उससे नहीं लेते। उन्होंने अंतिम समय तक किसी का सहारा नहीं लिया।

गांव के लोगों से उनका सम्पर्क बहुत रहता था। इसका असली कारण था कि वे अपने सिद्धांत के प्रति अडिग थे। थोड़ा भी बायें - दायें नहीं होते थे।

मृत्यु भोज और लड़का के दहेज वाले विवाह में वे बिल्कुल शामिल नहीं होते थे। हां, लड़की की शादी में यदि कोई आमंत्रित करता तो अवश्य जाते और चुमावन भी करते थे। इसी कारण से लोग उनके नजदीक नहीं आ पाते थे। उनके कुछ प्रशंसक और नजदीकी लोग अक्सर उनसे कहते कि आप अपने नाम की कोई संस्था यहां स्थापित कीजिये ताकि आपकी याद बनी रहेगी। इस बात को वे कोई न कोई तर्क देकर खारिज कर देते थे। उनका कहना था कि इन सबसे कितने लोगों का भला होगा। यह काम स्टेट का होता है। स्टेट पर राजनीति के माध्यम से दबाव बनाना चाहिए कि जनहित से जुड़े योजनाओं को बड़े पैमाने पर गांव-गांव में लागू हो। हालांकि बहुत वर्ष पहले उन्होंने 2 कट्ठा जमीन सरकारी स्कूल के लिए दान किया था। जिसमें अभी सरकारी भवन बन गया है। बच्चों की पढ़ाई चल रही है। यह विद्यालय दलित और पिछड़ी बस्ती में है। उन दिनों स्कूल पेड़ की छाया या किसी के प्राइवेट मकान में चलता था। उस स्कूल के शिक्षक और कुछ स्थानीय अभिभावक ने अपने होने वाली परेशानियों से उन्हें अवगत कराया था। उन्होंने उनके प्रस्ताव स्वीकार कर अपने छोटे भाई प्रभाकर सिन्हा से कहकर जमीन की रजिस्ट्री करवा दी।

सच्चिदा बाबू का चमेला कुटीर आज उदास और वीरान-सा प्रतीत हो रहा है। अब वहां वह रौनक नहीं रही, जो उनके जीते जी रहा करती थी। उनके छोटे भाई अरविन्द सिन्हा जी ने 'सच्चिदानंद सिन्हा कर्म भूमि' का एक बोर्ड लगवा दिया है। उस स्थल का स्वरूप क्या होगा, यह तो भविष्य ही बताएगा। फिलहाल कबीर के शब्दों में इतना ही कह सकता हूं कि :- '*जस की तस रख दीन्ही चदरिया*' गुरुदेव को शत-शत नमन। ■

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:57 Page 66

संस्मरण

सच्चिदा बाबू के सानिध्य में

अतुल कुमार

सच्चिदा बाबू, यही नाम इलाके में और जहां तक लोग जानते थे, प्रचलित रहा। उनसे मेरा पहला परिचय सन् 1988 में हुआ। सच्चिदा बाबू 1987 की जुलाई में दिल्ली से स्थायी तौर पर गांव में निवास करने मनिका आ गए थे। उससे पहले गांव में उधर से गुजरने पर इतना भर जानता था कि यह सच्चिदा बाबू की ढाही यानी ऊंचा स्थान है। तब बचपन में इतना ही जानता था कि वे अंग्रेजी में कई किताबें लिख चुके हैं। वे बहुत बड़े विद्वान हैं और गांव के बहुत ही धनी व्यक्ति हैं।

जब सच्चिदा बाबू मनिका आ गए, तो चर्चा सुनकर उनके आवास के पास गया, जो गांव के मुख्य सड़क के किनारे ही दो कमरों का खपरैल मकान है। मुझे उनसे अंगरेजी सीखने का लोभ था, सो एक दिन हिम्मत करके उनके घर पर पहुंच गया। उनके आवास पर पहुंचने के लिए पहले सड़क से करीब पांच फुट ऊपर चढ़ना होता था। अब तो गांव की सड़क उनके दरवाजे के बराबर तक ऊंची हो गयी है। शायद वह शाम का समय था और वे अपने परिसर में टहल रहे थे। शाम को लगभग एक घंटे तक वह टहला करते थे। टहलते समय ही वहां पहुंच कर मैंने प्रणाम किया और अपना परिचय दिया। उन्होंने बहुत अच्छी तरह से बात की और मेरे परिवार और पढ़ाई-लिखाई के बारे में पूछा। वह मेरे परिवार को अच्छी तरह से जानते थे। वैसे तो वह इस गांव में वर्षों रहकर ही दिल्ली गए थे, लेकिन मेरे परिवार से अधिक निकटता का कारण उनके पैतृक गांव परसौनी में उनके पट्टीदारी में ही मेरे पिताजी का ननिहाल है। उन्हें जब अपने परिवार का परिचय दिया, तो उन्होंने इस संबंध के बारे में बताया। एक कारण और था कि मेरे सबसे छोटे चाचा, जो 1985 में दिवंगत हो गए, उनसे काफी निकट थे। इस कारण सच्चिदा बाबू अक्सर मेरे बथान पर, जहां मेरे बाबा लोग खेती-किसानी और पशुओं को पालने के क्रम में रहते थे, जाया करते थे। मैंने उनसे अंगरेजी सीखने की इच्छा भी जाहिर कर दी, क्योंकि उस समय तक मैं मैट्रिक पास कर चुका था, लेकिन अंगरेजी का प्रारंभिक ज्ञान भी नहीं था। उन्होंने पढ़ाई के प्रति तो मेरा काफी उत्साहबर्द्धन किया और इस बात से आश्वस्त किया कि अंगरेजी न जानने का मतलब अनपढ़ होना नहीं होता है, बल्कि विषय का ज्ञान होना चाहिए।

उसके बाद उनके यहां शुरू में सप्ताह में एक या दो दिन जाने का क्रम प्रारंभ हो गया। आम तौर पर शाम के समय उनके यहां जाने लगा। तब गांव के कई बुजुर्ग लोग भी उनके यहां जाकर बैठते और बातें करते थे। धीरे-धीरे सच्चिदा बाबू के यहां आना-जाना बढ़ा। इसी समय महेंद्र सिंह टिकैत के नेतृत्व में किसान आंदोलन का दौर चल रहा था। गांव में किसानों की एक सभा आयोजित हुई। इसमें मुझे रिक्शा से कई गांवों में प्रचार करने को कहा गया, लेकिन किसी काम से उस दिन मैं नहीं जा सका। गांव के बिन्दा सिंह ने उस दिन प्रचार किया। जिस दिन सभा चौक के मैदान में हुई, वहां मैं गया। उस सभा में किशन पटनायक आए थे। साथ ही शहर से प्रो. उदय शंकर सिंह, विनय भूषण जी आदि सोशलिस्ट नेता भी आए। इसी तरह एक डेढ़ साल बीत गए। किसान आंदोलन के बारे में निकट से उसी समय जाना-समझा।

1989 में *सामयिक वार्ता* का वाराणसी से मुजफ्फरपुर आना तय हो गया। उस समय वाराणसी से सोमनाथ त्रिपाठी गांव में कई बार आए। मुजफ्फरपुर के सरस्वती प्रेस से *सामयिक वार्ता* का प्रकाशन शुरू हो गया। राम संजीवन शर्मा उसके प्रबंध संपादक थे, हालांकि संपादन का सारा काम कलकत्ता से अशोक सेकसरिया किया करते थे। बीए में पढ़ते हुए मैंने सच्चिदा बाबू से कुछ काम करने के बारे में पूछा। तब तक गांव से शहर में जाकर मैं ट्यूशन पढ़ाने के साथ गांव में मधुमक्खी पालन का काम कर रहा था। साथ में खेती का काम मैं करता था, क्योंकि मेरे पिताजी खादी ग्रामोद्योग संघ में जिले में ही दूसरी जगहों पर काम करते थे। वे महीने में एक-दो बार ही घर आ पाते थे। सच्चिदा बाबू ने मुझे *सामयिक वार्ता* में काम करने को कहा। यह भी कहा कि पैसा तो नहीं मिलेगा, लेकिन पत्रकारिता के बारे में जानकारी होगी। मैं *सामयिक वार्ता* के काम से जुड़ गया। तब आरडीएस कॉलेज में क्लास के बाद शाम को रोज कलमबाग चौक के पास सरस्वती प्रेस में *वार्ता* का प्रूफ देखना मुख्य काम होता था। *वार्ता* छप जाने पर उसे शमीम के चित्रगुप्तपुरी, माड़ीपुर स्थित घर से डिस्पैच करना होता था। सच्चिदा बाबू भी जब शहर में होते, तो प्रेस में आ जाते थे और उसका काम करते थे। इस दौरान देश और मुजफ्फरपुर के अनेक लोगों से परिचय हुआ, जो गांव से बाहर निकलने के बाद पहला सामाजिक-राजनीतिक संपर्क था। राम संजीवन शर्मा तब पूसा के कॉलेज में थे। बाद में वे सीतामढ़ी चले गए। लेकिन उनका आवास मुजफ्फरपुर में था। इसलिए *वार्ता* से जुड़े रहे। *वार्ता* के साथ समता संगठन से भी जुड़ गया। समता संगठन का मुख्य जोर किसान-मजदूर समूह पर था। उसके झंडे तले

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:57 Page 67

गांव में एक दो सभाएं हुईं और सच्चिदा जी के निर्देशन में नवादा चौक स्थित मैदान में किसान-मजदूरों की सभा हुई, उसमें किशन पटनायक के साथ मुजफ्फरपुर के कई समाजवादी नेता- विनय भूषणजी, प्रो. उदय बाबू आदि आए। उस समय महेंद्र सिंह टिकैत के नेतृत्व में देशभर में किसान आंदोलन जोरों पर था।

उन दिनों कई घटनाएं साथ-साथ चल रही थीं। राजीव गांधी सरकार केंद्र में डाक-तार विधेयक समेत कई मुद्दों पर अधिनायकवादी कानून बना रही थी, जिसके विरोध में सच्चिदा जी व अन्य समाजवादी थे। इससे विरोध की राजनीति से संपर्क हुआ। आम चुनाव में हमलोग कांग्रेस विरोध में उतर आए थे, हालांकि उस समय तक कम उम्र के कारण मैं वोटर नहीं बन पाया था। बाद में जब राजीव गांधी सरकार ने मतदान की उम्र कम कर दी तो 1990 के चुनाव में वोटर बन पाया। उसी समय विश्व हिन्दू परिषद से रामशिला पूजन का अभियान चलाया। मेरे गांव में भी वह शिला आई और गांव के गर्ल्स हाइस्कूल पर रखकर उसकी पूजा हुई, अष्टयाम हुआ। शुरू में जब यह खबर मुझे कॉलेज में कुछ आरएसएस स्वयंसेवकों से मिली, तो मैंने गांव आकर सच्चिदा बाबू को यह खबर बताई, यह सोचकर कि वे भी खुश होंगे। लेकिन उन्होंने बड़े बारीक तरीके से उसके नुकसान के बारे में समझाया और उसका विरोध करने का निश्चय किया। दूसरे दिन उन्होंने एक पर्चा लिखकर मुझसे *वार्ता* के प्रेस से छपवाने को कहा। तब मैं भी उसकी राजनीति को समझ सका। पहली बार राजनीतिक तौर पर मैंने गांव के कई अन्य दोस्तों के साथ इस पर्चा को गांव भर में बांटा। रामशिला पूजन तो हुआ, लेकिन उत्साह काफी घट गया। लोगों ने भी इससे आशंका जताई कि सच्चिदा बाबू जब विरोध कर रहे हैं, तो कुछ गड़बड़ी तो होगी ही।

सच्चिदा बाबू मतदान के प्रति बड़े उत्साहित और सकारात्मक रहते थे। लोगों को वे मतदान के लिए प्रोत्साहित करते थे, खुद भी लाइन में लगकर मतदान करते थे। 1989-90 के विधानसभा चुनाव में काफी सक्रिय भी रहे। उस समय बिहार में बूथ कैप्चरिंग आम तौर पर होती थी। मतलब दो बजे के बाद बचे मतपत्रों को गांव में आपसी सहमति से एक पक्ष में मुहर लगा देना। सच्चिदा बाबू ने दोनों चुनावों में इस पर कड़ी नजर रखी। यहां तक कि 1989 में एक युवक पिस्टल लेकर बूथ पर आ गया और मतपत्र छापने पर उतारू हो गया। सच्चिदा बाबू वहां विरोध में खड़े हो गए। उनके साथ हमलोग भी खड़े हुए, गांव में बीच-बचाव कर उस युवक को डांट कर हटाया गया। उस समय सच्चिदा जी ने कहा था कि आज अगर एक व्यक्ति पिस्टल लेकर सफल हो जाता है, तो आगे बाहर से गुंडों का गिरोह भी गांव में आकर अपनी मर्जी चलाने लगेगा। आगे कुछ दिनों में वह घटना भी गांव में देखी गई, जब रात को घर से व्यक्ति को अगवा कर गुंडे ले गए और हत्या कर दी। इसी तरह एक अन्य घटना में गांव के एक अपराधी की हत्या कर दी गई और शव को छुपा दिया गया, जो कई दिनों बाद बरामद हो पाया। सच्चिदा बाबू की इस पर टिप्पणी थी कि चाहे वह अपराधी था, लेकिन गिरोहबाजी कर हत्या करने से गांव में इस तरह का दुस्साहस बढ़ेगा और प्रभावशाली गुट विरोधियों की इस तरह से हत्या कर सकते हैं।

1989 के अंत में किसान-मजदूर संगठन के विस्तार के क्रम में मैं सरैया प्रखंड के अयमा गया और वहां मैंने मुकेशजी (मुकेश प्रसाद ठाकुर) को साथ लिया, जो अभी इंटर की परीक्षा दे चुके थे। उनके साथ मिलकर उस गांव में किसान-मजदूर सभा का आयोजन किया, जिसमें सच्चिदा बाबू के साथ मैं, प्रो. राम संजीवन शर्मा, डॉ. राजीव कुमार आदि शरीक हुए थे। इससे इलाके में बड़ा उत्साह आया। कई अन्य जगहों पर भी सभा होती रहीं। बहुत से नये कार्यकर्ता सक्रिय हुए। जब 1991 में मनिका में किसान-मजदूर संगठन का स्थापना सम्मेलन हुआ तो इन इलाकों से काफी उत्साहजनक प्रतिक्रिया आई और कार्यकर्ता लोग भी जुड़े। उस सम्मेलन में उत्तर बंगाल से जुगल किशोर रायबीर अपने साथी रणजीत राय के साथ आए। बिहार के कई इलाकों से किसान-मजदूर के बीच सक्रिय लोग भी इस सम्मेलन में शामिल हुए। इनमें प्रमुख नाम रोहतास के दिनारा क्षेत्र से पूर्व विधायक शिवपूजन सिंह और सीतामढ़ी से छात्र-युवा संघर्ष वाहिनी के ओम प्रकाश का था। किसान-मजदूर संगठन ने सच्चिदा बाबू के निर्देशन में काफी आंदोलनों का स्थानीय प्रखंडस्तरीय मुद्दों को लेकर सफल संचालन किया। इसके अध्यक्ष रामफल महतो चुने गए, जो सच्चिदा बाबू के पुराने समाजवादी परिचित थे और उन दिनों सामाजिक समूह- अर्जक संघ में सक्रिय थे। सच्चिदा बाबू ने ही स्मरण कर उनका नाम और संभावित गांव सुझाया, जिस आधार पर मैंने उन्हें खोजा था। किसान संगठन के लिए उन्होंने कई गीत लिखे, जिसे पुस्तिका रूप में प्रकाशित कराया गया। गांव में उन्होंने कला टीम बनाने का भी प्रयास किया। तबला, हारमोनियम और मजीरा खरीदा गया। गांव के कई गायक, वादक महेश पांडेय, लक्ष्मण प्रसाद श्रीवास्तव, रामजी श्रीवास्तव, मणिभूषण सिंह लोग इस टीम में शामिल हुए और सप्ताह में एक या दो दिन शाम को संगीत का कार्यक्रम शुरू हुआ। किसान गीतों की धूम मच गई। गांव के कई लोग इसमें श्रोता के तौर पर भाग लेने लगे।

1990 में बैढन, जिला सीधी, मध्य प्रदेश में समता संगठन का सम्मेलन हुआ। उस सम्मेलन में सच्चिदा बाबू के साथ गया। मुजफ्फरपुर से कई लोग गए

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:57 Page 68

थे। सम्मेलन से लौटते समय शक्तिनगर के पास सुबह-सुबह एक सड़क दुर्घटना में नवनिवार्चित राष्ट्रीय संयोजक शिवचन्द्र जी और मध्य प्रदेश के समर्पित साथी राज नारायण जी की मृत्यु हो गयी। किशन जी आदि कई साथी घायल हो गए थे। असल में कई साथी सिंगरौली में हमारे साथ बस में सवार हुए थे, लेकिन एक अखबार की लौटती जीप से जल्द वाराणसी पहुंचने के लोभ में वे लोग उतरकर जीप में सवार हो गये थे। सच्चिदा बाबू के कहने पर हम चार-पांच साथी बस में ही रह गए। जीप ही आगे दुर्घटनाग्रस्त हो गई। वाराणसी पहुंचने पर यह दुखद समाचार मिला। यह बहुत दुखद घटना थी।

समता संगठन से जुड़ने के बाद कई बार देश के कई हिस्सों में विभिन्न सम्मेलनों में भाग लेने का अवसर मिला। गांव में मैं 1992 के अंत तक रहा। इसी साल के शुरू में *सामयिक वार्ता* में एक बार ऐसा संकट आया कि मुजफ्फरपुर शहर में रहने वाले साथियों ने अचानक समता संगठन की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक में ही हाथ खड़े कर दिए कि अब आगे से समय नहीं दे पाऊंगा। बड़ी विकट स्थिति आ गई। कई साथियों ने उनसे अनुरोध किया कि कम से कम चार अंक निकाल दें तो अगले सम्मेलन तक वैकल्पिक व्यवस्था कर ली जाएगी, लेकिन साथियों की ऐसी मजबूरी थी कि एक अंक के लिए भी तैयार नहीं हुए। अंत में गुस्से में आकर सच्चिदा बाबू के कहने पर *वार्ता* का प्रकाशन बंद करने को कहा। उनको गुस्सा होते बहुत कम देखा गया है। इसके बाद मैंने यह जिम्मेदारी संभालने का प्रस्ताव दिया, जिसे मेरे *वार्ता* के काम के अनुभव को देखते हुए स्वीकार कर लिया गया। इसके बाद आठ-नौ महीने तक मैंने शहर में अकेले ही *वार्ता* का सारा काम देखा। हां, बाद में शमीम जी ने अपने घर से दफ्तर चलाते रहने की सहमति दे दी, जिससे मेरा काम कुछ आसान हो गया। इतने दिनों तक *वार्ता* की हर गतिविधि सच्चिदा बाबू को रोजाना या दो तीन दिन पर देकर उनसे निर्देश प्राप्त करता रहा। बाकी संपादन का सारा काम पहले की तरह ही अशोक जी कलकत्ता से देखते रहे। इस दौरान मैं बीमार पड़ गया। उस समय सच्चिदा बाबू मेरे घर पर आए और दवा आदि की व्यवस्था के बारे में पूछा। उन्होंने मेरे बुखार को ज्यादा भागदौड़ और थकावट का नतीजा बताया और जो डॉक्टर आए थे और मेरे लिए अनेक दवाएं और इंजेक्शन लिख दिया था, उन सबको उन्होंने खारिज कर दिया। साथ ही मुझे 150 रुपये अंडा दूध आदि खाने का निर्देश देते हुए दिए।

सच्चिदा बाबू मतदान के प्रति बड़े उत्साहित और सकारात्मक रहते थे। लोगों को वे मतदान के लिए प्रोत्साहित करते थे, खुद भी लाइन में लगकर मतदान करते थे। 1989-90 के विधानसभा चुनाव में काफी सक्रिय भी रहे

1991 में दिल्ली वोट क्लब पर सरकार विरोधी बड़ा प्रदर्शन हुआ था। अशोक सेकसरिया कलकत्ता से मुजफ्फरपुर आये थे और वहीं से दिल्ली जा रहे थे। सच्चिदा बाबू ने मेरे लिए भी दिल्ली का टिकट कटा दिया और अशोक जी के साथ दिल्ली पहली बार उसी रैली में जाने का मौका मिला। कई दिनों तक दिल्ली में रहा, जहां अशोक जी ने अपनी ओर से टिकट कटाकर दिल्ली दर्शन कराने की व्यवस्था की थी। रात को तो किसी एमपी कोठी में ठहरता था, लेकिन दिन में अशोक जी के पास आ जाता और वहीं पर दोपहर और शाम का भोजन करता। अशोक जी उन दिनों दिल्ली जाने पर जेएनयू के गोमती गेस्ट हाउस में ठहरा करते थे, जिसकी बुकिंग जेएनयू के प्रोफेसर ईश्वरी प्रसाद कराया करते थे।

1991 के दौरान ही गांव की आर्थिक- सामाजिक स्थिति का अध्ययन करने के लिए उन्होंने एक सर्वेक्षण शुरू किया। शुरू में तो गांव के प्रवीण जी उनके साथ थे, लेकिन एक-दो दिन बाद ही मैं भी जुड़ गया। गांव में हर परिवार में जाकर यह सर्वेक्षण शुरू हुआ। इसमें परिवार की आय, सदस्यों की संख्या, आय के स्रोत, खेती की जमीन, मजदूरी या नौकरी, खर्च आदि का विस्तृत ब्योरा देना था। गांव के लोग स्वभाव से अपनी आय और व्यय को छुपाते हैं। बहुत से लोगों ने उनका सम्मान करते हुए जवाब तो दिए, लेकिन अधिकांश जवाब गलत और बढ़ा-चढ़ाकर थे। दलित और पिछड़े वर्ग के लोगों को लगा कि कुछ सब्सिडी आदि की व्यवस्था कराएंगे, सो उन्होंने बहुत दयनीय तरीके से अपना ब्योरा दिया। वे इस बात को समझ गए और बीच में इससे निरुत्साहित हो गए। बाद में मुझे ही सारा फॉर्म दे दिया, लेकिन लोगों से जानकारी इकट्ठा हुईं, उसे प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता था।

उसी साल अक्टूबर में राजस्थान के लाडनूं में प्राकृत भाषा में एमए के लिए विज्ञापन निकला। मैं पहले से वैशाली में इस विषय में एडमिशन लेना चाहता था, लेकिन वहां विषय की बाध्यता के कारण नहीं ले पाया था। लेकिन लाडनूं में विषय की बाध्यता नहीं दी। वहां जाकर इंटरव्यू देना था और पास होने पर स्टाइपेंन मिलने की व्यवस्था थी। मैंने जब यह बात उन्हें बताई तो बिना देरी किए उन्होंने मुझे वहां जाने की सलाह दे दी। साथ में कहा कि बाहर जाने से और दूसरे विषय पढ़ने से व्यक्तित्व में काफी विकास होता है। साथ ही बिना कुछ कहे 400 रुपये मुझे दे दिए कि टिकट आदि की व्यवस्था इससे कर

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:57 Page 69

लूं। उस समय सेकंड क्लास स्लीपर का टिकट शायद 219 रुपये का हुआ। उन्होंने इतने अधिक रुपये देकर यह भी कहा कि अगर वहां व्यवस्था नहीं हो तो वापसी के लिए ये पैसे हैं। वहां एडमिशन हो गया। उसके बाद पत्रों के माध्यम से उनसे संपर्क रहा। एमए के बाद यूजीसी फेलोशिप मिली, तो उन्होंने मेरे विषय के अनुकूल वाराणसी को बताया और वहीं जाने की सलाह दी। इस तरह मैं बीएचयू से पीएचडी कर सका।

6 दिसंबर 1992 को बाबरी मस्जिद विध्वंस के बाद सरैया प्रखंड के मुंगौली में हुई सभा संभवतः जिले में या राज्य में पहली विरोध सभा थी, जिसे किसान-मजदूर संगठन की ओर से मुकेशजी द्वारा आयोजित किया गया था। उस सभा में कई सौ लोग जमा हुए और सच्चिदा जी ने बहुत ओजपूर्ण (जो अक्सर वे नहीं देते थे) भाषण दिया। यह एक तरह का साहसपूर्ण भी था, क्योंकि उस समय देश में जो माहौल था, उसके ठीक उल्टी धारा में तैरने जैसा था। उसके बाद किसान-मजदूर संगठन और सजप के बैनर तले कई सम्मेलनों और आयोजन में वे बड़े उत्साह से शिरकत करते रहे, बहुत नए कार्यकर्ताओं के साथ गांव में यात्रा, संपर्क अभियान सबमें वे बराबरी के साथ ही रहते थे।

इस बीच, राष्ट्रीय स्तर पर 1989 में शुरू हुआ जनांदोलन समन्वय समिति की परिणति 31 दिसंबर, 1994- 1 जनवरी 1995 को ठाणे के सम्मेलन में राजनीतिक दल समाजवादी जन परिषद के रूप में सामने आई। उस समय ऐसे सम्मेलनों में जाने के लिए लगभग लोग बिना टिकट के ही रेल में सफर करते थे। लेकिन सच्चिदा बाबू ने न केवल अपना टिकट कटाया, बल्कि साथ जाने वाले सभी लोगों से टिकट कटवाया। वापसी में इलाहाबाद में चेकिंग हो गई, जिसमें काफी विवाद हुआ, लेकिन हम लोग टिकट वाले थे, इसलिए कोई विवाद नहीं हुआ। वे बिना टिकट ऐसे सम्मेलनों में जाने वालों को बहुत गलत मानते थे। वहां से लौटकर मुजफ्फरपुर में सजप का संगठन विस्तार शुरू हुआ और सच्चिदाजी इस पूरी प्रक्रिया में मागदर्शक तो थे ही, आम कार्यकर्ता के तौर पर भी थे। हर गांव में बैठक में वे जरूर जाते थे। मुजफ्फरपुर के कई प्रखंडों में सजप और किसान संगठन का विस्तार हुआ और वहां कई आंदोलन भी छोटे स्तर पर चले। सबमें वे प्रेरणास्रोत के रूप में रहते थे। मैं भी एमए के बाद करीब दस महीने गांव में रहा और संगठन विस्तार में काफी सक्रिय हुआ। मेरी सक्रियता से जिले के बंदरा, साहेबगंज, मोतीपुर आदि प्रखंडों में भी संगठन का फैलाव हुआ। 2000 के बिहार विधानसभा चुनाव में पारू क्षेत्र से सजप ने चुनाव लड़ा। उम्मीदवार जुनैद अहमद उर्फ बबलू थे। उस पूरे चुनाव प्रचार के दौरान सच्चिदा जी उस क्षेत्र में जहां तक सजप की पहुंच थी, सक्रिय रहे। वे पर्चा लिखने से लेकर, सभाओं को संबोधित करने, लोगों से मिलने आदि हर काम में अनुशासित कार्यकर्ता की तरह सक्रिय रहते। पारू वह क्षेत्र है, जहां से सच्चिदा जी के पिताजी 1967 में कांग्रेस के उम्मीदवार बनाए गए थे और अपनी पहचान की सीट न होने और कांग्रेस विरोधी लहर के कारण हार गए थे।

> **मनिका में सच्चिदा बाबू के आवास के पास गया, जो गांव के मुख्य सड़क के किनारे ही दो कमरों का खपरैल मकान है। मुझे उनसे अंग्रेजी सीखने का लोभ था, सो एक दिन हिम्मत करके उनके घर पर पहुंच गया**

1998 में मैं वाराणसी में था और वहां से बिहार के विक्रमगंज लोकसभा क्षेत्र (अब काराकात) में चुनाव प्रचार के लिए गया। सच्चिदा बाबू भी मणिका से सुवेश के साथ आए और हमलोग 15 दिन से अधिक तक क्षेत्र के गांव-गांव में पैदल जाकर प्रचार करते रहे। सजप के उम्मीदवार उस समय शिवपूजन सिंह थे।

लाडनूं के बाद वाराणसी, बरेली, मुरादाबाद, दिल्ली में रहते उनसे लगातार संपर्क बना ही रहा। गांव जाने पर लगभग रोज ही उनके पास जाया ही करता था। वे सभी लोगों से चाहे वह बूढ़े हो या बच्चा, बराबरी का ही व्यवहार करना उनके स्वभाव में था। मेरे आठ और पांच साल के दो बेटे क्रमशः अद्वैत कृष्ण और वेदांत कृष्ण जब चांद मिशन की विफलता से काफी निराश हुए, तो इस पर अपनी बालसुलभ जिज्ञासा शांत करने सच्चिदा बाबू के पास पहुंच गए। ये दोनों उन्हें विद्वान बाबा ही कहते थे। उनसे जब बच्चों ने चांद मिशन और ब्रह्मांड के बारे में बाल सुलभ कई प्रश्न पूछे, तब बिना किसी हिचक के उन्होंने इंसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका खोलकर बाकायदा उन्हें पूरी जानकारी गंभीरता से समझाई। साथ ही ब्रह्मांड की गुत्थियों के बारे में वे बहुत रुचि लेकर चर्चा करते थे। ब्रह्मांड के बारे में उनकी जिज्ञासा बचपन से ही जग चुकी थी।

गांव में कई जातियों के लोग बसते हैं। उनके पास जाने पर वे किसी को कुर्सी से अलग नीचे नहीं बैठने देते। कुर्सी कम पड़ जाए, तो बैठक में उनकी बिस्तर वाली चौकी पर लोग बैठाए जाते। वे कभी चाय का कप धोने नहीं देते, बल्कि खुद धोते, बाद के दिनों में उनके पास लगातार जाने वाले मेरे जैसे लोगों ने कप धोना शुरू किया, जो उनके रसोईघर में लगे चापाकल पर धोया जाता था। गांव का जल स्तर पहले काफी ऊपर था, अब

संस्मरण

नीचे हो गया है। उनके घर के बगल में लंबी झील है, जिसे मन कहा जाता है। उनके चापाकल का पानी अत्यधिक आयरनयुक्त है। लेकिन 40 साल तक वह उसी का उपयोग करते रहे। कहते कि मैं तो यही पानी पीकर इतने दिनों से पूरी तरह स्वस्थ हूं। शहर में वे अपने भाई प्रो. प्रभाकर सिन्हा के आवास पर आकर रहते थे। वहां से मनिका उनके घर की दूरी 10 किलोमीटर के करीब है। लेकिन अक्सर रिक्शा न मिलने पर वे पैदल ही आते-जाते थे। कई बार, स्वान्तः सुखाय पैदल चल देते थे। घर के पास की करीब सवा दो एकड़ जमीन पर उन्होंने कई तरह के पेड़ लगा रखे थे। फूलों और फलदार वृक्षों की वहां बहुतायत है। कई पेड़ स्वतः उग आए हुए हैं, जिन्हें वे जतन से पालकर बड़ा कर चुके हैं।

तीन साल पहले उनका मोतियाबिन्द का ऑपरेशन हुआ। इससे पहले एक बार सब तैयारी होने के बावजूद डॉक्टर के पास ऑपरेशन से कुछ समय पहले वापस आ गए थे। बहुत मनाने के बाद वह तैयार हुए, तब जाकर ऑपरेशन हो सका। लेकिन एक आंख का नहीं हो पाया, क्योंकि उसमें समस्या ज्यादा हो चुकी थी। मुझे उनका आखिरी दर्शन 14 अक्तूबर, 2025 को हुआ। वे शहर में ही आ गए थे, क्योंकि प्रभाकर बाबू की दिल संबंधी समस्या अचानक गंभीर हो गई और उन्हें अस्पताल में भर्ती होना पड़ा था। सच्चिदा बाबू शहर में दिन भर आराम कुर्सी पर ही बैठना पसंद करते थे। वे पूरी तरह स्वस्थ, सक्रिय और जागरूक थे। हालांकि सामाजिक बातचीत कम करते थे। उनसे राजनीतिक बातचीत तो मेरी लगभग हर दिन हुआ करती थी, जब मैं उनके पास जाता था, लेकिन आखिरी बातचीत अगस्त महीने में गांव में हुई थी, जब मैंने उनसे लोहिया और जयप्रकाश के बीच अंतर और आचार्य नरेंद्रदेव की भूमिका के बारे में जानकारी ग्रहण की थी। मैंने उनसे सजप के नासिक राष्ट्रीय परिषद में नागरिक संहिता के बिना किसी आलोचना, संशोधन या परिवर्तन के मुद्दे सुझाए बहुमत से खारिज कर देने पर भी बात की। परिषद की बैठक सितंबर 2024 में हुई थी और अगली कार्यकारिणी 2025 के मार्च में अलीपुरद्वार के जटेश्वर स्थित समता केंद्र में हुई। वहां अध्यक्ष, महामंत्री और संगठन मंत्री की अध्यक्ष-पीठ ने इस नागरिक संहिता को देश की वर्तमान माहौल के प्रतिकूल बताकर अंतिम तौर पर खारिज कर दिया। इस बारे में पूछने पर उन्होंने परिवर्तनवादी संगठनों का धर्म

देश का वर्तमान माहौल तो क्या सारी दुनिया भी एक तरफ हो जाए तो अपनी समतावादी समझ पर अकेले भी खड़े रहना उचित है। यह उनकी ओर से मुझे संभवतः अंतिम मौखिक राजनीतिक शिक्षा रही

ही वर्तमान विषमतामूलक माहौल के प्रतिकूल चलना बताया था और मुझे सलाह दी थी कि देश का वर्तमान माहौल तो क्या सारी दुनिया भी एक तरफ हो जाए तो अपनी समतावादी समझ पर अकेले भी खड़े रहना उचित है। यह उनकी ओर से मुझे संभवतः अंतिम मौखिक राजनीतिक शिक्षा रही, हालांकि उनके लेखन और जीवन दर्शन से शिक्षा लेने की प्रक्रिया कभी खत्म नहीं हो सकती।

सच्चिदा बाबू जब से मनिका गए, तब से ही अपनी मृत्यु की तैयारी कर चुके थे। अक्सर वे कहते थे कि देश की औसत जीवन प्रत्याशा 57-58 वर्ष है। मैं उससे अधिक का हो चुका हूं। यह तो हमारे लिए बोनस का जीवन है। इसलिए इस बारे में चिंता की जरूरत नहीं, जितनी मिल जाए, अधिक ही है। मनिका में रहते हुए वे दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, बर्धा हिन्दी विश्वविद्यालय आदि जगहों पर कई बार समाजवादी, समतावादी विचारों के अनुकूल सेमिनारों, संगोष्ठियों में जाते रहते थे। इटारसी में संभवतः 1991 में ऐसे ही एक कार्यक्रम के दौरान उन्हें टाइफायड हो गया, जो काफी कष्टदायक हुआ। एक-डेढ़ महीने तक वे बीमार रहे और काफी कमजोर हो गए। यह कमजोरी बाद के दिनों में उनकी सेहत पर दिखने लगी।

अंतिम महीनों में वे अपने बारे में काफी सतर्क हो गए थे और सेहत के बारे में कोई नकारात्मक बात कहने पर प्रतिवाद करते थे। मैं पूरी तरह स्वस्थ हूं और आप लोगों की बातचीत अच्छी तरह सुन-समझ रहा हूं। बोल नहीं रहा, इससे मुझे बीमार या थका हुआ मत मानिए। 18 नवंबर को भी सच्चिदा बाबू घर में बैठे रहे, सामान्य ढंग से दैनंदिन कार्य किया। पढ़ना-लिखना तो पहले से ही बंद हो चुका था।

19 नवंबर की सुबह छह बजे ही वे अपने बिस्तर से उठकर बैठक में आने लगे। सुरेंद्र कुमार जी ने उन्हें वापस किया। उस समय से अपने बिस्तर के पास ही आराम कुर्सी पर बैठे रहे। अक्सर वे इसी मुद्रा में आरामकुर्सी पर बैठे रहते थे। शरीर के शिथिल पड़ने पर डॉक्टर ने इंजेक्शन लगाने की कोशिश की, लेकिन उन्होंने मना कर दिया। इसी मुद्रा में बैठे-बैठे उन्होंने दिन के लगभग 11:30 बजे संसार से प्रस्थान कर गए।

सच्चिदा बाबू से लगभग हर बात सीखने का मौका मिला, उनकी जीवन-शैली भी। लेकिन वह शैली अपनाना बहुत मजबूत व्यक्तित्व के बूते की बात होगी। वैसा कर नहीं पाया, लेकिन आदर्श के रूप में मन-मस्तिष्क में वही छाप बनी हुई है। ■

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:57 Page 71

अनोखा सिद्धांतकार

भवेश असगर

समाजवाद की ओर मेरी वैचारिक प्रेरणा और आकर्षण गांधी और भारतीय समाजवादी चिंतकों जेपी, लोहिया और आचार्य नरेन्द्रदेव के व्यक्तित्वों और विचारों के अध्ययन-प्रभाव से हुई। समाजवादी जन परिषद से जुड़ने के दरमियान मैं उनके (सच्चिदा बाबू) के साहित्य और लेखों से वाकिफ हो गया था। जब मैं 2002 में पहली बार सच्चिदा जी से केसला होशंगाबाद से मनिका मुजफ्फरपुर मिलने गया तो वे मुझे *वागर्थ* 2002 सितंबर अंक में वे अपना प्रकाशित लेख 'संगीत, साहित्य, कला विहीन राजनीति' पढ़ने को दिया था। उनसे मेरा जुड़ाव वैचारिक स्तर पर ही था। उनके समाजवादी साहित्य, लेख, भाषण हम युवाजनों में वैचारिक ऊर्जा और उत्साह का संचार करते थे। वे अपनी बौद्धिक सक्रियता और पूंजीवाद के खिलाफ संघर्ष और जनप्रतिरोध के मोर्चे पर अपनी उपस्थिति से शोषण मुक्त समाज बनाने के लिए दीर्घकालिक अपील और अदम्य उम्मीद जगाते थे। एक बार 2016 में प्रो. प्रमोद कुमार जी के डेरे पर मुजफ्फरपुर में उनसे बातचीत में मैंने कहा कि 'सच्चिदा जी पढ़ते बहुत हैं और किशन जी सोचते बहुत है।' यही दोनों में फर्क है। वे परिवर्तनकामी युवजनों में समाजवाद के प्रति दृढ़ आस्था प्रदान करते थे। वे बहुपठित विद्वान लेखक और बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। वे जीवनपर्यन्त अपने बौद्धिक-समाजिक कर्म में बहुत ही समर्पित और निष्ठावान समाजवादी कार्यकर्ता के रूप में अद्वितीय उदहारण प्रस्तुत किये। मैं उनसे 'मनिका' में चार बार मिला हूं। उनसे मेरी आखिरी मुलाकात 2017 में हुई। शुरुआत के एक - दो बार के भेंट में उन्होंने मुझसे कहा था कि हमारे संगठन/पार्टी में विगत कई वर्षों से सोचने-समझने और पढ़ने का काम रुक सा गया है। आखिरी मुलाकात में मैंने उनसे पूछा था कि मार्क्सवादी लोग बुद्ध के पास क्यों गये? उनका जवाब था निरीश्वरवाद और पदार्थवादी दृष्टिकोण के कारण। इस पर मैंने उनसे बोला कि क्या भौतिकवादियों के पास निरीश्वरवाद का विचार पूरा नहीं पड़ता था? दूसरी बात मुझे उन्होंने कहा था कि आप किसी कॉलेज में प्रो. होकर पढ़ाइए नहीं तो किसी गांव में रहकर जैविक खेती कीजिए। वे मूलतः भौतिकवादी दार्शनिक थे। वे दुनियाभर के कला जगत, दर्शन, विज्ञान और विश्व समाजवादी क्रान्तियों के साहित्यिक लेखकों-आलोचकों की रचनाएं, इतिहास और साहित्य का गम्भीर स्वध्याय किया था। प्रारम्भिक औद्योगिक क्रान्ति और उत्तरार्ध औद्योगीकरण के उत्तरोत्तर दुष्परिणाम और उस पर दुनिया भर के पर्यावरणविदों के अवलोकन, ठोस निष्कर्ष और चेतावनी जैसे समस्त जानकारी वे रखते थे।

इस तरह वे अपने अध्ययन-चिंतन के बौद्धिक समग्रता के आलोक में आधुनिक औद्योगिक सभ्यता के विकास की सीमाएं, विकल्प और स्थायी समाधान देने व खोजने में सार्विक समाजवाद के मानवीय स्वरूप के संदर्भ में उनका अहम योगदान है। इस पृथ्वी के ऊपर मानवजाति मानवीय व्यवस्था के लिए कृतज्ञता एवं गौरवपूवर्क प्रयत्नशील रहेगी। जिसमें समता, सादगी, स्वावलंबन और विकेन्द्रीकरण, अहिंसा से युक्त न्याय प्रिय परिवार-समाज के गठन का मार्ग प्रशस्त होगा। ऐसा मैं सार्वजनिक चाहत और हौंसला महसूस करता हूं और इस आवश्यक कर्म में मैं अपनी जिम्मेदारी स्वीकारता हूं। मिशन की तरह जीवन-पर्यन्त सक्रिय रहूंगा, ये संकल्प दोहराता हूं। यही मेरी ओर से उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। विगत में उनसे मेरा पत्राचार समाजवादी विचारधारा के प्रति शैक्षणिक जिज्ञासा और समाजवादी लक्ष्य के संदर्भ में था।

पुनश्चः मैंने उनकी 'संस्कृति-विमर्श' किताब पढ़ी। उसमें जो उन्होंने सवाल उठाये हैं, उसका जवाब मनुष्य के सह अस्तित्ववादी अध्ययन से मिलता है। इस ओर शैक्षणिक ढंग से मुखातिब होना होगा, क्योंकि इन सवालों के सार्वभौम जवाब दिये गये आदर्शवादी और भौतिकवादी वैचारिक ढांचे-खांचे में आपको नहीं मिलेगा। संस्कृति विमर्श किताब से प्रश्न इस प्रकार है। 'नर-मादा के संबंध को भी कोई संतोषप्रद रूप देने में संस्कृति असफल रही'। (अध्याय -4)

2. परिवेश का बंधन और दिशा बोध अध्याय-5 से 'मनुष्य विज्ञान और तर्क बुद्धि से प्राकृतिक परिवेश के सही आकलन की दिशा में सतत बढ़ता रहा है, लेकिन समाजिक जीवन के गंतव्य के संबंध में सदा ऊहापोह की स्थिति बनी रहती हैं और इससे उबरने का रास्ता कोई विज्ञान या दर्शन अभी तक विकसित नहीं कर पाया है'।

3. मनुष्य की राजनीतिक संस्कृति ने भाषा की चतुराई से आलेख के उपन्यास 'उन्नीस सौ चौरासी' में उल्लिखित व्यवस्थाओं की तर्ज पर झूठ को सच और सच को झूठ साबित करने का ऐसा कौशल हासिल कर लिया है कि व्यक्तियों के विवेक को लकवा मार जाता है। इसलिए मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद में 'विवेक सम्मत विज्ञान' को व्यवस्था के मनोविज्ञान के रूप मे मनुष्य के मीनिंग को समझना होगा। ■

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:57 Page 72

विरल व्यक्तित्व

रामजय प्रताप

बीसवीं सदी अवसान पर था, वर्ष 1955 की बात है, उन दिनों हमारे मोतिहारी शहर में आज जैसी भीड़ नहीं थी, न उतना शोर था। हमारी एक छोटी-सी टोली थी और हम लगभग प्रतिदिन मिला करते थे। मिलते तो देश-दुनिया की खबरों पर चर्चा करते तथा शहर के सांस्कृतिक-साहित्यिक आयोजनों में हिस्सा लिया करते थे। उस वक्त मैंने वकालत शुरू कर दी थी और मोतिहारी कचहरी आना-जाना शुरू हो गया था। वकालत में वेदप्रकाश आर्य हमारे सीनियर साथी थे। हमारी अक्सर बैठक उन्हीं के आवास पर होती थी। एक रोज उन्होंने कहा, आज शाम में आइए एक अद्‌भुत व्यक्ति से आपको मिलवाते हैं। जब मैं साथी नवल किशोर प्रसाद के साथ वहां पहुंचा तो उनके कमरे में एक व्यक्ति वहां पहले से बैठा हुआ था। परिचय होने पर मालूम पड़ा कि उनका नाम अच्युतानंद किशोर नवीन है, ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी में काम करते हैं। विशेष परिचय इस रूप में हुआ कि वह गाँधीवादी-समाजवादी है तथा समाजवादी आंदोलन से जुड़े हुए हैं। तब कुछ ही दिनों पहले समाजवादी जन परिषद का गठन हुआ था। नवीन जी ने हमें सामयिक वार्ता की कुछ प्रतियाँ दी और कहा, इसे पढ़िए, फिर इस पर बात होगी। उसी समय उन्होंने अपने नेता व विचारक किशन पटनायक, सच्चिदानंद सिन्हा, अशोक सेकसरिया, भाई वैद्य और सुनील वगैरह के बारे में बी बतलाया।

कहना नहीं होगा, *सामयिक वार्ता* में छपे लेखों ने हम सभी को प्रभावित किया। हम लोग सजप से जुड़ गए और सामयिक वार्ता का ग्राहक बनाने लगे। इस बीच सच्चिदानंद सिन्हा जी (सच्चिदा जी) को मोतिहारी बुलाया गया। साथ में प्रो. अवधेश कुमार भी थे। दोनों मोतिहारी में नवीन जी के यहां दो दिनों तक रुके और पूरे समय हम लोगों को अपने विचारों से अवगत कराते रहे। सहज इतने थे कि हमें लगा ही नहीं कि इस देश के एक मूर्धन्य विचारक से बातें कर रहे हैं। उनकी सादगी और विपुल जानकारी ने हमारा मन मोह लिया। इसके बाद तो वह कई दफे सजप के कार्यक्रमों में मोतिहारी आए और मेरा भी उनके यहां जाना हुआ। अलावे इसके अन्य जगहों पर होने वाले सम्मेलनों और सेमिनारों में भी हमारी मुलाकात होती रही। इस तरह काफी करीब हो गए उनके। उनकी मृत्यु की सूचना जब साथी जगद नारायण जी और अरविन्द वरुण जी ने दी तो मन बेचैन हो उठा, किसी भी हाल में उनकी अंत्येष्टि में हिस्सा लेना है। धन्य मानता हूं स्वयं को कि मनिका पहुंचकर मैंने उनकी अर्थी को कंधा दिया। वह मेरे सरीखे सैकड़ों लोगों के राजनीतिक गुरु थे।

उल्लेखनीय है, इन तीस वर्षों की अवधि में दुर्भाग्य से समाजवादी जनपरिषद् से जुड़ी कई महान विभूतियां हमारे बीच से चली गयीं, जिनमें किशन पटनायक, जुगल किशोर रायवीर, प्रो. विनोदानंद प्रसाद सिंह, भाई सुनील, अशोक सेकसरिया और डॉ. स्वाति वगैरह प्रमुख नाम हैं। उनके गुजर जाने के बाद सच्चिदा जी ही हमारे बीच थे, जो उनकी अनुपस्थितियों को अकेला भर रहे थे। अब उनके नहीं रहने से जो खालीपन महसूस हो रहा है, उसे शब्दों में अभिव्यक्त कर पाना मुश्किल है। हम चाहते थे, वह सौ वर्षों की उम्र पारकर दुनिया को अलविदा कहें। लेकिन, हमारे चाहने से क्या होता है! वह तो पूरी तैयारी में थे। मृत्यु का एक तरह से उन्होंने आह्वान किया था। कुछ समय से उनका शरीर साथ नहीं दे रहा था। आंखों से कम दिखना, कानों से कम सुनाई पड़ना, याददाश्त का कमजोर पड़ जाना, लिख-पढ़ नहीं हो पाना, कहीं घूम-फिर नहीं कर पाना आदि। इन सब चीजों से वह मानने लगे थे कि मैं धरती पर बोझ हूं, मेरा जीना अब ठीक नहीं है। उन्हें जानने वाले जानते हैं, न केवल वह अपने राजनीतिक विचारों और मूल्यों के प्रति समर्पित थे, निजी जीवन में भी वह अपने निर्णयों को लेकर काफी सख्त थे।

सच्चिदा जी की बौद्धिकता का लेखकीय क्षमता का पूरा बौद्धिक जगत सम्मान करता था। वे जितना लिख गए हैं, उतना लिख पाना सबके वश की बात नहीं है। उनके सम्पर्क में आने के बाद मैंने उनकी पुस्तकें पढ़ीं। बहुत-सी किताबें तो नवीन जी से लेकर पढ़ी, जिनके पास सच्चिदाजी का सारा लिखा हुआ सुरक्षित और संरक्षित है।

मुझे याद है, मैं जब पहली बार सच्चिदा जी से मिलने उनके गांव मनिका पहुंचा तो उन्होंने मुझे अपनी पुस्तक *सोशलिज्म ऐंड पावर* भेंट की थी। वह पुस्तक सोवियत संघ के विघटन के बहुत पहले लिखी गयी थी। लेकिन, उस पुस्तक को पढ़ने से लगता है कि सच्चिदा जी ने एक तरह से सोवियत संघ के टूटने की भविष्यवाणी ही कर दी थी। सत्ता की निरंकुशता, अभिव्यक्ति की आजादी पर पाबंदी, सत्ता का सख्त केन्द्रीकरण और घोर राष्ट्रवादिता, ये तमाम तरह की समाजवाद विरोधी विकृतियां सोवियत संघ की कम्युनिस्ट सत्ता में आ गयी। सच्चिदा जी ने उक्त पुस्तक में मार्क्स के विचारों के उलट जा रही साम्यवादी सोवियत सत्ता व्यवस्था तथा मार्क्स की वैचारिकी की भी महत्वपूर्ण चूकों को विस्तार से रेखांकित किया है और अन्त में उन्होंने गांधी के विचारों को रखा है और एक प्रकार से आह्वान किया है कि मनुष्य और पूरे जगत का कल्याण अहिंसक गांधीवादी लोकतांत्रिक समाजवादी मॉडल अपनाने से ही होगा क्योंकि यही एक विचारधारा है, जिसकी जांच होना अभी भी शेष है। पुस्तक पढ़ने के बाद ही मैंने तय कर लिया कि सच्चिदाजी की कुछेक अंग्रेजी पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद जरूर करूंगा।

सच्चिदा जी की *केऑस ऐंड क्रिएशन* पुस्तक मेरे पास नहीं थी।

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:57 Page 73

लेकिन, कला पर लिखी गयी उनकी इस अद्‌भुत पुस्तक को पढ़ने की मेरी उत्कट लालसा थी। पुस्तक उपलब्ध नहीं हो पा रही थी तो... कुमार अरुण जी ने उक्त पुस्तक को प्रकाशक ललित कला अकादमी, नई दिल्ली से मंगाकर उपलब्ध करवायी। कला और मनुष्य की नैसर्गिक कल्पनाशीलता को समझने के लिए यह पढ़ी जाने वाली आवश्यक पुस्तक है। अनुवाद करने के लिए मैंने उनकी पांच अंगरेजी पुस्तकों का चयन किया– *सोशलिज्म एंड पावर, केऑस ऐंड क्रिएशन, अनार्म्ड प्रोफेट, एडवेंचर्स ऑफ लिबर्टी* तथा द *बिटर हार्वेस्ट*। उनका हिन्दी अनुवाद क्रमशः समाजवाद और सत्ता, अरूप और आकार, निहत्था पैगंबर, आजादी के अपूर्व अनुभव तथा कड़वी फसल है। ये पांचों पुस्तकें अरविन्द मोहन जी द्वारा संपादित तथा राजकमल प्रकाशन, दिल्ली से आठ खंडों में प्रकाशित 'सच्चिदानंद सिन्हा रचनावली' में शामिल हैं। 'अरूप और आकार' पुस्तक राजीव रंजन गिरि, पीयूष दईया व ज्योतिष जोशी के प्रयास से ललित कला अकादमी, नई दिल्ली से प्रकाशित हुई। 'निहत्था पैगंबर' पुस्तक राजीव रंजन गिरि और मणिमाला जी ने गांधी स्मृति व दर्शन समिति, नई दिल्ली से प्रकाशित की। 'आजादी के अपूर्व अनुभव' को राजकमल प्रकाशन ने छापा। पुस्तक रूप में नहीं आ पाई तो वे हैं, 'समाजवाद और सत्ता' तथा 'कड़वी फसल', जो प्रकाशनार्थ क्रमशः गांधी दर्शन समिति और राजकमल प्रकाशन के पास पड़ी हुई हैं। लेकिन खुशी है कि ये दोनों पुस्तकें उक्त रचनावली में सम्मिलित हैं।

सच्चिदा जी की दृष्टि कितनी कलात्मक थी, इसका अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि ललित कला अकादमी, नई दिल्ली के कला संपादक डॉ. ज्योतिष जोशी ने 'केऑस एण्ड क्रिएशन' का हिन्दी नाम सुझाने का आग्रह किया। मैंने उसका शाब्दिक अनुवाद ही कर दिया, 'विशृंखलन और सृजन'। लेकिन, अंतिम रूप से नाम सुझाने के पहले मैंने इस पर सच्चिदाजी से बात की तो तुरंत उन्होंने कहा टाईटिल रखिए 'अरूप और आकार' सब टाईटिल रखिए 'कला में सृजन'। बस, यह टाईटिल मुझे भी पसंद आ गया और यही रह भी गया। मुझे याद है, पुस्तक के छपने के पूर्व मैंने इस पुस्तक का पहला अध्याय छापने के लिए किशन कालजयी जी और राजीव रंजन गिरि को भेजा था, वह संवेद पत्रिका में छप गया। सच्चिदा जी और उनके छोटे भाई प्रो. प्रभाकर सिन्हा जी को वह अनुवाद काफी पसंद आया था। तब प्रभाकर जी ने सवाल भी मुझसे किया था कि इस विषय में आपकी रुचि कैसे हुई? मैने केवल यही जवाब दिया, बस यूं ही। पुस्तक छपकर आयी, जिस पर मित्रों की मिश्रित प्रतिक्रियाएं भी आयीं। अधिकांश लोगों ने बढ़िया कहा तो कुछेक ने यह भी कहा कि अनुवाद में काफी कठिन शब्द प्रयुक्त हुए हैं। लेकिन सच्चिदा जी को पढ़ने वाले जानते हैं कि उनकी हिन्दी और अंगरेजी, दोनों भाषाओं पर जबर्दस्त पकड़ थी। उनका हिन्दी गद्य एक तरह से सघन ही होता था।

बातचीत में सच्चिदा जी कभी भी अपनी निजी बातें साझा नहीं करते थे, करते भी थे तो बमुश्किल। हालांकि, वे अपना निजी अनुभव अवश्य साझा करते थे और खुशी-खुशी सुनाते थे। मुझे याद है, बढ़ाना (नालंदा) में सजप की बिहार इकाई का राज्य सम्मेलन था। उसमें किशन पटनायक भी पहुंचे थे, सच्चिदा जी तो थे ही। सम्मेलन की समाप्ति के बाद हम 4-5 लोग राजगीर के लिए निकले, जहां से ट्रेन पकड़कर पटनायक भी पहुंचे थे, सच्चिदा जी तो थे ही। सोचा था कि रास्ते में कोई सवारी गाड़ी मिलेगी तो पकड़ लेंगे। लेकिन सवारी गाड़ी तो नहीं मिली, बारिश जरूर मिल गयी। बारिश अकस्मात आयी, हम कोई छुपने की जगह ढूंढ़ पाते, तब तक पूरी तरह भींग गए। बरसात का मौसम था, इसलिए काफी देर तक जमकर बारिश हुई। सच्चिदा जी को देखकर मैंने कहा, कहीं छुप जाया जाएं। अन्य लोगों ने भी मेरे सुझाव पर हामी भरी। लेकिन, सच्चिदा जी ने कहा, जब भींग ही गए तो अब रुकने से क्या फायदा? चलते रहिए। पैदल हम राजगीर पहुंच गए। ठंड लग रही थी। सच्चिदा जी की सेहत को लेकर हम सभी चिंतित थे। आश्चर्य कि बारिश में भींगते हुए इतनी लंबी दूरी पैदल तय करने के बाद भी वह हम लोगों से बेहतर हालत में थे।

सच्चिदा जी के सानिध्य का एक बड़ा लाभ यह हुआ कि हम लोग कभी वैचारिक शिकार नहीं हुए। याद आता है, अन्ना आंदोलन के समय उन्होंने अपनी दूरदर्शिता और तार्किक बातों से हमें उस आंदोलन के साथ बहने से बचा लिया। हालांकि, सजप के कई साथ बदलने के ख्याल से सजप छोड़कर उस आंदोलन से और बाद में आम आदमी पार्टी से जा जुड़े। नतीजा क्या हुआ, सभी को मालूम है? केन्द्र में भाजपा की सरकार उसी अन्ना आंदोलन की वजह से आयी और आज तक बनी हुई है। आम आदमी पार्टी जिसकी न कोई दिशा व विचारधारा थी, भाजपा की बी-टीम कही गयी और कही जाती है। केन्द्र की भाजपा सरकार की भेदभावपूर्ण व जन-विरोधी नीतियों के कारण जनता को जब पीड़ा पहुँचती है तो जनमानस अन्ना आंदोलन को कोसता है।

अधिकांश लोग, जो सच्चिदा जी से परिचित थे, भलीभांति जानते थे कि सच्चिदा जी का जन्म एक सम्पन्न और सुशिक्षित परिवार में हुआ था। राजनीति उन्हें बिरासत में मिली थी। उनके पिता विधायक होते थे तथा नाना और मामा बिहार सरकार के मंत्री हुआ करते थे। लेकिन, सच्चिदाजी के लिए ये उपलब्धियां कोई मायने नहीं रखती थीं। पारिवारिक सम्पन्नता से वे विरक्त रहे। बुद्ध और गांधी की तरह गरीबी को अंगीकार किया। सादगी और मूल्यों के प्रति आजीवन समर्पित रहे। न परिवार बसाया, न ही घर बनाया। मनिका की वही पुरानी कुटिया, जिसमें वे अकेला रहते थे, जहां देश के कोने-कोने से उनको जानने वाले परिचित-अपरिचित उनसे मिलने पहुंचते थे। उनसे मिलने वाला हर शख्स उनके विपुल ज्ञान, प्रेम और सादगी से इतना मुग्ध हो जाता था कि उनसे आतिथ्य की उम्मीद को ही भूल जाता था। कहना न होगा, सच्चिदा जी से जब भी मिला, उनका भरपूर स्नेह मिला और मिलकर लौटा तो काफी ऊर्जा और उत्साह के साथ लौटा। सच्चिदा जी के नहीं रहने पर यह दुर्लभ सुखबोध खो रहा हूं। विरल व्यक्तित्व था उनका, वे अपने विचारों के लिए सदा स्तुत्य और अमर रहेंगे। ■

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:57 Page 74

मेरे मामा

डॉ. सुजाता मिश्र

मन की तिजोरी में जीवन की अनेक सुखद-दुखद अनुभूतियां बंद रहती है, जीवन की आपाधापी में व्यक्ति जिन अनुभवजनित स्मृतियों को विस्मृत समझ लेता है, वो भी अनुकूल परिवेश पाकर मानो पुनः जागृत हो उठती है और गुजरा हुआ जमाना भी जैसे कल की बात जान पड़ता है। व्यक्ति विवेकशील होकर समय के साथ भले आगे बढ़ जाता है किंतु उसके मन के कुछ तार आजीवन उन अनुभूतियों से जुड़े रहते हैं, जिन्होंने उसके मन पर, जीवन पर गहन प्रभाव डाला हो। इसीलिये शादी के बाद जब मैं पहली बार मुजफ्फरपुर, बिहार स्थित अपने ससुराल गई तो एकाएक महसूस हुआ कि इस जगह से कोई पुराना नाता है और फिर सोचने पर याद आया कि दिल्ली में रहने वाली कोई 7-8 बरस की बच्ची थी, मैं जो मुजफ्फरपुर में रहने वाले अपने मुंहबोले मामा 'सच्चिदानंद सिन्हा' जी को चिट्ठियां लिखकर भेजा करती थी। बस स्मृति के इस एक झरोके से ही मन जैसे 25-30 बरस पीछे बचपन के उस दौर में पहुंच गया, जो प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का सबसे सुंदर और निश्छल दौर होता है। जब हम परियों की कहानियां सुनते ही नहीं थे बल्कि उन पर सहज विश्वास भी कर लेते थे।

एक साहित्यिक परिवार में जन्म लेने के कारण बचपन से हम भाई-बहनों को एक बौद्धिक परिवेश मिला, जिसका श्रेय हमारे पिताजी प्रो. रामेश्वर मिश्र पंकज जी को जाता है। उनसे मिलने, विभिन्न विषयों पर चर्चा करने वरिष्ठ और युवा साहित्यकारों और पत्रकारों का (जिनमें कई देश, दुनिया के जाने-माने प्रतिष्ठित व्यक्तित्व भी शामिल हैं) का घर आना-जाना लगा रहता था। यह वह दौर था, जब लोग सचमुच में 'सोशल' हुआ करते थे, अपनों से मिलने स्वयं जाया करते थे, किसी प्रकार की सोशल नेटवर्किंग साइट, एप्स या मोबाईल फोन तब नहीं हुआ करते थे। हमारे घर पर प्रायः रविवार की सुबह से ही पिताजी के साहित्यिक- बौद्धिक मित्रों का जमावड़ा लगने लगता था... सोफे तब नहीं होते थे, कुर्सी-टेबल का प्रयोग होता था और लोग यदि ज्यादा आ जाएं तो जमीन पर ही 'बिछौना' लग जाता था। चाय-नमकीन और बिस्कुट कई दौर चलते और इसी बीच गम्भीर चर्चा होती रहती देश-दुनिया के अनेक मुद्दों पर। हम सब तो बच्चे थे, खेलते-कूदते, गुजरते रहते बैठक कक्ष से, सबका प्यार, दुलार पाते शायद तीसरी-चौथी कक्षा में रही हूँगी मैं... इसी दौरान यदि भोजन की योजना बन जाये तो पापा ही मित्रों में से कुछ युवा पत्रकार मित्र रसोईघर में जाकर मां की मदद करने लगते। कोई सब्जी काटता, कोई आंटा गूंथता। बड़े हो या छोटे सबका जीवन सहज हुआ करता था। भोजन करना - करवाना या बनाना कोई बड़ी समस्या या आयोजन नहीं माना जाता था।

पढ़े-लिखे लोगों के साथ यह एक अच्छी बात होती है कि वे गृहस्थी के काम को 'स्त्री' का काम मानकर नहीं देखते, कम से कम अपने घर पर मैंने यही देखा कि पिताजी के जो भी मित्र आते थे, वे भोजन बनाने में स्वयं मां की मदद करते थे। ऐसा मैंने कभी नहीं देखा कि पुरुष एक तरफ बैठकर खा-पी रहे हैं और मां या अन्य महिलाएं रसोई में लगी पड़ी हैं, जैसा आज भी मैं कई घरों में देखती हूं। हमारे यहां तो सामान्य दिन हों या कोई पारिवारिक आयोजन स्त्री-पुरुष मिलकर ही भोजन बनाते थे, कभी न बाहर से भोजन आता था, न भोजन बनाने वाले! ऐसे ही बुद्धिजीवी सज्जन व्यक्तियों में से एक थे देश प्रख्यात बुद्धिजीवी, समाजवादी चिंतक, ऋषितुल्य आभा मंडल के धनी लेखक सच्चिदानंद सिन्हा जी (अब स्व.)।

मंझोली कद-काठी, दुबली-पतली काया, ऊंची सुडौल नाक उनके गौरवपूर्ण व्यक्तित्व की परिचायक थी, नाक और होंठो के बीच में मूंछों की पतली सी रेखा चेहरे को और स्पष्टता देती थी। नाक पर टिका चश्मा और चश्में से झांकती शांत स्थिर आंखें उनके अध्ययनशील, गम्भीर व्यक्तित्व की झलक देते थे। सिर तक विस्तारित मस्तक और लम्बे कान गौतम बुद्ध की स्मृति दिलाते थे... हल्के-सफेद-काले बाल जीवन और चेहरे पर उम्र के निशान उनके जीवन संघर्ष और अनुभवों के परिचायक थे और इन सबके मेल से उपजे व्यक्तित्व में बसी बच्चों सी सरलता और सहजता शायद इसी वजह से घर आने वाले पिताजी के तमाम मित्र हम बच्चों के लिये 'चाचा' थे, 'मामा' की उपाधी केवल 'सच्चिदानंद सिन्हा' जी को प्राप्त हो पाई।

मैं करीब 7-8 बरस थी, मामा जी जब भी दिल्ली आते (वे पहले दिल्ली में रहते भी थे) हमारे घर जरूर आते, समाजवादी चिंतक होने के नाते उनकी मित्रता भले पिताजी से थी पर मां के लिये वे कब 'मुंहबोले' भाई बन गये, यह पता नहीं चला। मां उनके मन का भोजन बनाती, जिमिकंद की सब्जी, दाल, चावल, रोटी, चटनी आदि। वो बड़ा स्वाद लेकर खाते और हम बच्चों से मजाक में कहते कि इतना स्वादिष्ट भोजन है कि गर्दन तक भरकर खाऊंगा, ताकि जब गांव लौट जाऊं, तब तक स्वाद बना रहे। क्योंकि घर जाकर तो मैं फिर खिचड़ी ही बनाता-खाता हूं।

भोजन बन जाने की प्रतिक्षा में वे कभी हम बच्चों को अंगरेजी पढाते, तो कभी हमारे साथ खेलते। भालू-बंदर के खिलौने दिखाकर कहानी सुनाते, कभी फूल झाड़ू के खाली पाईप (जो तब टीन का बना होता था) पर हाथों की उंगलियों से तांगे की आवाज निकालते। बत्ती बहुत जाती थी उन दिनों, मामा जी मोमबत्ती और या लैम्प की रोशनी में हाथों से दीवारों पर विभिन्न आकृतियां बनाकर दिखाते... चिड़िया, शेर, हिरन और कुत्ता आदि! कभी चंदा मामा की कहानी सुनाते तो कभी 'नानी तेरी मोरनी को मोर ले गये' गाने पर छोटी बहन मुन्नी और

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:57 Page 75

मेरा बचकाना डांस भी देखते। वे हम सब भाई-बहनों को प्रिय थे, हममें होड़ लगती थी कि कौन उनकी गोदी में बैठेगा। इतना स्नेह और धैर्य था उनमें बच्चों के प्रति कि उनके आते ही सब भाई-बहन उनके साथ ही मग्न हो जाते और मां को हमारे हो-हल्ला से राहत मिलती, वो रफ्तार से रसोई का काम करती। इधर मामा जी भी हमारे साथ खेलते हुए कभी मटर छील देते तो कभी सलाद काट देते। मुझे अब लगता है कि हम बच्चों को सम्हाल वो कुछ देर के लिए ही सही घर के बड़ों को मुक्ति दे देते थे! सज्जन व्यक्ति की यही पहचान होती है, वो खामोशी से देख लेता है कि घर-परिवार में कहां वो अपना योगदान दे सकता है और बिना किसी को जताए अपना कर्तव्य निभाता है। हमउम्र भाई-बहनों में कितना झगड़ा होता है, किंतु मामाजी की शांत-स्नेहिल उपस्थिति में हम सब स्वतः प्रेम से रहते थे।

मामा जी जब गांव लौट जाते, तब हम उन्हें चिट्ठियां लिखा करते थे। मैंने अपने जीवन में सबसे पहले उन्हीं को चिट्ठी लिखी थी। मां उनके लिये चिट्ठी और राखी भेजती थी। वे हम बच्चों की चिट्ठियों का अलग-अलग अंतर्देशीय भेजकर जवाब भी देते थे। इतने गम्भीर चिंतक द्वारा हम बच्चों की बचकानी बातों का धैर्यपूर्वक जवाब देना, उनके व्यक्तित्व की उंचाई का परिचायक है! उनकी चिट्ठियां मिलते ही हम सब ये जानने को आतुर रहते कि मामाजी ने किसको ज्यादा प्यार दिया है। वो सच्चे समाजवादी थे, सभी बच्चों को समान प्रेम भेजते थे। किंतु बालपन को समानता रुचती कहां है? बच्चे तो हर चीज में सबसे आगे रहना चाहते हैं। तब बारी आती मामाजी की, लेखनी देखने की। और बड़ी दीदी सबकी चिट्ठियां देखकर यह निर्णय सुनाती कि मामाजी ने सबसे पहले किसे चिट्ठी लिखी होगी और सबसे अंत में, रात को सोने जाते समय किसे। वो अकसर मुझे छेड़ती कि 'मामाजी ने सबसे अंत में तुम्हारी चिट्ठी लिखी है, ऐसा लगता है कि वो नींद में रहे होंगे' मैं यकीन कर लेती और उदास हो जाती! ... बड़े होने पर जाना कि सृजनशील व्यक्ति लिखने-पढ़ने का सर्वाधिक कार्य देर रात तक जागकर ही करते हैं और रात के गहरे सन्नाटे में ही रचनात्मकता अपने चरम पर होती है। यानी मामाजी हम सभी बच्चों को रात में ही जागकर चिट्ठियां लिखते होंगे। उस दौर में तो साहित्यकार तक आपस में पत्र-व्यवहार किया करते थे। जो भावना, जो सुगंध हाथ से लिखी चिट्ठी में होती है, वो बात कभी किसी सोशल एप से भेजे संदेश में हो ही नहीं सकती।

ऐसा था रिश्ता हम भाई-बहनों के साथ सच्चिदानंद सिन्हा मामा जी का। ... फिर जिंदगी आगे बढ़ गई, संपर्क के तार बिसरा गए... मामाजी स्थाई रूप से मुजफ्फरपुर में बस गये। वो आजीवन अविवाहित रहे। सम्पन्न परिवार से होने के बावजूद अपने समाजवादी मूल्यों के कारण उन्होंने एक सदगीपूर्ण किंतु बौद्धिक जीवन का चयन किया। आज के समय में भी उनके पास मोबाईल फोन तो छोड़िए लैंड लाईन फोन तक नहीं था, वो ये सब आधुनिक सुख-सुविधाएं और उपकरण नहीं पसंद करते थे।

वर्ष 2024 में मैं दीपावली के अवसर पर जब बिहार गई, तब अपने ससुर प्रो. नंदकिशोर प्रसाद जी को मामाजी के बारे में बताया और उनसे मिलने की इच्छा जताई। पिताजी (ससुर जी) ने एक सरकारी स्कूल के शिक्षक, जो उनके मित्र भी हैं-से खोज खबर ली, क्योंकि वे लोग चुनावी ड्यूटी में घर-घर जाते हैं, उन्हें सबकी जानकारी रहती ही है। उन्हीं के सहयोग से हम लोग मनिका गांव में स्थित मामाजी के घर गए। वे बाहर ही बैठे थे कुर्सी लगाकर, अखबार पढ़ रहे थे। माधव (मेरे पति) ने कार रोकी और 'कहा यही हैं क्या वे?' मैंने बरसों बाद उन्हें देखा और झट से पहचान गई। उत्साह के मारे कार से उतरकर उनके पास दौड़ कर गई, उनके पैर छुए और कहा प्रणाम मामाजी।

खादी की सफेद बनियान और नीले रंग की लुंगी पहने, आंखों पर पहले से अधिक भारी चश्मा चढ़ा था। उम्र के कारण कमर अब झुक गई थी, दांत भी कुछ टूट चुके थे, पर मुस्कान वही बच्चों जैसी थी।

वे भला मुझे कैसे पहचानते! एक छोटी बच्ची हुआ करती थी, जो अब उनके सामने एक परिपक्व स्त्री के रूप में खड़ी थी। वे उठकर बहुत आत्मीयता के साथ बोले 'कौन हैं आप लोग, कहां से आएं हैं?' बात करने से समझ आया कि अब उनके कान में सुनने की समस्या है, जो उम्र के मुताबिक स्वाभाविक था। एक पल के लिये लगा कि क्या मैं उन्हें बचपन की तस्वीरें दिखाऊं? किंतु उसकी जरूरत नहीं पड़ी। थोड़ी सी बातचीत के बाद उन्हें सब याद आ गया। उनकी आंखों में नमी उमड़ पड़ी। वे बोले 'तुम सुजाता हो? हां गार्गी, कपिल, सुजाता और एक छोटी बहन भी था ना देवसेना!... तुम और वो बचपन में मेरे सामने डांस करते थे। अन्नपूर्णा कैसी है? पंकज जी कैसे हैं? कितने बरस बीत गये। कुछ पता ही नहीं चला।'

माधव ने तुरंत पापा-मम्मी को फोन लगाया और मामाजी से बात करवाई... बरसों बाद सबकी आवाज सुन वे बेहद भावुक हो गये। मां ने पूछा आप कैसे हो? वे हंसकर बोले 'मैं 95 वर्ष का हूं, और अपनी उम्र के हिसाब से एकदम ठीक हूं। आज भी खिचड़ी खाता हूं... आज तुम सबसे बात करके ऐसा लग रहा कि एक युग बीत गया। कभी सोचा नहीं था कि फिर बात हो सकेगी। सुजाता ने ये कैसे संभव कर दिया।'

वे अंतिम समय तक मनिका गांव (मुजफ्फरपुर) के एक कोठरीनुमा घर में अकेले ही रहते रहे, जिसमें बिजली तक नहीं थी! बेरंग, अस्त-व्यस्त से कमरे में एक खाट, कुर्सी, टेबल, कुछ किताबें, एक लालटेन और एक टेबल फैन, ये थी उनकी कुल भौतिक सम्पत्ति! बौद्धिक रूप से सम्पन्न और वैचारिक रूप से एक आदर्श समर्पित जीवन जीने वाले, हमारे समय के किसी ऋषि मुनि जैसा जीवन था उनका। मैं भला उन्हें कैसे भूलती! बचपन की एक पुरानी तस्वीर लेकर उन्हें खोजते हुए मनिका गांव पहुंची और जीवनभर न भूल सकने वाली मधुर स्मृतियां, प्रेम और संतुष्टि लेकर लौटी। संतुष्टि इस बात की कि उनकी चिर विदाई से पूर्व एक बार उनसे प्रत्यक्ष मुलाकात हो गई। कभी-कभी इतना ही सुख पर्याप्त होता है! ■

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:57 Page 76

एक समाजवादी संत अतीत के झरोखे में

प्रो. (डॉ.) अर्पणा सुमन

सच्चिदानंद सिन्हा का जन्म एक जमींदार परिवार में हुआ था। जैसे सिद्धार्थ ने अपने पिता शुद्धोधन के खेतों में काम करने वाले मजदूरों की मजबूरी और गरीबी का दर्द अनुभव किया था। मनुष्यों के द्वारा मनुष्यों के शोषण को देखा समझा था, वैसे ही सच्चिदा बाबू ने खेतिहर मजदूरों के दर्द को समझा था। उनके मन में यह बात घर कर गयी थी कि मजदूर मेहनत करे और भूखे मरे, और उनके मेहतन का फल बिना किसी श्रम के मालिक भोगे, यह कहां का न्याय है? इन्हीं विचारों के कारण वे पटना साइंस कॉलेज में बीएससी के छात्र थे, तब कुछ किताब और दो चार कपड़ा लेकर हॉस्टल छोड़ हजारीबाग चले गये। कुछ वर्ष वे हजारीबाग में रहने के बाद बंबई चले गये। उन दिनों का स्मरण करते हुए उन्होंने बताया कि हजारीबाग मजदूरी की और बंबई में दो साल तक खलासी का काम भी किया। ऐसे महामानव थे सच्चिदा बाबू, उनका निवास स्थान चमेला कुटीर त्याग, सादगी का पाठ पढ़ाने वाला विद्यालय है।

गांधीजी के भारत छोड़ो, करो या मरो के उद्घोष के साथ 8 अगस्त, 1942 के मध्य रात्रि के बाद कांग्रेस के अधिकांश नेता गिरफ्तार कर लिये गये। गिरफ्तारी से बचे नेताओं ने आंदोलन को दिशा देने का कोई प्रयास नहीं किया। इसी पृष्ठभूमि में कांग्रेस के भीतर समाजवादी धारा के लोगों ने गिरफ्तारी से बचते हुए इस आंदोलन को जारी रखने का प्रयास किया। डॉ. राम मनोहर लोहिया, जेपी, अचुत पटवर्धन, अरुणा आसफ अली, रामानन्द मिश्र आदि ने भूमिगत रहकर आन्दोलन को जारी रखने का आह्वान किया। इस क्रम में आजाद दस्ता का गठन किया गया। आजाद दस्ता के सदस्यों को सशस्त्र प्रशिक्षण देना और भूमिगत रहकर आन्दोलन को दिशा और गति देने का काम था। सच्चिदा बाबू इस समय बी.बी. कालेजियट स्कूल, मुजफ्फरपुर के छात्र थे और स्कूल के ही छात्रावास में रहते थे। इसी क्रम में आजाद दस्ता का प्रशिक्षण शिविर नेपाल में चल रहा था। डॉ. लोहिया, जेपी इस प्रशिक्षण शिविर का निरीक्षण करने जा रहे थे। रास्ते में ही इन दोनों नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें नेपाल के हनुमान नगर जेल में डाल दिया गया। इस घटना की सूचना जब आजाद दस्ता के लोगों को लगी तो उन लोगों ने यह निर्णय लिया कि हम लोग अपने नेताओं को जेल तोड़कर रिहा करेंगे। इस योजना को सफल बनाने वाले सदस्यों में सरदार नित्यानंद सिंह, सूरज नारायण सिंह, गुलाब चन्द गुप्ता, सीताराम सिंह, अमीर गुरु, बच्चन शर्मा, सुखदेव सिंह, राजेन्द्र सिंह आदि करीब बीस लोग थे। हनुमान नगर जेल तोड़कर डॉ. लोहिया और जे.पी. को छुड़ाकर रिहा करा लिया गया। फिर समाजवादियों का भूमिगत आन्दोलन चलता रहा। इस भूमिगत आन्दोलन से सच्चिदा बाबू काफी प्रभावित हुए और अपने साथियों के साथ वे इस आन्दोलन से जुड़ गये। उन दिनों को याद करते हुए सच्चिदा बाबू ने बताया कि उस समय बी.बी. कॉलेजियट स्कूल के मुजफ्फरपुर के छात्र के छात्रावास में रहते थे। वे अपने साथियों के साथ जे.पी., डॉ. लोहिया आदि समाजवादी नेताओं के पर्चें, पुस्तिकाओं को लोगों के बीच

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:57 Page 77

पहुंचाने का काम करने लगे। इस तरह भूमिगत कार्यकर्ताओं का एक ताना-बाना बन गया। जिसके माध्यम से पुस्तिकायें, पोस्टर, पर्चा ये लोग सभी लोगों तक पहुंचाते थे। उन्होंने बताया कि कैसे तिरंगा झंडा को लोटा में छुपाकर झंडा फहराने के लिए निकलते थे। ताकि होस्टल सुपरीटेंडेंट को यह शक न हो। पकड़े जाने पर उन लोगों को सजा भी दी जाती थी। इस तरह आजादी की लड़ाई में उन्होंने छोटी उम्र से ही अपनी भूमिका निभाई थीं। इसी क्रम में मेरे पिताजी (श्री सीताराम सिंह) से उनका मिलना हुआ और आजीवन वे एक-दूसरे के होकर रह गये। छात्र जीवन से ही सामाजिक विषमता, राष्ट्र भावना आर्थिक विषमता तथा जनता की समस्याओं ने उनके जीवन को उद्वेलित करती रहती थी। यही कारण था कि वे अपना सर्वस्व त्याग कर अपने आपको समाजवादी आन्दोलन में झोंक दिये। मुजफ्फरपुर समाजवादी आन्दोलन का गढ़ था, जिसमें वर्तमान वैशाली जिला और सीतामढ़ी जिला भी शामिल था। सच्चिदा बाबू ने अपना मुजफ्फरपुर के मनिका में निवास स्थान बनाया और वहां के किसान मजदूरों के हितों के लिए आजीवन आवाज उठाते रहे। वे समाज के अंतिम व्यक्ति के पक्षधर और बेजुबानों की जुबान बने रहे। सच्चिदा बाबू एक समाजवादी लेखक, समाजवादी आन्दोलन के मजबूत स्तम्भ थे। उनकी सादगी सरलता, समाज, राज्य और देश के लिए अनुकरणीय और आदर्श रहा। वस्तुतः उनका जीवन एक संत का जीवन था। आमजनों से लगाव पिछड़े दलित, गरीबों से उनकी हमदर्दी को उनके व्यक्तिव का बड़ा हिस्सा है।

सर्वप्रथम मुझे सच्चिदा बाबू के दर्शन का सौभाग्य 1969 में मिला। राजेश्वर नारायण, एडवोकेट के घर पर शायद समाजवादियों का कोई कार्यक्रम था। मैं छोटी थी, इसलिए मुझे ठीक से याद नहीं है। पिताजी (सीताराम सिंह) के शताब्दी वर्ष पर समाजवादी जन परिषद् के द्वारा नागरिक सम्मान का आयोजन किया गया था। इस आयोजन में नवीन भाई जी एवं नीरज सिंह जी की अहम भूमिका थी। सच्चिदा बाबू इस आयोजन में शामिल होने हाजीपुर आये थे। बाबू जी बोले कि सच्चिादा भाई को घर पर बुलाओ उनकी तबियत ठीक नहीं है। यहां थोड़ा आराम भी कर लेंगे और हम लोग बहुत दिन के बाद मिल रहे हैं, बहुत कुछ उनसे बात करनी है। दोपहर को खाना खिलाने के बाद जब मैं उनसे किसान आन्दोलन, जाति तोड़ो, छूआछूत आदि विषय पर कुछ जानने की इच्छा व्यक्त की तो इन सभी विषयों पर उन्होंने बहुत सारी जानकारी दी। इस संदर्भ में उन्होंने एक वाकया सुनाया। उन्होंने बताया कि गोरौल से मीटिंग करके लौट रहा था तो तुर्की के आस-पास हम लोगों को प्यास लगी कुछ दूर पर एक व्यक्ति कुंआ पर पानी भर रहा था। जब मैंने कहा कि मुझे पानी पीना है तो वह व्यक्ति बोला मालिक हम अछोत हती। हमरा हाथ से आपने कइसे पानी पियबा। यानी कि मैं अछूत हूँ, मेरे हाथ से आप पानी नहीं पी सकते है। बहुत समझाने के बाद वह आदमी हम लोगों को बाल्टी में पानी भर कर दिया। यह थी उस समय की सामाजिक स्थिति। इसके बाद हम लोग गांधी आश्रम गये। शताब्दी समारोह के नागरिक सम्मान के सभा की अध्यक्षता सच्चिदा बाबू ने की है। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा 'सीताराम भाई जिन्दा शहीद हैं। वे अक्सर कहते थे कि सीताराम भाई को एक लम्बे अरसे तक देश, समाज के लिए संघर्ष करने का मौका मिला है, जिसके कारण उन्हें हम जिन्दा शहीद की श्रेणी में रखते हैं।

अंतिम बार सच्चिदा बाबू का दर्शन सन् 2024 में 18 मार्च को हुआ। हम लोगों के आने की सूचना उन्हें मिल गई थी। नवीन भाई जी के घर पर हम लोगों को कुछ देर हो गयी। इस बीच सच्चिदा बाबू कई बार जगत जी से मिले और कहा कि नवीन जी को फोन कर पूछें कि आने में देर क्यों हो रही है। जब हम लोग वहां पहुंचे तो वे अपने कुटिया के सामने लकड़ी की कुर्सी पर बैठे प्रतीक्षा कर रहे थे। हम लोगों के पहुँचने पर उनके चेहरे पर खुशी का वह भाव दिखा, जो एक पिता को अपने बेटी के आने पर होता है। जैसे ही मैं उनका पैर छूने के लिए आगे बढ़ी, उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया और बोला हमारे यहां बेटी के पांव पूजने की परंपरा है, पाँव छुआने की नहीं। फिर भी यह कहते हुये मैं आपकी बेटी हूँ, इसलिए यह मेरा अधिकार है, कृपया मुझे अपने अधिकार से वंचित नही करें। फिर उन्होंने मुझे अपनी कुर्सी जो सबसे बड़ी थी उस उस पर बिठाया और स्वयं बिछावन पर बैठ गये। कुछ देर तक व्यक्तिगत, समाज और देश की बात हुई। फिर उन्होंने हम लोगों को नाश्ता और चाय पिलाने के बाद विदा किया। इस मुलाकात के बाद नवीन भाई जी ने एक भावपूर्ण पोस्ट लिखा था। मुझे क्या पता था कि यह मेरी उनसे आखिरी भेंट होगी।

19 नवम्बर, 2025 को नवीन भाई जी के द्वारा फोन पर यह सूचना मिली कि सच्चिदा बाबू हमारे बीच नहीं रहे। मैं बिल्कुल स्तब्ध रह गई। 20 नवम्बर के सुबह में मनिका गयी उनके अंतिम दर्शन के लिए। कुछ लोग पहले से आये हुये थे और कुछ लोग आ रहे थे। करीब डेढ़ घंटा प्रतीक्षा करने के बाद मुजफ्फरपुर से उनका शव मनिका पहुँचा। फिर शुरू हुई उनकी अंतिम यात्रा। इस यात्रा में उनके सभी चाहने वाले लोग शामिल थे। फिर चिता में आग लगायी गयी। कुछ घंटो के बाद सब समाप्त। समाजवाद का एक बड़ा पुंज बुझ गया। आप हमारी यादों में जिंदा रहेंगे। कदम-कदम पर अच्छा करने के लिए समाजवाद की जड़ो को सींचने के लिए प्रेरित करते रहेंगे। सच्चिदा बाबू अमर हैं और रहेंगे हमारी यादो में, समाजिक कार्यो में, गरीबों के दिलों में।

मौत वह जिस पर दुनिया करे शोक,
यूं तो सभी आते हैं, मरने के लिए

शत्-शत् नमन।

गांधी आश्रम, हाजीपुर। ■

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:57 Page 78

संस्मरण

उनकी याद भर से ही प्रेरणा

गंगा प्रसाद

सच्चिदाजी से बहुत कुछ सोचने-समझने की प्रेरणा मिलती रही है। अब वे हम लोगों के बीच नहीं हैं और रह गई है उनकी याद। उनकी याद भर से ही प्रेरणा मिलती रहेगी। उनके दर्शन नहीं हो सकते, लेकिन मन में जस के तस विराजमान हैं। उनकी सहजता और सादगी ऐसी कि उनके संपर्क में आने वाला कोई भी व्यक्ति उनका अपना होता चला गया।

सच्चिदा जी से मैं कभी-कभार ही मिल पाया। लेकिन जब भी उनसे मुलाकात हुई, उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। जब भी उनसे मुलाकात का मौका मिला, विभिन्न विषयों, खासकर सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों के बारे में जो कुछ बताया, उससे पुख्ता समझ बनी। मेरे लिए यही उनकी दी हुई पूंजी है।

वे मुजफ्फरपुर में रहते जब-तब अपनी बहन के यहां पटना आते तो मैं उनसे मुलाकात करने चला जाता। वे मुझे पटना में आने की जानकारी दे देते। 2001 से 2015 तक बात है। मैं 2001 में रांची से पटना आ गया था और जब भी उनसे मुलाकात करता तो बिहार की राजनीतिक स्थिति के बारे में बातचीत के आधार पर *जनसत्ता* के लिए खबर बना लेता था (*जनसत्ता* में नौकरी थी)। मेरा एक दूसरा मकसद यह रहता कि उन मुद्दों पर चर्चा कर समझ लूं, जिनके बारे में मेरी कोई स्पष्ट राय नहीं बनी होती थी। विभिन्न आंदोलनों और उसके नतीजों के बारे में वे जो बताते, वह मेरे लिए सोचने-विचारने का आधार होता। उन्होंने यह कभी महसूस नहीं होने दिया कि काफी समय हो गया और मुझे उनके यहां से चलना चाहिए। उनके पास रहते हुए मुझे अशोकजी (अशोक सेकसरिया) के पास होने का आभास होता। यों कहें, अशोकजी की कमी पूरी हो जाती।

मैं यह भला कैसे भूल सकता हूं कि 1986 से 1991 के बीच वे जब भी कलकत्ता गए तो अशोक जी के साथ मेरे घर कांचरापाड़ा मेरी पत्नी (समुद्री) और बच्चों से मुलाकात करने चले जाते थे। उस समय मैं अकेले पटना में रहता था और *नवभारत टाइम्स* में नौकरी करता था। उसमें मेरी पहली स्थाई नौकरी हुई थी। पत्नी के पत्र से पता चलता कि वे घर गए थे। पत्नी के लिए वे अशोक जी की तरह ही अभिभावक होते थे। *नवभारत टाइम्स* में रहते पटना में मेरी उनसे कभी मुलाकात नहीं हुई।

एक बार मेरी उनसे दिल्ली में 1979-80 में मुलाकात हुई थी। उन दिनों वे दिल्ली में रहते थे। सच्चिदा जी को मजबूरन दिल्ली छोड़ मुजफ्फरपुर, मनिका में आना पड़ा था। दिल्ली इतनी मंहगी हो गयी थी, वे उससे पार नहीं पाए। लोगबाग दिल्ली की ओर भागते हैं और एक बार दिल्ली में रह गए तो किसी भी सूरत में वहीं बसने की जुगत लगाते हैं। सच्चिदा जी को यह रास न आया। उन्हें दिल्ली छोड़ने का कभी अफसोस न था। (अशोक जी ने कई बार इसकी चर्चा की थी। दरअसल वे यह समझाना चाहते थे कि दिल्ली का क्रेज भला कोई क्रेज है। साथी सुनील ने भी तो दिल्ली छोड़ दी थी।)

पटना में किशन पटनायक की किताब *संभावनाओं की तलाश* का विमोचन (2019 में) तय हुआ था। मुजफ्फरपुर के अच्युतानंद किशोर नवीन से अनुरोध किया गया था कि इस पुस्तक के विमोचन के लिए वे सच्चिदा जी को राजी करें। सच्चिदा जी की तबीयत ठीक नहीं थी और उनका कहीं आना-जाना मुश्किल था। लेकिन जब सच्चिद जी को किशन जी की किताब होने का पता चला तो वे राजी हो गए। वे अस्वस्थ रहते हुए भी नवीन जी के साथ मुजफ्फरपुर से पटना आए। किताब का विमोचन गांधी संग्रहालय में हुआ। सच्चिदा जी को सुनने अच्छी संख्या में लेखक-कवि आए। सच्चिदा जी देश में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और भारतीय जनता पार्टी से संकट के बारे में बोले। उन्होंने जो संकेत दिया था, उसे आज महसूस किया जा रहा है।

एक बार मुझे सच्चिदा जी के साथ (मनिका में) एक दिन रहने का मौका मिला। उन्होंने मेरा बहुत खयाल रखा। खुद चाय बनाई। स्नान के लिए चापाकल से पानी भर दिया। बिछावन लगा दिया। उनके सामने मैं क्या था! मैं मना करता रहा, लेकिन वे माने तब न! जब भी उस दिन की याद आती है तो लगता है कि कल की बात हो। कैसे उस दिन को भूल सकता हूं।

सच्चिदा जी से बातचीत करते-करते काफी रात हो गई। दलित आंदोलन और आंबेडकर के बारे में जानने की मेरी बहुत इच्छा रही है। इस मुद्दे पर काफी चर्चा हुई। मेरे मन में काफी सवाल थे और उन सवालों को एक-एक कर उनके सामने रखा। चर्चा का एक मुद्दा यह भी था कि आंबेडकर ने दलितों की आर्थिक स्थिति सुधारने या आत्मनिर्भरता के लिए क्या विकल्प दिया। आते वक्त सच्चिदा जी ने मुझे एक किताब दी। उनके पास एक ही प्रति थी। फिर भी उन्होंने मुझे

गया था। स्व. जुगल किशोर रायबीर उत्तर बंगाल के दलित नेता थे और वे किशन जी (किशन पटनायक), सच्चिदा जी और अशोक जी के करीबी थे। समाजवादी जन परिषद की स्थापना में उनकी अहम भूमिका थी। उन्होंने अपने यहां समता केंद्र (जटेश्वर, अलीपुरदुआर) का निर्माण किया था। सच्चिदा जी वहां कई बार गए थे औ समता केंद्र में ठहरे थे। जुगल बाबू के उत्तर बंगाल के तमाम करीबी सच्चिदा जी के करीबी हो गए थे। जुगल बाबू पर लिखी किताब देख सच्चिदा जी प्रसन्न हुए और कहा कि किताब में जुगल बाबू पर और कुछ होना चाहिए था। मैं उनकी इस इच्छा को पूरी नहीं कर पाया। इसका अफसोस हमेशा रहेगा।

सच्चिदा जी से कैसे संपर्क में आया, इसकी भी कहानी है। बात 1978 की होगी। पत्र-पत्रिकाओं, उनका आंदोलनों से जुड़ाव, स्वतंत्र पत्रकारिता का जमाना था। मैं फ्रीलांसिंग करता था। मुझे एक पत्रिका निकालने का शौक हुआ। हम कुछ युवक एक लघु साप्ताहिक पत्रिका (एक नाम रख लिया-पहल) निकालने लगे।

अशोक जी के कहने पर सच्चिदा जी को पत्र लिखा कि हम कुछ युवक एक लघु साप्ताहिक पत्रिका निकालते हैं। दलित पर कुछ लिख दीजिए। तुरत उनका एक छोटा सा लेख आ गया। हम युवकों के लिए वह लेख केवल लेख नहीं था, बल्कि थाती थी। हम लोगों ने बड़े उत्साह से उसे छापा।

दे दी। जब भी उस किताब पर नजर पड़ती है तो उनकी कही बहुत सारी बातें याद आ जाती है। उनकी खुद की लिखी हुई वह किताब है : *जाति व्यवस्था मिथक, वस्तविकता और चुनौतियां*। उन्होंने अंगरेजी में लिखी थी और उसका हिंदी अनुवाद किया है अरविन्द मोहन ने।

सच्चिदा जी ने अपने बारे में कुछ बातों का जिक्र किया था। उन्होंने मजदूरी की थी। मजदूर आंदोलन में शामिल थे। बंबई में खोली में रहते थे। अपने गांव, परिवार के बारे में बताया था। मेरे बारे में कुछ भी नहीं पूछा। मेरे बारे में उन्हें सब कुछ अशोकजी से ही मालूम हुआ होगा।

सच्चिदा जी के गांव मनिका एक बार कुछ घंटों के लिए गया था। उन्हें *समतावादी जुगल किशोर रायबीर* किताब देने

उस समय कोलकाता से *रविवार* पत्रिका निकलती थी। उसके संपादक सुरेंद्र प्रताप सिंह थे। मैंने उन्हें अपनी पत्रिका दिखाई। उन्होंने देखा, हम लोगों की पत्रिका में छपे सच्चिदा जी के लेख को *रविवार* में छाप दिया। बहुत बाद में समझ पाया कि उनका वह लेख छोटा जरूर था, लेकिन कितना महत्वपूर्ण था कि *रविवार* ने लोक लिया। उन दिनों की बात सोचने पर लगता है कि सच्चिदा जी बिल्कुल साधारण युवकों को किस मंशा से आगे आने का बल देते थे।

उनके विचारों, उनकी सहजता, सादगी को मन से अपने जीवन में उतारना ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। ■

VARTA-MAY-2026_VARTA-MARCH-2020 ISSUE.qxd 01-06-2026 15:57 Page 80

आखिरी पन्ना

किसान जागरण गीत

सच्चिदानन्द सिन्हा

किसान भाई अब आई तोहरा जमाना

देश के भार बहुत दिन उठा के किसान चलल
मगर ए भार से किसान बा खुद बैल बनल।
ई भार अब अधिक दिन न सहल जाई,
जमाना बदली अब किसान लेलक अंगराई।।
किसान भाई अब आई तोहरा जमाना।
नया युग के अब गायी गांव-गांव गाना।। किसान....
तमिलनाडु घटा उठल कर्नाटक आयल
महाराष्ट्र से चल के मेरठ पर मँडरायल
ठनका के धुन पर किसान के तर ना।। किसान....
लाठी, गोली, जेल से किसान ना डरेलन
गोली खा के मर गैलन पीठ ना देखैलन
खून से लिखाता नया अफसाना।। किसान....
दिल्ली से सत्ता अब गांव-गांव आई
(पटना से सत्ता अब गांव-गांव आई)
गांवे में दवा-दारू गांवे पढ़ाई
गांवे में घरे-घरे छोट कारखाना। किसान...
अब पूंजी पतियन के चली ना चौधराई
ये लोग के मर्जी पर देश ना बिकाई
शासक ना होईहैं औद्योगिक घराना।। किसान...

भैया किसनवा हो

भैया किसनवा हो
भैया मजूरवा हो हरदम रखिहा एकता अपन बचाई
जेही राम सेही अल्ला बाड़न
कह गये संत अनेक
मंदिर-मस्जिद के झगड़ा कैसन चुगला ठाने लड़ाई।।
भैया...
जांत-पात पूछे ना कोई
हरि के भजै से हरि के होई
घट-घट में जे एक ब्रह्म तो जाति के कौन लड़ाई।।
भैया...
जात धरम के भेद बढ़ा दुश्मन हमें लड़ाये
गांव-गांव में दंगा रच के दौलत लेत उड़ाई।।
भैया...

एही से बा गऊंआ उदास

शहरन में उड़त बाटे नित गुलछरवा
बनवारी हो गऊंआ काहे भइल बा उदास।
खेतवा में खटे-मरे जनवा किसनवा
बनवारी हो काहे पड़े तबहूं उपास। बनवारी...
डिजिल महंग होला महंग होला खदवा
बीओ बोयेला महंग के किसनवा
बनवारी हो कैसे होई खेती के विकास।। बनवारी...
चीनी महंग होला कपड़ा महंग होला
साबुन तेल और रेलो महंग होला
बनवारी हो सस्ता अन्न ऊंखवा कपास।। बनवारी...
गऊंआ के लूटी-लूटी कल कारखाना चले
गऊंए के चूसी-चूसी सेठ के महल बने
बनवारी हो होत बाटे गांव के विनाश
बनवारी हो एही से बा गऊंआ उदास।। बनवारी...

हमरा खेती में अब मनवा ना लागेला

ना लागे ना लागे ना लागेला
हमरा खेती में अब मनवां ना लागेला
धूप-शीत सही-सही अन्नवां उपजाई
महंग बिजुलिया ले पानी पटाई
महंग डिजिल ले के पानी पटाई
चून बिछ मेहनत से फसल घर लाई
दमवां पर लेकिन बजर पड़े ला। हमरा खेती...
खाद खरी करके महाजन लगाई
दस बेर खेतवा के करी जोताई
उपजा से घर भरी असरा लगाई
खरचे में खेतवा बिकाय लागे ला। हमरा खेती...
अइसन जुलूम अब सहलो ना जाता
लड़े के सिवाय कौनो राह ना बुझाता
एकता के ताकत गजब करे ला
अब मिलके किसनवा लड़ेला चले ला।। हमरा खेती...

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक अतुल कुमार सिंह द्वारा 14, समसपुर जागीर, पांडवनगर, दिल्ली-110091 से प्रकाशित और और दीप कलर स्कैन (प्रा.) लिमिटेड, एफ-5, गली नं. 4 ए, फ्रेंड्स कॉलोनी इंडस्ट्रीयल एरिया, दिल्ली-95 से मुद्रित। संपादक : **अफ़लातून**